उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
प्रयागराज

M.Com - 202
प्रबन्ध सिद्धान्त एवं पर्यावरण

खण्ड

1

प्रबन्ध की संकल्पना एवं संरचना

इकाई- 1 5
प्रबन्ध की संकल्पना एवं संरचना

इकाई- 2 31
प्रबन्ध के विभिन्न सम्प्रदाय

इकाई- 3 63
प्रबन्ध के सिद्धान्त

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	कुलपति - अध्यक्ष
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
श्री एम0 एल0 कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

संरचनात्मक सम्पादन

डॉ0 मंजूलिका श्रीवास्तव	निदेशक, दूरस्थ शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली

विषयगत सम्पादन

प्रो0 मूल मोतिहार	प्रोफेसर, मोनिरबा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 देवेश रंजन त्रिपाठी	असिस्टेन्ट प्रोफेसर, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रस्तुत पाठ्य सामग्री में विषय से सम्बन्धित सभी तथ्य एवं विचार मौलिक रूप से लेखक के स्वयं के हैं।

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज - 2024
ISBN -

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य सामग्री का क्रोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नही है।
प्रकाशक- उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित वर्ष - 2024.
मुद्रक - के0 सी0 प्रिटिंग एण्ड एलाइड वर्क्स , पंचवटी , मथुरा - 281003.

खण्ड-1 प्रबन्ध की संकल्पना एवं संरचना

प्रबन्ध दूसरे व्यक्तियों से पूर्व निर्धारित उद्देश्यों के लिए सुव्यवस्थित रूप से कार्य करवाने की एक कला है। यह संगठन के सदस्यों के सामूहिक प्रयासों, योजना, नेतृत्व और नियंत्रण की एक प्रक्रिया है। इसमें संगठन के उद्देश्य प्राप्ति के लिए संगठन के सभी साधनों यथा मानव मशीन, कच्चामाल, तथा धन का प्रभावपूर्ण उपयोग किया जाता है। व्यावसायिक उद्योगों का विस्तार हो जानें से प्रबंध के महत्व में उत्तरोत्तर बढ़ोत्तरी हो रही है। प्रबंध आधुनिक व्यवसायिक वातावरण की जटिलता का कुशलतापूर्वक सरलीकरण करने में सक्षम हो सका है। केवल कुशल प्रबंधकीय नेतृत्व ही उत्पादन के असंगठित साधनों का समन्वय और सहयोग के द्वारा उत्पादित इकाई में बदल सकता है। आधुनिक युग में प्रबन्ध सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक संस्थाओं में भी प्रचलित है।

प्रबंध सिद्धान्त का यह आरंभिक खण्ड है जिसमें प्रबंध की प्रकृति, क्षेत्र महत्व, विभिन्न विचारधाराएं, प्रक्रिया तथा सिद्धान्तों का विश्लेषण व्यापक रूप से किया गया है। इस खण्ड में तीन इकाइयॉ हैं ।

इकाई–1 प्रबन्ध की संकल्पना, अर्थ, प्रकृति क्षेत्र व महत्व, इसके विभिन्न स्तर एवं कार्य, प्रबंध एक विज्ञान तथा कला के रूप में, प्रबन्ध एवं प्रशासन में अन्तर तथा प्रबन्ध के सामाजिक उत्तरदायित्व का विश्लेषण करती है।

इकाई – 2 प्रबन्ध के विभिन्न सम्प्रदाय, प्रबन्धकी विचारधारा भारत में प्रबन्धकीय विचार धारा का विकास, प्रबन्ध के विभिन्न सम्प्रदाय तथा आधुनिक प्रबन्ध का विश्लेषण एवं वर्णन करती है।

इकाई –3 प्रबन्ध के सिद्धान्त इनकी प्रकृति तथा विशेषताएँ एवं फेयोल टेलर तथा फोलेट का योगदान। सिद्धान्तों की सार्वभौमिकता पर विचार एवं इनकी सीमाओं का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करती है।

RIL-080

इकाई –1 प्रबंध की संकल्पना एवं संरचना

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 प्रबन्ध की संकल्पना

1.4 अर्थ, प्रकृति, क्षेत्र व महत्व

1.5 प्रबन्धन के विभिन्न स्तर एवं कार्य

1.6 प्रबन्ध विज्ञान या कला

1.7 प्रबन्ध एवं प्रशासन

1.8 प्रबन्ध के सामाजिक उत्तरदायित्व

1.9 सारांश

1.10 उपयोगी शब्दकोश

1.11 स्वमूल्यांकन प्रश्नावली

1.12 स्व–प्रगति मूल्यांकन प्रश्नों के उत्तर

1.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

- प्रबन्ध की संकल्पना एवं इसके विभिन्न अर्थों को समझ सकेंगें,
- प्रबन्ध के विभिन्न स्तरों का मूल्यांकन कर सकेंगे,
- प्रबन्ध की व्याख्या कला एवं विज्ञान के रूप में कर सकेंगे,
- प्रबन्ध तथा प्रशासन में विभिन्न आधारों पर अन्तर कर सकेंगे, तथा
- प्रबन्ध के सामाजिक उत्तरदायित्वों का विस्तार से विश्लेषण कर सकेंगें।

1.2 प्रस्तावना

बहुधा प्रबन्ध शब्द का प्रयोग सुव्यवस्थित, सुसंगठित तथा क्रमबद्ध रूप से कार्यों के सम्पन्न होने के लिए किया जाता है। दूसरे शब्दों में, कम्पनियों का संचालन करने वाले व्यक्तियों के संदर्भ में भी इसका प्रयोग करते हैं। इन कम्पनियों के संचालन हेतु व्यवसायिक रूप से प्रशिक्षित प्रबंधकों की आवश्यकता होती है। इन प्रबन्धकों की सफलता उनके प्रबंधकीय ज्ञान सिद्धान्त तथा उसके कुशल एवं सुव्यवस्थित उपयोग पर

RIL-080

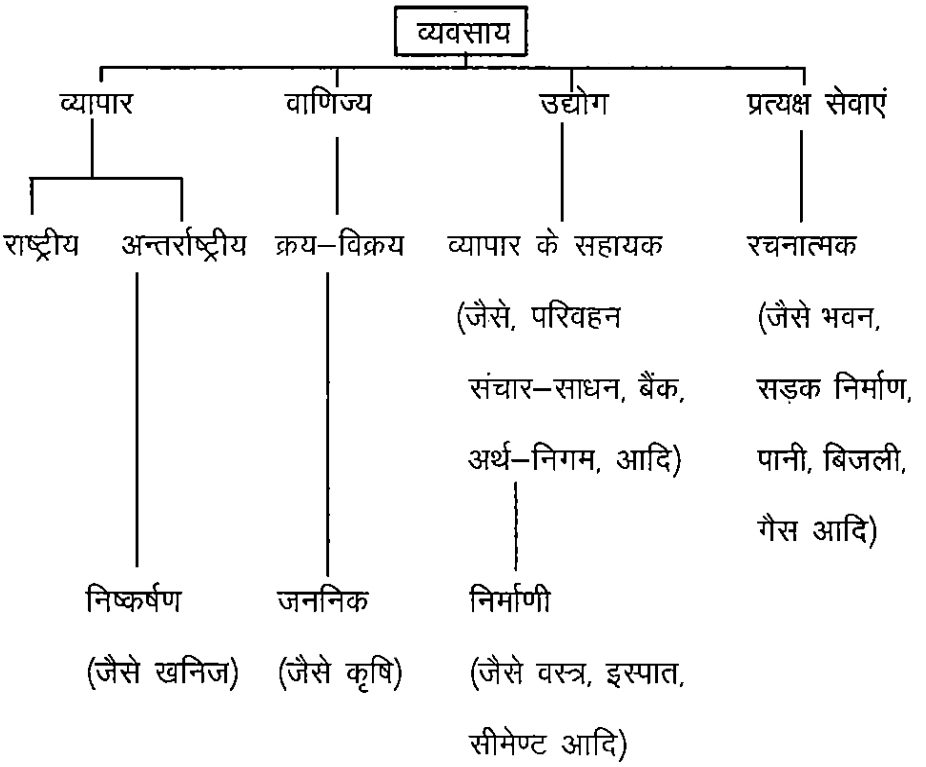
5

आधारित होती है।

1.3 प्रबन्ध की संकल्पना

यूँ तो प्रबंध की संकल्पना उतनी ही प्राचीन होती है जितनी कि मानव सभ्यता। आदि काल से ही मानव समूहों में रहता था और जीवन यापन हेतु कार्यों का बंटवारा भी होता था। जीवन के प्रत्येक स्तर पर प्रबंध की संकल्पना का प्रयोग किया जाता है किन्तु हमें प्रबंध को व्यवसाय की दृष्टि से समझना और विश्लेषित करना है। अतः प्रबन्ध के ज्ञान से पहले आइये जाने व्यवसाय क्या होता है।

व्यवसाय का अर्थ उन क्रियाओं से है जिनके द्वारा जीवन यापन होता है। प्रायः यह आर्थिक क्रियाओं की ओर संकेत करता है। चित्र 1.1 व्यवसाय को और विस्तृत करने का एक प्रयास है जिसके अर्न्तगत व्यापार, वाणिज्य सहायक उद्योग, प्रत्यक्ष सेवाएं व उनकी उप क्रियाओं आदि का समावेश किया जाता है जिनसे उपभोक्ताओं की संतुष्टि होती है साथ ही साथ व्यावसायिक आवश्यकताओं की भी पूर्ति सम्भव हो पाती है।



अग्रलिखित विशेषताओं से व्यापार की प्रकृति को विश्लेषित किया जा सकता है :

(क) व्यवसाय एक आर्थिक क्रिया है।

(ख) व्यवसाय के लिए लेन–देन में नियम व निरंतरता आवश्यक है।

(ग) व्यवसाय साहस एवं जोखिम का कार्य है, इसमें लाभ व हानि दोनों सम्भव है।

(घ) पूंजी व्यवसाय का आधारभूत तत्व है।

(ङ) व्यवसाय में व्यापार, उद्योग तथा सहायक सेवाओं से सम्बन्धित क्रियायें सम्मिलित की जाती हैं।

(च) व्यवसाय एक सामाजिक संस्था है जो समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु समाज में ही उपलब्ध संसाधनों द्वारा उत्पादों . सेवाओं व सूचनाओं को उपलब्ध कराने का कार्य करता है।

(छ) व्यवसाय एक प्राणी है जिसके अनेक उप–तंत्र होते हैं जैसे– उत्पादन, वित्त, कार्मिक, विपणन आदि।

(ज) व्यवसाय समाज के आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक व तकनीकी पर्यावरण व्यापार को प्रभावित करता है।

(झ) सरकार को समाज के कल्याणार्थ व्यापार का नियमन व नियंत्रण करना होता है।

इस प्रकार व्यवसाय से आशय उन आर्थिक क्रियाओं से है जो सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु हम उत्पादों, सेवाओं व सूचनाओं को उपभोक्ताओं तक पहुंचाती हैं एवं जिनका प्रारम्भिक उद्देश्य व्यवसायी व उपभोक्ता दोनों को लाभ पहुँचाना है। संक्षेप में, प्रशासन नीतियों के निर्धारण का कार्य है, जिनके आधार पर उपक्रम का संचालन किया जाता है। आइये अब प्रबन्ध को व्यवसायिक अर्थों में समझने का प्रयास करते हैं।

'प्रबन्ध' से आशय कर्मचारियों के उस समूह से है जो व्यापार के निर्धारित उद्देश्यों एवं नीतियों के क्रियान्वयन हेतु उत्तरदायी होता है। जो व्यक्ति इस कार्य को करते हैं उन्हें 'प्रबन्धक' कहते हैं। प्रबन्ध, वास्तव में एक सामाजिक प्रक्रिया होती है। जिसके द्वारा किसी संस्था के उपलब्ध संसाधनों तथा कर्मचारियों के प्रयासों में इस प्रकार समन्वय स्थापित किया जाता है जिससे संस्था के लक्ष्यों को सुव्यवस्थित, सुसंगठित दक्षतापूर्ण एवं प्रभावी ढंग से सम्पन्न किया जा सके।

इस प्रक्रिया के महत्वपूर्ण अंग हैं – नियोजन, संगठन, अभिप्रेरण तथा नियंत्रण। इस प्रकार प्रबन्ध उद्योग की वह शक्ति है जो नियम सीमाओं के अन्तर्गत नीतियों के क्रियान्वयन तथा लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए संगठन का उपयोग करती है। व्यापक दृष्टि से प्रबन्ध हमारी अर्थव्यवस्था को आकार प्रदान करता है और सुयोग्य कर्मचारियायें की नियुक्ति के द्वारा अधिकतम लाभ प्रदान करता है। वस्तुतः प्रभावी प्रबंध से ही सफलता की अपेक्षा की जा सकती है। प्रबन्ध आर्थिक व सामाजिक विकास की धुरी है। यह वह शक्ति है जो मिट्टी को सोना बना सकता है। यह वह संजीवनी

RIL-080

7

है जिसका प्रयोग समाज की समस्त समस्याओं के लिए समान रूप से उपयोगी व कारगर सिद्ध हो सकती है।

प्रबन्ध की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :–

(क) प्रबन्ध विविध विषयों द्वारा विकसित ज्ञान तथा अवधारणाओं के समन्वय एवं व्यवहार की कला व विज्ञान है।

(ख) प्रबन्ध व्यक्ति नहीं, वरन् एक प्रक्रिया है जिसके अंग हैं, नियोजन, संगठन, अभिप्रेरण व नियंत्रण ।

(ग) प्रबन्ध के पूर्व निर्धारित कुछ लक्ष्य व उद्देश्य होते हैं।

(घ) अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्रबंध संगठन का उपयोग करता है।

(ङ) प्रबन्ध एक गतिशील व परिवर्तनशील सामाजिक प्रक्रिया है जो समूहों के प्रयास से सम्बन्धित है।

(च) प्रबन्ध में काम करने के लिए पदानुक्रम व्यवस्था बनाई जाती है जिसके अनुसार कुछ अधिकारी व अधीनस्थ होते हैं। ऐसी व्यवस्था संगठन के अनेक स्तरों पर बनाई जा सकती है।

(छ) सुचारू प्रबन्ध हेतु अधिकारी का प्रत्यायोजन किया जाता है तथा आदेश प्रसारित किए जाते हैं।

(ज) प्रबन्ध प्रत्येक संस्था का अनिवार्य अंग होता है क्योंकि वह साधनों की प्रभावशीलता एवं दक्षता को बढ़ाकर अधिकाधिक उत्पादकता का सृजन करने में योगदान देता है।

प्रबन्ध कर्मचारियों को नेतृत्व देने का प्रयास करता है तथा उन्हें सुव्यवस्थित, सुसंगठित तथा क्रमबद्ध रूप से कार्य सम्पन्न करने के लिए अभिप्रेरित करने का प्रयास करता है। संकुचित अर्थ में प्रबन्ध अन्य व्यक्तियों से कार्य कराने की युक्ति से है। इस प्रकार जो अन्य व्यक्तियों से काम कराने की क्षमता रखते हैं, उन्हें 'प्रबंधक' की संज्ञा दी जाती है। व्यापक अर्थ में प्रबन्ध एक कला एवं विज्ञान है जो पूर्व–निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु उत्पादन के विभिन्न घटकों में समन्वय स्थापित करता है। इस दृष्टि से यह स्वयं उत्पादन का एक महत्वपूर्ण घटक है।

उत्पादन के विभिन्न साधनों में भूमि, पूँजी व मशीन गैर–मानवीय साधन हैं, जबकि श्रम, साहस व प्रबन्ध मानवीय साधन हैं। उत्पादन के ये सभी साधन अपने अपने स्थान पर महत्वपूर्ण हैं,किन्तु 'प्रबन्ध' इसमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह वो आर्थिक साधन है जो उत्पादन के साधनों को एकत्र करता है, नियोजन करता

RIL-080
8

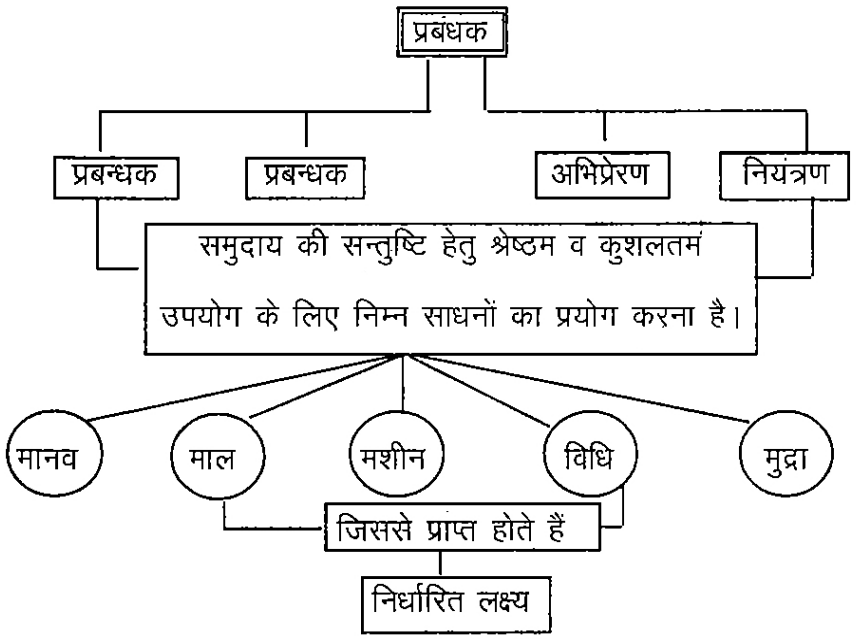
है, संस्था में संगठनात्मक भावना का संचार करता है, व्यावसायिक क्रियाओं का निर्देशन संचालन व समन्वय स्थापित करता है तथा समस्त क्रियाओं पर नियंत्रण रखता है। संक्षेप में, 'प्रबन्ध एक कला एवं विज्ञान है जो एक संस्था के पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए व्यक्तियों के व्यक्तिगत व सामूहिक प्रयासों के नियोजन, संगठन, निर्देशन, समन्वय एवं नियंत्रण से सम्बन्धित होता है।

प्रबंध की कोई ऐसी परिभाषा नहीं दी जा सकती जो सर्वमान्य हों। प्रबन्ध गुरूओं ने अपने अपने ढंग से इसकी अवधारणाएं दी हैं। प्रबन्ध की अवधारणा उस लघु कथा के समान है जिसमें अन्धे व्यक्तियों ने एक हाथी को पकड़ लिया और जिसके हाथ में उसका जो अंग आया उसी के अनुरूप वह हाथी के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करने लगे। हाथी की पूंछ पकड़ने वाले ने गजराज को सॉप, पॉव पकड़ने वाले ने खम्भा, सूँड पकड़ने वाले ने बास, कान पकड़ने वाले ने सूप और जिसका हाथ पेट पर पड़ा, उसने उसे मूशक जैसा बताया। इसी प्रकार विभिन्न विद्वानों ने प्रबंध को जिस रूप में समझा उन्होंने उसी के समान उसकी अवधारणा प्रकट की। इस प्रकार अनायास ही प्रबन्ध की अनेक अवधारणाएं विकसित हो गई हैं । उनमें से कुछ महत्वपूर्ण अवधारणाएं इस प्रकार हैं।

(क) प्रक्रिया विचारधारा

इस विचारधारा में प्रबंध की परिभाषा का आधार प्रबंधकों के कार्यों से है जिसे प्रबंधक समेकित रूप से संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु कार्य करता है। इस विचारधारा के प्रमुख तत्व में पूर्वानुमान व नियोजन, संगठन, आदेश, संयोजन और नियंत्रण आदि आते हैं।

नीचे अंकित चित्र 1.2 प्रबंध की इस अवधारणा को और स्पष्ट करेगा।



उपरोक्त चित्र को ऊपर से नीचे की ओर व्याख्या करने से यह ज्ञात होता है कि "प्रबन्ध, वास्तव में एक प्रक्रिया है । नियोजन, संगठन, अभिप्रेरण, तथा नियंत्रण जिसके आधारभूत अंग हैं तथा जो समुदाय को अधिकतम संतुष्टि प्रदान करने हेतु मानव, माल, मशीन विधि व मुद्रा जैसे संसाधनों का प्रयोग करता है तथा पूर्व निर्धारित उद्देश्यो को प्राप्त करने का प्रयास करता है।

जिस प्रकार कप्तान के अभाव में एक क्रिकेट टीम इधर–उधर भटक सकती है। उसी प्रकार प्रबंध के अभाव में समुदाय के समस्त प्रयास निरर्थक हो सकते हैं प्रत्येक सामुदायिक प्रक्रिया में श्रमिक वर्ग टीम के खिलाड़ी और प्रबंध वर्ग उसका कप्तान की भॉति होते हैं।

(ख) मानव प्रधान अवधारणा

इसके अनुसार 20वीं शताब्दी के चौथे दशक में समाजशास्त्रियों व मनोवैज्ञानिकों के दबाव के कारण इस अवधारणा का विकास माना जाता है। इसके अनुसार प्रबंध दूसरों से कार्य कराने की कला व विज्ञान है। इस अवधारणा के समर्थक यह मानते हैं कि मानव का विकास करके ही संस्था के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है। इस विचारधारा में संगठन के मानवीय पहलू पर बल दिया गया है, चूँकि प्रबंधकीय कार्य मानवीय संबंधों पर आधारित है इसलिए प्रबंध एक सामाजिक प्रणाली है। प्रबंध केवल संगठन को दिशा प्रदान करने के लिए ही नहीं है। यह मानव के विकास के लिए भी उत्तरदायी है। संक्षेप में, प्रबंध की यह अवधारणा यह स्वीकार करती है कि न्यूनतम लागत और प्रयासों से संस्था के लक्ष्यों को तभी प्राप्त किया जा सकता है जबकि प्रबन्ध अपने कर्मचारियों का विधिवत विकास करें।

वस्तुतः मनुष्य का व्यक्तित्व एक अविकसित पुष्प की भांति होता है। जिसे प्रबन्ध के द्वारा ही पल्लवित किया जा सकता है। जिस प्रकार एक कुशल माली अपनी वाटिका के वृक्षों के खाद–पानी एवं प्रकाश की उत्तम व्यवस्था करके वृक्षों के लिए सुरक्षा करता है उसी प्रकार एक कारखाने में प्रबन्ध रूपी माली व्यवसायिक पर्यावरण को विकसित करके उपभोक्ताओं को सुख, शान्ति एवं सतोष प्रदान कर सकता है। इसमें कारखानें तथा उद्योग का विहित भी छिपा रहता है। इसी तथ्य के आधार पर एक बार अमरीकन कारपोरेशन के अध्यक्ष ने अपने कर्तव्यों को स्पष्ट करते हुए कहा था, "हम मोटर, हवाई जहाज, फ्रिज, रेडियो या जूते के फीते का निर्माण नहीं करते बल्कि हम बनाते हैं मनुष्य और इन मनुष्य उत्पादों का निर्माण करते हैं।" यह कथन सुस्पष्ट करता है कि 'प्रबन्ध मनुष्यों का विकास है न कि उत्पादों का निर्देशन ।"

(ग) निर्णयन विचारधारा

इस विचारधारा के अनुसार प्रबंध नियम बनाने तथा उनका अनुपालन कराने

वाली संस्था है। प्रबंधक जो भी कार्य करता है निर्णय उसका आधार होता है। एक प्रबंधक का अधिकतर समय निरंतर निर्णय लेने में ही व्यतीत होता है। निर्णय लेने की क्षमता ही संगठन को उत्पादनशील एवं प्रभावी बनाने की गतिशील शक्ति है। अतः प्रबन्धक अच्छे निर्णयों के द्वारा ही न्यूनतम लागत सुव्यवस्थित तथा प्रयासों से उद्देश्यों को प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार प्रबन्ध की सफलता हेतु श्रेष्ठ निर्णयन परमावश्यक है।

(घ) वैज्ञानिक प्रबंध की अवधारणा

इस अवधारणा का जन्म 20वीं शताब्दी में एफ. डब्ल्यू. टेलर द्वारा हुआ था। आपके अनुसार, प्रबंध से तात्पर्य काम करने की सर्वोत्तम विधि खोजना तथा न्यूनतम लागत एवं प्रयासों से अधिकतम उत्पादन करना है। इस विचारधारा के अनुसार प्रत्येक कार्य को करने की एक सर्वोत्तम विधि होती है, जिसे 'वैज्ञानिक विधि' की संज्ञा दी जा सकती है। प्रबन्ध की इस अवधारणा के उत्थान का कारण तत्कालीन परिस्थितियाँ भी थीं । उस समय औद्योगिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पादन करना एक चुनौती था। फलतः लोग प्रबन्ध कार्य को उसी रूप में समझने व अनुभव करने लगें। संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि कार्य निष्पादन का आवश्यक मार्ग खोजना ही प्रबंध कहलाता हैं

इस विचारधारा के अनुसार संगठन की तुलना एक जीवित प्रणाली से की गई है। संगठन को अपने अस्तित्व एवं विकास के लिए वातावरण के अनुकूल कार्य करते रहना चाहिए। प्रबंध का प्रमुख कार्य संगठन को परिवर्तनशील बाजार, तकनीक तथा अन्य परिस्थितियों के अनुकूल बनाना है। प्रबंधकों से संगठन के विभिन्न सदस्यों के अंतर्विरोधी उद्देश्यों, लक्ष्यों एवं गतिविधियों में संतुलन स्थापित करने की अपेक्षा की जाती है। अतः प्रबंधक को विद्यमान परिस्थितियों को ध्यान में रखकर संगठन के लक्ष्यों का निर्धारण तथा नीति निर्माण का कार्य करना चाहिए। उपरोक्त विचारधाराओं के समग्र अवलोकन के पश्चात आइये प्रबंध की कुछ महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक परिभाषाओं के आत्मसात करने का प्रयास करें–

1. एफ. डब्ल्यू. टेलर जिन्हें प्रबन्ध विज्ञान का जनक भी कहा जाता है, के अनुसार "प्रबन्ध यह जानने की कला है कि क्या करना है तथा उसे करने का सर्वोत्तम एवं सुलभ तरीका क्या है।" यह परिभाषा प्रबन्ध के तीन तत्वों पर प्रकाश डालती है–

(क) प्रबन्ध एक कला है यह कला सामान्य ज्ञान और विश्लेषण ज्ञान से युक्त है।

(ख) प्रबन्ध किये जाने वाले कार्यों का पूर्व चिन्तन व निर्धारण है।

(ग) यह कार्य निष्पादन की श्रेष्ठतम एवं मितव्ययितापूर्ण विधि की खोज करता है।

उनके अनुसार कार्य को करने से पहले जानने तथा बाद में उसे भली प्रकार न्यूनतम लागत पर सम्पन्न करने की कला ही प्रबंध है। इस परिभाषा का नकारात्मक पक्ष यह है कि यह मानवीय पक्ष की घोर उपेक्षा करता है एवं शोषण को बढ़ावा देता है।

2. हेनरी फेयोल की दृष्टि से, "प्रबन्ध से आशय पूर्वानुमान लगाने एवं योजना बना संगठन की व्यवस्था करने, निर्देश देने, समन्वय करने तथा नियंत्रण करने से है।"

इस प्रकार फेयोल ने प्रबन्ध की प्रक्रिया की व्याख्या करने का प्रयास किया है। इससे प्रबन्धक के कार्य का ज्ञान हो जाता है। इन कार्यों में पूर्वानुमान, नियोजन, संगठन, निर्देशन समन्वय तथा नियंत्रण का समावेश किया गया है किन्तु उन्होंने प्रबन्ध के समस्त कार्यों की ओर संकेत नहीं किया है जिनमें अभिप्रेरण एवं निर्णयन सम्मिलित हैं। फिर भी महत्वपूर्ण कार्यों का समावेश होने से यह परिभाषा काफी स्पष्ट, सरल, सारगर्भित बन गई है।

3. पीटर एफ. ड्रकर के अनुसार, "प्रबन्ध आद्योगिक समाज का आर्थिक अंग है। वांछित परिणामों को प्राप्त करने हेतु कार्य करना ही प्रबन्ध है। यह एक बहुउद्देशीय तत्व है जो व्यवसाय का प्रबन्ध करता है। प्रबन्धकों का प्रबंध करता है तथा कर्मचारियों व कार्य का प्रबंध करता है।" यह परिभाषा अग्रलिखित तत्वों पर प्रकाश डालती है–

(क) प्रबंन्ध औद्योगिक सभ्यता व संस्कृति का उत्पाद है।

(ख) औद्योगीकरण के बढ़ते हुए चरणों ने प्रबध की आवश्यकताओं को प्रेरित किया है।

(ग) प्रबन्ध वांछित परिणामों को प्राप्त करने का कार्य है।

(घ) यह एक बहुउद्देशीय तत्व है जो व्यवसाय,प्रबंधक, कर्मचारी एवं कार्य सभी का प्रबन्ध करता है।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि प्रबंध एक वैज्ञानिक व निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है जो संस्था के निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के उद्देश्य से संगठन में कार्यरत व्यक्तियों के प्रयासों का नियोजन, निर्देशन, समन्वय, अभिप्रेरण व नियंत्रण करती है। इस प्रकार उपरोक्त प्रबन्ध गुरूओं के चिन्तन के आधार पर हम आधुनिक प्रबंध की विशेषताओं का निर्धारण में सक्षम हो सकते हैं। आइये आधुनिक प्रबंध की विशेषताओं का अध्ययन करें जो कि इस प्रकार से है –

- प्रबन्ध एक मानवीय क्रिया है जिसमें विशिष्ट कार्य होता है।
- प्रबन्ध मानव एवं मानवीय संगठनों से सम्बन्धित कार्य है। जिसमें उद्देश्यपूर्ण कार्य होते हैं।

- प्रबन्ध कार्यों की सुव्यवस्थित एकीकृत व संयाजित प्रक्रिया है।
- प्रबन्ध एक सामाजिक प्रक्रिया है जो सतत चलती रहती है।
- प्रबन्ध एक गतिशील, परिवर्तनशील व सार्वभौमिक प्रक्रिया है।
- प्रबन्ध वह प्रक्रिया है जो समूहों के प्रयासों से सम्बन्धित है जिसका आधार समन्वय होता है।
- प्रबन्ध में कार्य निष्पादन हेतु पदानुक्रम व्यवस्था बनाई जाती है।
- प्रबन्ध एक सृजनात्मक तथा धनात्मक कार्य है।
- प्रबन्ध एक अधिकार सत्ता व कार्य–संस्कृति है।
- प्रबन्ध एक अदृश्य शक्ति है जिसे देखा या छुआ नहीं जा सकता।
- प्रबन्ध एक कला व विज्ञान दोनों ही है।
- प्रबन्ध ज्ञान व चातुर्य का हस्तांतरण किया जा सकता है यह कार्य शिक्षण प्रशिक्षण की व्यवस्था द्वारा सम्भव होता है।
- प्रबन्ध व्यवहारवादी विज्ञान है। इसका उपयोग सभी मानवीय क्रिया क्षेत्रों में किया जा सकता है।
- प्रबन्ध वस्तुओं का निर्देशन नहीं, वरन मानव का विकास है।
- प्रबन्ध का विधिवत नियमन व नियंत्रण किया जाता है। यह कार्य सरकार द्वारा कानून की मदद से किया जाता है।

उपरोक्त विशेषतायें प्रबन्ध की प्रकृति का सटीक विश्लेषण करने में सक्षम हैं, जो कि अग्रलिखित है।

(1) प्रत्येक व्यवसाय में प्रबन्ध की आवश्यकता अनिवार्य रूप से होती है इसलिये प्रबंध की सार्वभौतिक प्रक्रिया कहते हैं। संगठन की प्रकृति व प्रबन्धक का स्तर चाहे कुछ भी हो, उसके कार्य लगभग समान ही होते हैं। किसी भी प्रकृति, आकार या स्थान पर प्रबन्ध के सिद्धान्तों का प्रयोग हो सकता है।

(2) संगठन के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को प्राप्त करना ही प्रबन्धन का प्राथमिक उद्देश्य है। प्रबन्ध की सफलता का मापदंड केवल यही है कि उसके द्वारा उद्देश्य की पूर्ति किस सीमा तक होती है। संगठन का उद्देश्य लाभ कमाना हो या न हों, प्रबंन्धक का कार्य सदैव प्रभावी तथा कुशलतापूर्ण सम्पन्न होना चाहिये।

(3) प्रबन्ध में आवश्यक रूप से व्यवस्थित व्यक्तियों के सामूहिक कार्यों का

प्रबन्धन शामिल होता है। प्रबन्धन में कार्य के अधीनस्थ व्यक्तियों का प्रशिक्षण विकास तथा अभिप्रेरण शामिल है। साथ ही वह उनको एक सामाजिक प्राणी के रूप में संतुष्टि प्रदान करने का भी ध्यान रखता है। इन सब मानवीय संबन्धों एवं मानवीय गतिविधियों के कारण प्रबन्ध को एक सामाजिक क्रिया की संज्ञा दी जाती है।

(4) प्रबन्ध द्वारा परस्पर सम्बन्धित गतिविधियों को व्यवस्थित करने का प्रयास किया जाता है जिससे किसी कार्य की पुनरावृत्ति न हो। इस प्रकार प्रबन्ध संगठन के सभी वर्गों के कार्यों का समन्वय करता है।

(5) प्रबन्ध एक अदृश्य ताकत है। इसकी उपस्थिति का अनुभव इसके परिणामों से ही किया जा सकता है। ये परिणाम व्यवस्था, उचित मात्रा में संतोषजनक वातावरण, तथा कर्मचारी संतुष्टि द्वारा किये जा सके हैं।

(6) प्रबन्ध एक गतिशील एवं सतत् प्रक्रिया है। जब तक संगठन में लक्ष्य प्राप्ति हेतु प्रयास होता रहेगा, प्रबन्ध रूपी चक्र चलता रहेगा।

(7) प्रबन्धकीय कार्य की श्रृंखला पूर्ण रूप से सह आधारित है इसलिए स्वतंत्र रूप से किसी एक कार्य को नहीं किया जा सकता। प्रबन्ध विशिष्ट अवयवों से मिलकर बनी संयुक्त प्रक्रिया है। प्रबन्ध की सभी गतिविधियों में अनेक अवयवों को सम्मिलित करना पड़ता है इसलिए इसे एक व्यवस्थित संयुक्त प्रक्रिया की संज्ञा दी गई है।

(8) प्रबन्ध परिणाम प्रदान कर सह क्रियात्मक प्रभावों का सृजन करता है जो सामूहिक सदस्यों के व्यक्तिगत प्रयास के योग से अधिक होता है। यह संक्रियाओं को एक क्रम प्रदान करता है, कार्यों का लक्ष्य से मिलान करता है तथा कार्यों को भौतिक और वित्तीय संसाधनों से जोड़ता है । यह सामूहिक प्रयासों को नई कल्पना, विचार तथा नई दिशा प्रदान करता है।

कुशल प्रबन्धन व्यवहार के प्रत्येक स्तर की महत्वपूर्ण आवश्यकता है, तथा आज के प्रतियोगात्मक संगठनों में तो इसका विशेष महत्व है। प्रबन्ध किसी संगठन का मस्तिष्क होता है जो उसके लिए सोच विचार करता है और लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर अभिप्रेरित करता है। रचनात्मक विचारों और कार्यों के सम्पादन का मूल स्रोत प्रबन्ध ही है। यही संगठन की नई सोच, लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए नए मार्ग और समूचे संगठन को एक सूत्र में बॉधने का कार्य करता है। सदस्यों को अपने कुशल एवं उचित आदेशों निर्देशों द्वारा प्रबन्धक व्यापार को वांछित दिशा और सही गन्तव्य की ओर ले जाता है। संगठन की विभिन्न क्रियाओं में समन्वय और नियंत्रण स्थापित करके प्रबन्धक उसका

यह संगठन की समस्याओं का समाधान प्रदान करता है, भ्रान्तियों और झगड़ों को दूर करता है, व्यक्तिगत हितों के ऊपर सामूहिक हितों की गरिमा की स्थापना करता है। और आपसी सहयोग की भावना का सृजन करता है। कुशल प्रबन्ध के द्वारा ही सर्वोत्तम परिणामों की प्राप्ति होती है, कुशलता में वृद्धि होती है और उपलब्ध मानवीय और भौतिक साधनों का अधिकतम उपयोग सम्भव होता है, तथा लक्ष्यहीन क्रियाएं सम्पन्न होने लगती है। अकुशल प्रबन्ध वातावरण में अनुशासनहीनता, संघर्षो भ्रान्तियों, लालफीताशाही, परस्पर विरोधों, अनिश्चितताओं, जोखिमों और अस्त–व्यस्तता को उत्पन्न करता है जिससे संगठन अपने निर्धारित लक्ष्यों से भटक जाता है। अतः किसी संगठन की सफलता में उसके प्रबन्ध का बड़ा योगदान होता है। बड़े साधन–विहीन एवं विकट समस्याओं से त्रस्त संगठन अपने प्रबन्धकों की दूरदर्शिता, कुशल नेतृत्व एवं चातुर्यपूर्ण अभिप्रेरण से सफलता की शिखर पर पहुँच जाते हैं।

समस्त विकसित देशों के इतिहास के विकास पर नजर डालें तो पायेंगे कि उनकी समृद्धि, वैभव व प्रभुत्व का मूल आधार कुशल प्रबन्धकीय नेतृत्व एवं व्यावसायिक उन्नति ही हैं। भारत एक विकासशील देश है, यहाँ प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता होते हुए भी गरीबी है। आज भी 26 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन कर रही है। आर्थिक विकास की दृष्टि से यह अपने शैवकाल से गुजर रहा है। गरीबी के साथ साथ यहाँ औद्योगिक असंतुलन तथा बेरोजगारी चरमोत्कर्ष पर है। इन आर्थिक समस्याओं को निदान औद्योगीकरण में निहित है। यही कारण है कि पंचवर्षीय योजनाओं में उद्योग धन्धों के विकास पर पर्याप्त बल दिया है। प्राइवेट सेक्टर के अतिरिक्त पब्लिक सेक्टर के विकास के लिए विशाल मात्रा में विनियोजन की व्यवस्था की जा रही है। इन भावी उद्योगों के समुचित प्रबन्ध के लिये आवश्यकता होगी कुशल प्रबन्धकों की । आने वाले वर्षों में यदि मंदी को दूर कर व्यवसाय को भूतकाल की त्रुटियों से बचना है और भविष्य में प्रबन्धकों की बढ़ती हुई मांग को पूरा करना है तो कुशल प्रबन्ध के सिद्धान्तों की शिक्षा देना आवश्यक है। पर्याप्त प्रबन्धकीय सम्पत्ति का निर्माण करके ही भविष्य के लिए कुशल प्रबन्धकों को तैयार किया जा सकता है। भारतीय व्यापारिक परिदृश्य में प्रबन्ध का महत्व निम्नलिखित बिन्दुओं से आंका जा सकता है।

(क) देश में भौतिक संसाधनों का सदुपयोग करने के लिए कुशल प्रबन्ध आवश्यक है।

(ख) रोजगार के सृजन के लिए भी श्रेष्ठ प्रबन्धन आवश्यक है।

(ग) प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हेतु प्रभावकारी प्रबंध आवश्यक है।

(घ) पूँजी के निर्माण को प्रोत्साहित करने के लिए कुशल प्रबन्ध आवश्यक है।

(ङ) आधारभूत उपभोक्ता वस्तुओं की आपूर्ति को बढ़ावा देने के लिए प्रबन्ध की भूमिका महत्वपूर्ण है।

(च) आधारभूत सुविधाएं प्रदान करने के लिए उद्योगों का कुशल प्रबन्ध आवश्यक है।

(छ) विदेशी व्यापार को बढ़ावा देने के लिए कुशल प्रबन्ध की आवश्यकता है।

(ज) निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्रों की उत्पादकता में वृद्धि लाने के लिए कुशल प्रबन्ध एक अनिवार्यता है।

(झ) जनसाधारण के जीवन स्तर में गुणात्मक विकास लाने के लिए प्रबन्ध आवश्यक है।

(ञ) नव प्रवर्तन को प्रोत्साहित करने में भी प्रबन्ध की भूमिका महत्वपूर्ण है।

(ट) हमारी आर्थिक नीति का आधार उदारीकरण, निजीकरण व वैश्वीकरण (एल. पी. जी.) का सही क्रियान्वयन एवं समन्वय कुशल प्रबन्ध द्वारा ही सम्भव हो सकता है जिससे भारत का चातुर्दिक विकास कर समृद्धि लाई जा सकती है और भारत को विकसित राष्ट्रों की श्रेणी में खड़ा किया जा सकता है।

1.5 प्रबन्ध के विभिन्न स्तर एवं कार्य

आधुनिक प्रतियोगात्मक व्यवसायिक युग में संस्था का स्वामित्व एवं प्रबन्ध पृथक पृथक होते हैं और प्रबन्ध के भी विभिन्न स्तर होते हैं। प्रबन्ध के विभिन्न स्तरों के अन्तर्गत प्रबन्धकीय क्रम व्यवस्था का अध्ययन किया जाता है। प्रबन्धकीय क्रम व्यवस्था से आशय किसी संस्था के प्रबन्धक वर्ग में अधिकारी एवं अधीनस्थों का सम्बन्ध रखने वाले विभिन्न पदों से है। प्रबन्धकीय क्रम व्यवस्था अथवा प्रबन्ध के स्तर एक प्रकार का खाका है जो इस बात को स्पष्ट करता है कि किस अधिकारी की क्या स्थिति है कौन किसको आदेश देगा तथा कौन किससे आदेश प्राप्त करेगा। किसी संस्था में प्रबन्ध के कितने स्तर होंगे यह संस्था के आकार एवं कार्यों पर निर्भर करता है। जैसे जैसे संस्था का आकार एवं कार्यों का विस्तार होता जाता है, प्रबन्ध वर्ग के अन्तर्गत अधिकारी एवं अधीनस्थों की श्रृंखला का विस्तार भी हो जाता है। प्रायः प्रबन्ध के स्तर अथवा प्रबन्धकीय क्रम व्यवस्था को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. उच्च प्रबन्ध
2. मध्य प्रबन्ध, एवं
3. निम्न स्तरीय प्रबन्ध

प्रत्येक प्रबन्ध स्तर का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है –

(क) उच्च प्रबन्ध – व्यावसायिक उपक्रम में यह प्रबन्ध सर्वोच्च स्तर होता है। इसके अन्तर्गत संचालक मण्डल, प्रबन्ध निदेशक/जनरल मैनेजर एवं सचिव आदि को सम्मिलित किया जाता है। इनके प्रमुख कार्य व्यावसायिक उपक्रम में सफल संचालन हेतु उद्देश्य एवं लक्ष्यों का निर्धारण है। महत्वपूर्ण निर्णय लेना, नीतियां बनाना और यह देखना कि नीतियां प्रभावोत्पादक तरीके से लागू की जा रही है या नहीं तथा उपक्रम के परिणामों का मूल्यांकन करना है। उच्च प्रबन्ध के कार्यों को निम्न दो भागों में विभाजित किया जा सकता है –

(अ) निर्णय सम्बन्धी कार्य – पुनः उच्च निर्णय सम्बन्धी कार्यों को पॉच भागों में विभक्त किया जा सकता है।

1. निर्णय एवं उनकी पुष्टि,
2. योजना बनाना, लक्ष्यों को निर्धारित करना, तकनीकी प्रक्रिया निर्धारित करना, संगठन संरचना निश्चित करना, समन्वय करना एवं प्रमुख अधिकारियों की नियुक्ति,
3. सामान्य एवं विशिष्ट नीतियों को परिभाषित करना तथा उनकी व्याख्या,
4. नीतियों के क्रियान्वयन के लिए अधीनस्थों को अधिकार देना, एवं
5. वित्त व्यवस्था के लिये साधन निर्धारित करना एवं लाभों का वितरण करना।

(ब) न्यायिक कार्य– उच्च प्रबन्ध के न्यायिक कार्यों को पुनः तीन भागों में बॉटा जा सकता है –

1. उपलब्धियों तथा लक्ष्यों की तुलना करना,
2. उपलब्धियों की लागत से मूल्यांकन करना तथा वैकल्पिक सम्भावनाओं का मूल्यांकन करना, एवं
3. निर्णय तथा आदेश के सम्बन्ध में परामर्श।

(ख) मध्य प्रबन्ध – प्रबन्ध के इस स्तर के अर्न्तगत कनिष्ठ प्रबंधक, अधीक्षक, जनरल श्रम अधिकारी आदि अधिकारियों को सम्मिलित किया जाता है। मध्य प्रबन्ध के प्रमुख कार्य इस प्रकार हो सकते हैं –

1. संगठन का संचालन

2. आपस में समन्वय,
3. महत्वपूर्ण नीतियों के सम्बन्ध में विभागों के पारस्परिक सम्बन्धों को समझना,
4. संगठन के विभिन्न विभागों में समन्वय स्थापित करना,
5. अधीनस्थों को संतुष्ट करना एवं उनको कार्यकुशल बनाना और उनकी योग्यतानुसार पारिश्रमिक की व्यवस्था करना,
6. प्रशिक्षण की व्यवस्था करना एवं
7. उपक्रम भावना को विकसित करना आदि।

(ग) निरीक्षक वर्ग/निम्न स्तरीय प्रबन्ध – निम्ननिरीक्षक वर्ग/निम्नस्तरीय प्रबन्ध श्रमिकों में प्रबन्ध का एवं प्रबन्ध में श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करता है। दूसरों शब्दों में निरीक्षक वर्ग एवं फोरमैन प्रबन्ध की अन्तिम कड़ी है जो प्रबन्धकीय कर्मचारियों और गैर प्रबन्धकीय कर्मचारियों में समन्वय रखता है। इसलिये संस्था के सफल सचालन में प्रबन्ध के इस स्तर का विशेष महत्व है। निरीक्षक वर्ग में वे सभी अधिकारी सम्मिलित किये जाते हैं जो कार्यालय, कारखाना, विपणन आदि क्षेत्रों में कार्य करने वाले कर्मचारियों के ऊपर पर्यवेक्षण का कार्य करते हैं। निरीक्षक वर्ग द्वारा किये जाने वाले प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं –

1. प्रत्येक क्रियाशील कर्मचारी के लिये कार्य योजना का निर्माण, सारणी बनाना और उसे कार्य सौपना।
2. स्टोर से सामग्री एवं यंत्र एवं उपकरणों को प्राप्त करना एवं क्रियाशील कर्मचारियों को देना,
3. क्रियाशील कर्मचारियों को प्रशिक्षण देना एवं कार्य सम्बन्धी आदेश देना,
4. कार्य करने का स्वस्थ वातावरण बनाये रखना एवं अनुशासन बनाये रखना
5. आवश्यक मात्रा में उत्पादन करना,
6. कार्य करने की दशाओं में सुधार करना, मशीनों एवं उपकरणों की देखभाल,
7. क्रियाशील कर्मचारियों में मनोबल और सहयोगी भावना का विकास करना,

8. क्रियाशील कर्मचारियों को अधिक कार्य करने के लिए प्रेरणायें प्रदान करना,

9. अनुपस्थिति की प्रवृत्ति को नियंत्रित करना तथा,

10. उत्पादन विधियों में सुधार करना, एवं क्रियाशील कर्मचारियों की शिकायतें दूर करना।

(घ) क्रियाशील कर्मचारी – इस श्रेणी के अन्तर्गत ऐसे कर्मचारियों को सम्मिलित किया जाता है जिनको प्रबंधकीय अधिकार प्राप्त नहीं होते लेकिन वे स्वयं अपने कार्य एवं उपकरणों का प्रबन्ध करते हैं। इस वर्ग का प्रत्येक कर्मचारी निरीक्षक द्वारा सौंपे गये सारे कार्य को करता है और अपने कार्य के लिए निरीक्षक के प्रति उत्तरदायी होता है। अनौपचारिक आधार पर कभी कभी ऐसे कर्मचारी अपने में से किसी एक को अपना मुखिया अथवा नेता मान लेते हैं और उसके आदेश एवं निर्देश के अनुसार कार्य करते हैं। लेकिन ऐसे मुखिया अथवा नेता को औपचारिक तरीके से प्रबन्ध के अधिकार नहीं दिये जाते हैं। प्रबन्धकीय क्रम व्यवस्था के उपर्युक्त वर्णित तीन स्तरों के बीच विभाजन की कोई रेखा नहीं खींचीजा सकती है। प्रबन्ध के स्तरों की संख्या व्यावसायिक उपक्रम के आकार एवं स्वभाव की आवश्यकतानुसार कम अथवा अधिक हो सकती है।

स्व–प्रगति मूल्यांकन –क

प्रश्न 1. प्रबन्ध की संकल्पना को अपने शब्दों में सुस्पष्ट करें?

.....

.....

.....

प्रश्न 2. निम्नलिखित वक्तव्यों से सम्बन्धित प्रबन्ध विचारधारा का उल्लेख करें। संकल्पना को स्पष्ट करें?

प्रश्न 3. निम्नलिखित वक्तव्यों के सामने प्रबन्ध की संबंधित विचारधारा लिखो।

वक्तव्य	सम्बन्धित विचारधारा
1. प्रबन्ध नियम व प्रबन्ध कराने वाली तथा उसका पालन कराने वाली संस्था है।	
2. गतिविधियों के आधार पर प्रबन्ध की परिभाषा	
3. बदलती परिस्थितियों के अनुरूप संगठन का प्रारूप बनाना।	
4. संगठन का सामाजिक तंत्र मानती है।	

प्रश्न 4. निम्नलिखित कथनों में से सही तथा गलत का चयन करें।

(क) प्रशासकीय प्रबन्धन योजनाओं के क्रियान्वयन से सम्बन्धित नहीं होता है

(ख) क्रियात्मक प्रबन्ध योजनाओं के प्रारूप निर्मित करने से सम्बन्धित होता है

(ग) हेनरी फेयोल ने प्रबन्ध की प्रक्रिया सम्बन्धी विचारधारा का प्रतिपादन नहीं किया था।

(घ) परिपक्व संगठनों में निर्णय उच्च प्रबन्धकों द्वारा सम्पन्न एवं क्रियान्वित किये जाते हैं।

(च) प्रबन्ध की सार्वभौमिकता का तात्पर्य यह है कि प्रबंध के अन्तर्गत सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का अध्ययन सम्पन्न किया जाता है।

(छ) आर्थिक उद्यमों में लाभ कमाने की प्रवृत्ति विद्यमान होती है।

1.6 प्रबन्ध विज्ञान या कला

अभी तक अध्ययन के पश्चात आप छात्रगण प्रबन्ध की अवधारणा को अच्छी तरह जान चुके हैं। आइये अब विचार करें कि प्रबन्ध विज्ञान है या कला? वास्तव में प्रबन्ध विज्ञान और कला दोनों के समान लक्षण पाये जाते हैं। प्रबन्ध के क्षेत्र में एक विधिवत विद्या उभरी है। यह सब प्रेक्षण और प्रयासों के वैज्ञानिक तरीकों से संभव हुआ है। प्रबन्ध के अपने सिद्धान्त, नियम व तकनीक हैं ।

विज्ञान द्वारा विभिन्न प्रक्रियाओं, घटनाओं तथा परिणामों के कारणों और प्रभाव को समझा जा सकता है। विज्ञान द्वारा ही हम विभिन्न चरणों के परस्पर संबंध को उजागर कर सकते हैं। विज्ञान की भांति प्रबन्ध में भी हम सिद्धान्तों व नियमों के आध ाार पर मानव व्यवहार व आचरण को परिभाषित कर सकते हैं। घटनाओं व परिणामों के कारण तथा उनके प्रभाव के अध्ययन से ही प्रबंध की तकनीक का विकास हुआ है।

व्यक्तियों और उनके व्यवहार से संबंध रखने के कारण प्रबंध एक सामाजिक विज्ञान है परन्तु प्रबन्ध भौतिक या रसायन शास्त्र की भांति पूर्ण रूप से प्राकृतिक विज्ञान नहीं हैं क्योंकि मानव स्वभाव को प्रयोगशालाओं में प्रयोग करके नहीं परखा जा सकता जैसा कि हम प्राकृतिक विज्ञान में करते हैं। प्रत्येक अवस्था में मानव व्यवहार के यथार्थ का पूर्वानुमान लगाना संभव नहीं है। व्यापार की परिस्थितियां भी निरंतर परिवर्तनशील होती हैं इसलिए प्रबंध के सिद्धान्त स्थाई सत्य नहीं है परन्तु वे पारिस्थितिक मार्गदर्शन के लिए आवश्यक प्रतीत होते हैं।

प्रबंधकीय सिद्धान्तों के इस व्यापक आधार द्वारा ही प्रबंधकीय ज्ञान का शिक्षण, प्रशिक्षण तथा व्यवहार संभव है । प्रबन्ध के नियमों के व्यापक प्रयोग से प्रबंधकीय कार्यों की कुशलता से किया जा सकता है। प्रबन्धकों की समस्यायें सुलझाने में ये नियम मार्गदर्शक की भूमिका निभाते हैं। इस प्रकार प्रबंधक स्वपरीक्षण के कार्य से मुक्ति पाते हैं। ये नियम प्रबंध के क्षेत्र में शोधकर्ताओं के लिये भी अति उपयोगी हैं। इन नियमों के आधार पर ही नये नियम जन्म लेते हैं पुराने नियमों का सुधार व समन्वय हो पाता है। वास्तव में प्रबंध के नियमों के प्रयोग से इच्छित परिणामों की प्राप्ति को प्रबंध की कला कहते हैं। यह भी अन्य कलाओं की तरह एक उपयोगी कला है। विज्ञान और कला में यही अन्तर है कि विज्ञान द्वारा विगत घटनाओं की व्याख्या की जा सकती है जबकि कला द्वारा परिणामों को प्रभावी बनाया जा सकता है। कला के उपयोग केबिना अच्छे परिणाम संभव नहीं हैं। वैज्ञानिक ज्ञान एवं निपुणता के प्रयोग से ठोस परिणामों की उपलब्धि निस्संदेह एक कला है परन्तु प्रबन्ध की प्रक्रिया में अंर्तदृष्टि तथा सही निर्णय की भी बहुत आवश्यकता होती है।

हम कह सकते हैं कि प्रबंध की क्रिया एक कला है जो कि प्रबंध के व्यवस्थित ज्ञान पर आधारित है। प्रबंध के कला एवं विज्ञान के दो रूपों को पूर्ण रूप से अलग नहीं किया जा सकता। वे एक दूसरे के पूरक हैं। किसी एक रूप में सुधार से प्रबंध का दूसरा रूप भी सुधरता है। प्रबंधकीय विज्ञान में सभी नियमों को सिद्ध नहीं किया गया है। कोई भी नियम प्रबंधकों के लिए व्यापक साधन हो सकता है।

उपर्युक्त विश्लेषण के बाद यह कहा जा सकता है कि प्रबंध विज्ञान तथा कला दोनों ही हैं। प्रबन्ध संबंधी विचारधारा के ऐतिहासिक सिंहावलोकन से यह भी पता लगता है कि विभिन्न प्रबन्धशास्त्रियों तथा कर्मठ उद्योगपतियों ने अवलोकन तथा प्रयोग के माध्यम से ऐसे अनेक निष्कर्ष निकाले हैं जिन्हें प्रबन्ध के सिद्धान्तों की संज्ञा दी जाती है । ये केवल वास्तविक अवस्था का ही अध्ययन नहीं करते वरन उन आदर्श विधियों की ओर भी संकेत करते हैं जिनके प्रयोग से अधिकतम श्रेष्ठतम तथा सस्ता उत्पादन सम्भव हो सकता है।

प्रबन्ध वास्तव में एक कला भी है और इस नाते यह धनोत्पत्ति की ऐसी विधियों की ओर संकेत करता है जिससे समाज की आर्थिक समृद्धि बढ़ती है। सिद्धान्त हमें यह बताते हैं कि आदर्श मजदूरी अथवा पूर्ण रोजगार पर पहुँचने के लिए हमें किन नियमों का पालन करना चाहिए, न्यूनतम व्यय पर अधिकतम उत्पादन कैसे संभव हो सकता है, इत्यादि। अतः कला ओर विज्ञान दोनों ही प्रबन्ध रूपी सिक्के के दो पहलू हैं और इन्हें पृथक नहीं किया जा सकता।

1.7 प्रबन्ध एवं प्रशासन

विद्वानों के अनुसार, प्रशासन से तात्पर्य मुख्यतः उस साधन से होता है जो कि उस उद्देश्य को निर्धारित करता है जिसे संस्था व कर्मचारियों को प्राप्त करना है या दूसरे शब्दों में का नियमन करते रहेंगे। इसी प्रकार प्रबन्ध वह साधन है जिसके द्वारा उन सामान्य सिद्धान्तों के अनुपालन की योजना बनाई जाती है तथा देख रेख की जाती हैं। अतः किसी उद्यम की प्रकृति एवं प्रबन्धकीय स्तर के आधार पर ही प्रायः प्रबंध एवं प्रशासन में अन्तर किया जाता हैं आइये इसकी व्याख्या करें –

(क) उद्यम की प्रकृति के आधार पर

इस धारणा के अनुसार प्रबंध शब्द का प्रयोग उन संगठनों में किया जाना चाहिए जिनका प्राथमिक उद्देश्य आर्थिक लाभ अर्जित करना हों। केवल आर्थिक प्रतिफल से प्रेरित उद्यमों या वाणिज्यिक संस्थाओं में ही प्रबंध शब्द का प्रयोग उचित है। सरकारी संस्थाओं व कार्यालयों में सामाजिक या राजनैतिक कार्य होते हैं।जिसका मूल उद्देश्य लाभ कमाना नहीं है। अतः इन संगठनों में प्रशासन शब्द का प्रयोग किया जाना चाहिये।

(ख) प्रबंधकीय स्तर पर आधारित अंतर

एक ही संगठन में भी प्रबंध एवं प्रशासन शब्द का प्रयोग प्रबंधकीय कार्यों के उपक्रम के आधार पर अलग अलग किया जाता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि- 'प्रशासन' का कार्य नीति निर्माण व नियोजन करना होता है तथा प्रबंध उसका क्रियान्वयन करता है। आइये इस अन्तर को तालिका निम्नलिखित द्वारा समझने का प्रयास करें।

अन्तर का आधार	प्रशासन	प्रबन्ध
1. निर्धारण	प्रशासन का मुख्य कार्य संस्था के उद्देश्यों व नीतियों का निर्धारण करना होता हैं।	प्रबंध, प्रशासन द्वारा निर्धारित उद्देश्यों को पूरा करने का प्रयास करता है। लक्ष्य निर्धारण से प्रबंध का प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता।
2. नीतियों का क्रियान्वयन	प्रशासन का प्रत्यक्ष सम्बंध नहीं होता।	प्रबंध, प्रशासन द्वारा नियत सीमाओं के अन्तर्गत नीतियो को क्रियान्वित तथा निर्धारित लक्ष्यों की पूति के लिए संगठन का प्रयोग करता है

3. मालिक व सेवक का सम्बन्ध	प्रशासन वास्तव में उद्योग का मालिक है, जो उसे भूमि, श्रम, पूँजी, साहस व संगठन प्रदान करता है और इन सेवाओं के फलस्वरूप लाभ प्राप्त करना चाहता है।	प्रबंध, प्रशासन का सेवक है जो उसके आदेशानुसार कार्य करता है तथा अपनी सेवाओं के बदले वेतन प्राप्त करता है।
4. समन्वय	प्रशासन, वित्त, उत्पादन व वितरण में समन्वय की स्थापना करता है।	प्रबंध, प्रशासन द्वारा निर्धारित विशिष्ट लक्ष्यों की पूर्ति के लिए संगठन का प्रयोग करता है।
5. निर्णयात्मक बनाम क्रियान्वयन सम्बंधी कार्य	प्रशासन एवं निर्णयात्मक प्रकार्य है।	प्रबंध एक कार्यकारी या क्रियान्वयन सम्बन्धी प्रकार्य है, जिसका संबंध प्रशासन द्वारा निर्धारित व्यापक नीतियों का पालन कराने से होता है।
6. प्रबंध स्तर	प्रशासन से तात्पर्य शीर्ष या सर्वोच्च प्रबंध स्तर से होता है।	प्रबंध से तात्पर्य मध्यम एवं निम्न स्तर के प्रबंध से है।
7. प्रशासकीय योग्यता	प्रशासकी को प्रशासकीय योग्यता की आवश्यकता होती है। जैसे जैसे कोई व्यक्ति प्रबंध के स्तर के ऊपर की ओर बढ़ता है उसे तकनीकी योग्यता क्रम और प्रशासकीय योग्यता अधिक आवश्यकता होती है।	प्रबंधक के लिए प्रशासकीय क्षमता के साथ साथ तक–नीकी ज्ञान भी आवश्यक होता है।
8. शब्द प्रयोग	प्रशासन शब्द का प्रयोग प्रायः सरकारी क्षेत्र में किया जाता है	प्रबंध शब्द का प्रयोग व्या–वसायिक व औद्योगिक क्षेत्र में प्रचलित है।
9. निर्देशन	प्रशासन निर्देशन क्रता है।	प्रबंध निर्देशन नहीं करता वरन उसका कार्य तो केवल यह देखना है कि संस्था के सभी कर्मचारीगण प्रशासन द्वारा प्रदत्त निर्देशन के अनुसार ही कार्य करें।

10. क्षेत्र	प्रशासन केवल नियोजन व नियंत्रण से सम्बन्ध रखता है।	प्रबंध एक विस्तृत तथा सामान्य प्रकार्य है जो निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए नियोजन, निर्माणन, क्रियाओं के समन्वय, मनो–बल एवं अनुशासन को बनाये रखने का कार्य करता है।

स्व–प्रगति मूल्यांकन प्रश्न – ख

1. निम्नलिखित प्रबंधकीय क्रियाओं का कार्यानुसार श्रेणियन करें।

प्रबंधकीय क्रियाएं	प्रबंधकीय कार्य
1. पूर्वानुमान	.....
2. संचारण	.....
3. कार्य मानकों की स्थाना	.....
4. प्रबंधकों का चयन	.....
5. बजट बनाना	.....

2. निम्नलिखित में से सत्य तथा असत्य कथनों का चयन करें।
   1. निम्न स्तर के प्रबंध को नीति पकर प्रबंध भी कहते हैं। .....
   2. संकल्पनात्मक कुशलता कातात्पर्य उपकरणों विधियों तथा तकनीक सम्बन्धी योग्यता .....
   3. कार्यकारी प्रबंध लाभार्जन के लिए उत्तरदायी होता है। .....
   4. नियुक्तियों प्रायः संगठन के प्रारूप निर्माण करती है। .....
   5. अभिप्रेरण नियोजन का ही एक अंग है .....
   6. उद्यम के कर्मचारी दायित्व धार होते हैं .....

1.8 प्रबन्ध के सामाजिक उत्तरदायित्व

आज औद्योगिक क्षेत्र के बढ़ते हुए स्वरूप के साथ साथ प्रबंध की विचारधारा का दृष्टिकोण भी अत्यधिक विस्तृत हो गया है। प्रारम्भिक अवस्था में प्रबंध केवल नियोक्ता के प्रति ही उत्तरदायी था परन्तु आज यह सम्पूर्ण समाज के प्रति उत्तरदायी है। आधुनिक प्रतिस्पर्धात्मक अर्थव्यवस्था में प्रबंध का उद्देश्य केवल लाभ कमाना नहीं

रह गया है अपितु प्रबंध समाज के विभिन्न वर्गों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उत्पादन कार्य को सम्पन्न करना भी है जिससे प्रबन्ध न्यूनतम लागत पर श्रेष्ठतम उत्पाद उपलब्ध करा सके। आज के युग में प्रबन्ध उपभोक्ताओं के उत्पादों की गुणवत्ता तथा विशेषताओं के संबंध में जानकारी प्रदान करता है। इस प्रकार प्रबंध अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करता है। आइये सामाजिक दायित्व के क्षेत्रों को और गहराई से समझने का प्रयास करें –

(क) देश की प्राकृतिक सम्पदा का व्यवस्थित व श्रेष्ठ उपयोग करना जिससे राष्ट्र समृद्ध हो सके।

(ख) उपभोक्ताओं को पर्याप्त मात्रा में उच्च गुणवत्ता के सस्ते उत्पाद व सेवाऐं उचित समय व स्थान पर उपलब्ध कराना तथा मूल्यों में स्थायित्व बनाए रखना तथा उनमें अत्यधिक वृद्धि को रोकना।

(ग) पूँजीपतियों, अंशधारियों व ऋणदाताओं द्वारा लगायी गयी पूँजी की सुरक्षा एवं लाभांश की व्यवस्था करना।

(घ) बेरोजगारी की समस्या के निवारणार्थ रोजगार के क्षेत्र में नए अवसर प्रदान करना। प्रबन्ध में श्रमिकों की भागीदारी सुनिश्चित करना तथा सामाजिक कल्याण की व्यवस्था करना, जैसे विद्यालय व महाविद्यालय खोलना, शिशु सदन, धर्मशाला, मंदिर, मनोरंजनालय, चिकित्सालय, आदि की व्यवस्था करना।

(ङ) सरकार द्वारा प्रतिपादित नीतियों, नियमों व कानून का पालन सुनिश्चित करना, राज्य द्वारा लगाए गये करों को ईमानदारी के साथ चुकाना।

(च) धूल, धुऑ, गन्दा जल, विषैले रासायनिक पदार्थ आदि से होने वाले प्रदूषण को रोकना तथा वृक्षारोपण को बढ़ावा देना।

(छ) समाज की संस्कृति व प्रचलित परम्पराओं की रक्षा करना तथा लोकतंत्र, समाजवाद व धर्मनिरपेक्षता को प्रोत्साहित करना।

प्रबंध के सामाजिक उत्तरदायित्व को समझने के पश्चात आइये इसके धनात्मक पहलुओं का विश्लेषण करें, जिसके कारण व्यवसायिक संस्थाओं को इन्हें अपनी कार्य प्रणाली में सम्मिलित करना चाहिये।

(क) यद्यपि सामाजिक उत्तरदायित्व को पूर्ण करने में व्यवसाय को समय और धन का व्यय करना पड़ता है, किन्तु वास्तव में यह व्यय नहीं वरन निवेश है जिसमें व्यवसाय का दीर्घकालीन हित छुपा होता है क्योंकि इससे व्यवसाय में शामिल सभी उपभोक्ता, कर्मचारी, पूर्तिकर्ता आदि लाभान्वित होते हैं एवं संतुष्ट रहते हैं।

RIL-480

25

(ख) अपने उद्देश्यों में सामाजिक दायित्व का समावेश, किसी भी व्यवसाय की समाज में छवि उज्जवल होती है।

(ग) प्रायः जो संगठन सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वाह विधिपूर्वक सुव्यवस्थित ढंग से करते हैं, उनसे समाज ही नहीं वरन सरकार भी संतुष्ट रहती है तथा सरकार ऐसे व्यवसायों की सहायता करती है।

(घ) समाज भी ऐसी संस्थाओं को धनात्मक दृष्टि से देखता है तथा इनकी कमियों के आलोचनाओं के प्रति जनता का ध्यान नहीं जाता।

(च) सामाजिक दायित्व की मांग काफी हद तक व्यवसाय की सफलता का मूल्य है। इससे जनसाधारण के जीवन स्तर की गुणवत्ता में भी सुधार होता है।

(छ) सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना आर्थिक उत्पादन तो बढ़ाती ही है, साथ ही देश के संसाधनों व संस्कृति की भी रक्षा होती है। संसाधनों के सदुउपयोग से राष्ट्रीय सम्पत्ति में वृद्धि होती है।

(ज) इस भावना के फलस्वरूप ही अनेक आर्थिक एवं सामाजिक समस्याएं स्वतः समाप्त हो जाती है। जैसे – बेरोजगारी की समस्या, बीमारी, अज्ञानता, आवास की समस्याएं आदि।

(प) किसी व्यवसाय द्वारा सामाजिक दायित्वों का निर्वहन व्यवसाय के नैतिक व्यवहार का एक आवश्यक अंग हैं। सामाजिक दायित्व व्यवसाय के नैतिक दायित्व का निर्माण करते हैं। व्यवसाय मात्र धर्नाजन का उपकरण ही नहीं हैं।

(फ) सामाजिक उत्तरदायित्व का उद्देश्य व्यवसाय के वाणिज्यिक और आर्थिक हितों में वृद्धि करता है और उसे प्रत्यक्ष रूप से शक्ति प्रदान करता है। सामाजिक शक्ति की सुरक्षा भी सामाजिक उत्तरदायित्व से ही हो सकती है। ऐसी संस्थाएं वैध सामाजिक मूल्यों और हितों के विरूद्ध कोई काम नहीं कर सकती।

इस प्रकार यहॉ सामाजिक उत्तरदायित्व के धनात्मक पक्ष ही नहीं बल्कि इसकी कुछ सीमायें भी हैं। जिसका विश्लेषण इस प्रकार से है –

(क) सामाजिक दायित्व के पालन के साथ–साथ प्रबन्धक को अपने आर्थिक लाभों को संरक्षित कर लेना चाहिए। आर्थिक दृष्टि से कमजोर संगठन अपने सामाजिक दायित्व को सुव्यवस्थित रूप से नहीं निभा सकते। आवश्यकता यह है कि सामाजिक दायित्व एवं आर्थिक सुदृढ़ता के मध्य समन्वय एवं संतुलन लेकर चला जाए।

(ख) प्रबन्धक को यह भी निश्चित करना चाहिए कि क्या वह सामाजिक दायित्व का निर्वहन कर सकता है या नहीं। ऐसा न करने पर सामाजिक दायित्व को निभाने के

परिणाम निरर्थक व असंतुलित हो सकते हैं।

(ग) सामाजिक दायित्व के कुछ क्षेत्र गैरकानूनी हो सकते हैं, जैसे राष्ट्रीय शिक्षा नीति के विरूद्ध शिक्षा देना आदि। व्यवसाय समाज का सेवक है। मालिक नहीं अतः सरकार की तरह प्रबंधकों का काम नहीं हो सकता। इस प्रकार जो भी कार्य किया जाए वह अधिकार की सीमा के बाहर नहीं होना चाहिए।

उपर्युक्त विवेचनाओं से यह स्पष्ट है कि उपर्युक्त सीमाओं के अन्तर्गत ही सामाजिक उत्तरदायित्व का कार्य होना चाहिए। आधुनिक युग में यह विचार उत्तरोत्तर प्रगति पर है कि प्रबंध को सामाजिक दायित्व में अपनी भूमिका को प्रभावपूर्ण एवं सुव्यवस्थित ढंग से स्वीकार करना चाहिए। जिससे समाज निरन्तर प्रगति के पथ पर अग्रसारित हो सके।

1.9 सारांश

इस इकाई के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रबन्ध एक बहु आयामी विधा है जिसमें प्रशासनिक व क्रियात्मक दोनों स्वरूप हैं। प्रतियोगात्मक व्यवसाय की उन्नति के लिए प्रबन्ध आवश्यक है। व्यवसाय के संगठनात्मक स्वरूप में श्रेष्ठ प्रबन्ध की ही महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विश्व के किसी भी देश के आर्थिक व सामाजिक विकास में प्रबन्ध एक निर्णायक भूमिका निभाता तत्व है। विकासशील राष्ट्र अविकसित नहीं है, वरन कुप्रबंधित है।" अतः विकास की चुनौतियों का सामना करने के लिए प्रबन्ध का श्रेष्ठतम उपयोग करना होगा।

प्रबन्ध और प्रशासन में अन्तर उसके प्रयोग के आधार पर किया जा सकता है। वाणिज्यिक संगठनों में प्रबन्ध शब्द का प्रयोग प्रचलित है। तथा सामाजिक और राजनैतिक कार्यों में संलग्न सरकारी उद्यमों में प्रशासन शब्द का प्रयोग किया जाता है। लेकिन व्यवहार में दोनों का पर्यायवाची अर्थों में प्रयोग किया जाता है। प्रबंध की परिभाषा को चार विभिन्न विचारधाराओं में बॉटा जा सकता है प्रक्रिया विचारधारा प्रबन्धक के कार्यों का विश्लेषण करता है और विभिन्न कार्यों में प्रबंधकीय गतिविधियों को वर्गीकृत करता है जैसे नियोजन, संगठन, नियुक्तियां (कर्मचारी चयन) नेतृत्व तथा नियंत्रण । मानवीय विचारधारा संगठन के मानवीय पहलुओं पर बल देते हुए मनुष्य के प्रबंध पर अधिक महत्व देता है। तीसरी विचारधारा प्रबंध में निर्णय लेने की कला को अधिक महत्व देती है। इस विचारधारा के अनुसार उपलब्ध विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन करना प्रबंध का उद्देश्य है। प्रणाली एवं आकस्मिकता विचारधारा संगठन को बाह्य वातावरण के अनुकूल ढालने पर बल देती हैं। प्रबंध की विभिन्न

परिभाषाओं तथा संकल्पनाओं के आधार पर ही प्रबंध की प्रकृति के तत्व निर्धारित किये गये हैं।

समाज तथा संगठन के सभी वर्गों के प्रति प्रबंध उत्तरदायित्व को उसका "सामाजिक दायित्व कहते हैं। व्यावसायिक संगठन चूँकि समाज द्वारा निर्मित है इसलिए उन्हें समाज की मांग को पूरा करना चाहिए। सामाजिक दायित्व का निभाना संगठन के दीर्धावधि हितों का संरक्षण करता है। प्रबंधक केवल अपने स्वामी का आर्थिक हित ही न देखें वरन अन्य वर्गों जैसे कि कर्मचारियों उपभोक्ताओं, सरकार तथा पूर्ण समाज के हितों की भी रक्षा करें तभी प्रबन्ध की संकल्पना वास्तविक धरातल पर सिद्ध हो सकेगी।

1.10 उपयोगी शब्दकोश

1. **प्रशासन** – प्रबंध द्वारा निष्पादित नीतियों एवं उद्देश्यों के सम्पूर्ण निर्धारण का बौद्धिक कार्य।
2. **प्रबंध की कला** – प्रबंध के वैज्ञानिक सिद्धान्तों को व्यवहार में लाना।
3. **संकल्पनात्मक कुशलता** – संगठन की समस्त गतिविधियों व हितों को समझने तथा संयोजित करने में प्रबंधक की योग्यता।
4. **नियंत्रण** – पूर्वनिर्धारित मानकों से परिणाम की तुलना करना तथा प्राप्त विचलन को सुधारना।
5. **पूर्वानुमान** – भावी घटनाओं का पूर्वज्ञान करना।
6. **प्रबंध** – मानव समूह की गतिविधियो के निर्देशन तथा अन्य संसाधनों के उपयोग से पूर्वनिर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति की प्रक्रिया।
7. **संगठन** – अपेक्षित गतिविधियों को पहचानने तथा वर्गीकृत करने, व्यक्तियों के पारस्परिक संबंध निर्धारित करने और उन्हें अधिकार देने की प्रक्रिया।
8. **नियोजन** – भावी कार्यनीति निर्धारित करना।
9. **पेशा** – एक विशिष्ट प्रकार का कार्य करने के लिए ज्ञान की सुनिश्चित शाखा के सिद्धान्तों तथा किसी मान्य संस्था द्वारा निर्धारित आचार संहिता के निर्देशों का व्यवहार।
10. **नियुक्तियाँ (कर्मचारी चयन)** – संगठन के प्रारूप में विभिन्न पदों का सृजन व उनके लिये उपयुक्त व्यक्तियों का चयन।

11. प्रबंध का विज्ञान – ज्ञान की एक सुनिश्चित शाखा के सिद्धान्तों, संकल्पनाओं और तकनीक का प्रबंधकीय कार्यों में प्रयोग।

12. सामाजिक दायित्व – उद्यम एवं प्रबंध से संबंधित वर्गों की अपेक्षायें।

1.11 स्वमूल्यांकन प्रश्न

प्रश्न 1. प्रबन्ध क्या है? इसके विभिन्न दृष्टिकोणों को स्पष्ट करें।

प्रश्न 2. "प्रबंध कला एवं विज्ञान दोनों है" क्या आप इससे सहमत हैं? स्पष्ट करें।

प्रश्न 3. विभिन्न स्तर के प्रबन्धकों के कार्यों का वर्णन करें।

प्रश्न 4. सामाजिक दायित्व की परिभाषा तथा उसकी सीमाओं को स्पष्ट करें।

प्रश्न 5. प्रबंध के विभिन्न कार्यों का वर्णन करें।

प्रश्न 6. निम्नलिखित में अन्तर बताइये।

(अ) प्रबंध एवं प्रशासन

(ब) प्रबंध एक प्रक्रिया और एकाधिकार तंत्र के रूप में

(स) प्रशासनात्मक प्रबंध एवं क्रियात्मक प्रबंध

(द) प्रबंध कला एवं विज्ञान

प्रश्न 7. क्या प्रशासन एवं प्रबंधन पर्यायवाची शब्द हैं? यदि नहीं तो एक तालिका द्वारा इनके अन्तर को स्पष्ट करें।

1.12 स्व–प्रगति मूल्यांकन प्रश्नों के उत्तर

स्व–प्रगति मूल्यांकन प्रश्न – क

1. 1. निर्णय विचारधारा
   2. प्रक्रिया विचारधारा
   3. प्रणाली एवं आक्समिकता विचारधारा
   4. मानवीय संबंध विचारधारा

2. 1. गलत 2. गलत 3. सही 4. गलत 5.गलत 6. गलत

स्व–प्रगति मूल्यांकन प्रश्न –ख

1. 1. नियोजन 2. नेतृत्व 3. नियंत्रण 4. नियुक्तियां 5. नियोजन

2. 1. गलत 2. गलत 3. गलत 4. गलत 5. गलत 6. गलत

संदर्भित ग्रन्थ

- एम.सी.शर्मा एवं सी.एल. चतुर्वेदी : प्रबंध के सिद्धान्त (दिल्ली : श्री महावीर बुक डिपो, प्रथम संस्करण)अध्याय 1, 2, 4, 5, 6 खण्ड एक।
- जे.आर. कुम्भट : व्यवसाय प्रबंध सिद्धान्त एवं व्यवहार (इलाहाबाद : किताब महल, 1984)
- हैरेल्ड कुंज एवं ओ. डोनेल : मैनेजमेन्ट (नई दिल्ली : मैक ग्राव हिल बुक कम्पनी, 1984) अध्याय 1 से 3 (अंग्रेजी में)
- वी.एस.पी.राव और पी.एस. नारायण, प्रिंसिपल्स एण्ड प्रैक्टिस ऑफ मैनेजमेंन्ट (नई दिल्ली : कोर्णाक पब्लिशर्स, 1987) अध्याय 1 से 5 (अंग्रेजी में)।
- एस.पी.सक्सेना, प्रबन्ध के सिद्धान्त, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा 2000

इकाई –2 प्रबंध के विभिन्न सम्प्रदाय

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 प्रबन्ध विचारधारा का उद्भव

2.3.1 प्राचीन काल में प्रबन्ध

2.3.2 मध्य काल में प्रबन्ध

2.3.3 आधुनिक काल में प्रबन्ध

2.4 विभिन्न सम्प्रदायों के प्रेरक तत्व

2.5 भारत में प्रबंधकीय विचारधारा का विकास

2.6 प्रबन्ध की रूढ़िवादी सम्प्रदाय

2.6.1 वैज्ञानिक प्रबंध

2.6.2 चार्ल्स बैवेज का योगदान

2.6.3 टेलर का योगदान

2.6.4 रूढ़िवादी सम्प्रदाय की आलोचना

2.7 प्रबंध का नया रूढ़िवादी सम्प्रदाय

2.7.1 मानव सम्बन्धों के विचारक

2.7.2 व्यवहारिक विज्ञान के विचारक

2.8 प्रबन्ध का आधुनिक सम्प्रदाय

2.8.1 प्रणांलीगत विचारधारा

2.9 आधुनिक प्रबंध

2.10 सारांश

2.11 उपयोगी शब्दकोश

2.12 स्वमूल्यांकन प्रश्नावली

2.13 स्व–प्रगति मूल्यांकन प्रश्नों के उत्तर

2.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

- प्रबन्ध की उद्गम प्रक्रिया को जान सकेंगें,
- प्रबन्ध से जुड़े विभिन्न सम्प्रदायों के प्रेरक तत्व को सूचिबद्ध कर सकेंगे,
- भारत में प्रबंधकीय विचारधारा के आविर्भाव का विश्लेषण कर सकेंगे,

RIL-080

31

- प्रबन्ध की रूढ़िवादी, नयी रूढिवादी तथा आधुनिक विचारधाराओं का विस्तार से जान सकेंगे, तथा
- आधुनिक प्रबन्ध की प्रकृति का विश्लेषण कर सकेंगें।

2.2 प्रस्तावना

प्रबन्ध की विचारधारा का जन्म कब हुआ, इसका स्रोत क्या था? इस विषय में चिरकाल से आजतक स्पष्ट रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता, किन्तु इस सम्बन्ध में यह तो स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि जितनी पुरानी हमारी मानव सभ्यता है उतना ही पुराना प्रबन्ध की विचारधारा का जन्म। इसके सम्बन्ध में भी दो राय नहीं है कि प्राचीनकाल में प्रबंध का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं था, दूसरे शब्दों में व्यवसाय का स्वामी ही स्वयं प्रबन्ध कार्यों को किया करता था। किन्तु आज के प्रतिस्पर्धात्मक दौर में प्रबन्ध का स्वतंत्र आवतल समाप्त हो गया है और इसकी जगह पेशेवर प्रबन्ध ने ले ली है। प्रायः प्रबन्ध विचारधारा के उदगम में तीन चरणों को रखा जा सकता है यथा प्राचीन काल में प्रबन्ध, मध्यकाल में प्रबन्ध तथा आधुनिक प्रबन्धन। इसी प्रकार प्रबन्ध की विचारधाराओं को भी तीन सम्प्रदायों (रूढ़िवादी, नवरूढ़िवादी एवं आधुनिक) में वर्गीकृत किया जा सकता है –

2.3 प्रबन्ध विचारधारा का उद्‌गम

जैसा कि हमने देखा अध्ययन को सुव्यवस्थित करने के लिए हम प्रबन्ध के विकास को तीन चरणों में विभक्त करते हैं। आइये अब उन्हें क्रमवार गहराई से समझने का प्रयास करें –

2.3.1 प्राचीन काल में प्रबन्ध

मानव सभ्यता का विकास तथा प्रबन्ध का विकास लगभग साथ साथ हुआ है। मानव सभ्यता के विकास के साथ ही प्रबन्ध कला लगभग सभी संगठनों में विद्यमान थी। सर्वप्रथम प्रबन्ध विचारधारा का अभ्युदय व्यक्तिगत नेतृत्व के रूप में हुआ। इसका प्रथम उदभव मेसोपोटामिया में पादरियों का समूह था जो प्रबन्ध कौशल व कला के लिए विख्यात था। ये अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि कहते थे और इस नाते वे नेतृत्व एवं नियंत्रण का कार्य करते थे। इन्होंने व्यापारिक क्रियाओं का नियोजन किया।

प्रबन्ध कार्य को सुलभ बनाने के लिए हिसाब किताब हेतु अंक विद्या तथा लिखने के कुछ साधनों का आविष्कार भी किया था। इसी प्रकार धार्मिक पुस्तक बाइबिल में भी प्रबन्ध के संबंध में पता चलता है कि उस युग में भी योग्य व्यक्तियों का चयन और सत्ता

के भारार्पण जैसे कुछ सिद्धान्त प्रचलन में थे जो आज विशालकाय औद्योगिक उपक्रमों में बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुए। इसी क्रम में प्राचीन साहित्य में सुकरात तथा अन्य लेखकों के संवादों में विशिष्टीकरण एवं अन्य प्रबन्धकीय सिद्धान्तों का उल्लेख मिलता है।

प्राचीन मिस्रवासियों की प्रबन्ध कुशलता एवं इंजीनियरिंग का अन्दाजा विश्व विख्यात पिरामिडों को देखने से लग जाता है। इसी प्रकार यूनान, रोम व ग्रीक आदि देशों की प्राचीन सुन्दर इमारतें भी इस तथ्य को सिद्ध करती हैं कि उस समय भी श्रमिकों को निर्देशित करने के लिए प्रबन्धक उपस्थित थे। हमारे देश भारत में कौटिल्य द्वारा रचित प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र' जिसकी रचना आज से लगभग 2000 वर्ष पूर्व हुई थी, में राजनीतिक अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं के साथ साथ सार्वजनिक प्रबन्ध के विभिन्न समस्याओं और उनके समाधान पर भी प्रकाश डाला गया है।

उपर्युक्त व्याख्या से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस संबंध में कोई मतभेद नहीं है कि प्राचीन काल में प्रबंधकीय सिद्धान्तों के लिए जो शब्दावली प्रयोग में लायी जाती थी वह वर्तमान शब्दावली से बिल्कुल भिन्न थी परन्तु यह तो सिद्ध हो ही जाता है कि प्रबन्ध के कुछ मूलभूत सिद्धान्तों का प्रतिपादन पहले ही हो चुका था।

2.3.2 मध्यकाल में प्रबन्ध

औद्योगिक विकास की मध्य यात्रा प्रबंध विकास का आदि काल कहा जाता है। यह आत्मनिर्भरता का समय था। अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण थी जिनकी आवश्यकताओं की पूर्ति गांवों में ही हो जाया करती थी अर्थात व्यापार सीमित था। मध्य युग में औद्योगिक उत्पादन विधियॉ अत्यन्त सरल थीं और जिनके प्रयोग से ज्ञान के लिए विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं थी। विद्वानों ने माना, मध्यकाल में कारीगर, मजदूर, निरीक्षक, पूंजीपति, व्यापारी तथा दुकानदार सभी कुछ था। शिल्पकार पर ही कारखाना तथा परिवार के सदस्य कारखाने में काम करने वाले कारीगर होते थे। जो कुछ भी उत्पन्न होता था उसका या तो स्वयं उपभोग कर लिया करते थे अथवा यदि कुछ शेष बचता था, तो वह निकटवर्ती लोगों को तुरंत बेच दिया जाता था इस प्रकार उपभोक्ता (क्रेता) और उत्पादक में प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता था। संक्षेप में एक ही व्यक्ति प्रशासक, संगठनकर्ता, व प्रबंधक कहलाता था। जिससे प्रतिस्पर्द्धा की भावना नहीं होती थी। इस प्रकार व्यापारिक गतिविधियों को पुत्र अपने पिता के साथ कार्य करके सीख लेता था। इस प्रकार यह पैतृक ज्ञान पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ता रहता था।

2.3.3 आधुनिक काल में प्रबन्ध

यूरोप के विभिन्न देशों में हुई औद्योगिक क्रान्ति ने व्यापारिक क्षेत्र के सामाजिक

संरचना में गंभीर परिवर्तन किए तथा संगठन के विकास तथा विकेन्द्रीयकरण को प्रोत्साहन मिला। नये आविष्कार, अधिक उत्पादन, श्रम विभाजन, विशिष्टीकरण आदि के विकास से नई प्रबन्धकीय समस्याओं को आधार मिला। इसी समय एडम स्मिथ ने 1776 में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Wealth of Nations' में कुछ समान्य प्रबन्धकीय समस्याओं को रखा तथा कुछ सिद्धान्तों का सूत्रपात किया। एडम स्मिथ के कार्यों को आगे बढ़ाते हुए कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में गणित के प्रो. चार्ल्स बैवेज ने अपने लेख 'On the Economy of Machinery and Manufactures' में उत्पादन प्रबन्ध के अनेक सिद्धान्तों की विस्तार से व्याख्या की।

20वीं शताब्दी के आरम्भ से ही वैज्ञानिक प्रबन्ध का सूत्रपात हुआ जो बाद में आधुनिक प्रबन्ध का आधार स्रोत बना तथा प्रबन्ध को एक पेशे के रूप में मान्यता दिलाई। वर्तमान प्रतियोगात्मक युग में प्रबन्ध विज्ञान का विकास चार अवस्थाओं में हुआ है। यथा–

- प्रबन्ध की वैज्ञानिक प्रणाली–जिसके प्रणेता एफ.डब्ल्यू. टेलर थे।
- प्रबन्ध की क्रियात्मक प्रणाली जिसके प्रणेता हेनरी फेयोल थे।
- प्रबन्ध दर्शन को भी हेनरी फेयोल ने ही सबके सामने रखा।
- प्रबन्ध का मानवीय दृष्टिकोण जिसे जार्ज एल्टन मेयों ने प्रतिपादित किया।

आधुनिक व्यवसाय की सबसे प्रमुख घटना व्यावसायिक संगठन के प्रमुख स्कंध कम्पनी प्रारूप का रहा जिसके अन्तर्गत मुख्यतः तीन बातों का खुलासा हुआ –

- पूंजी विनियोजन से अनेक कर्मचारियों व विशाल संयंत्रों की सहायता से बड़े पैमाने पर उत्पादन संभव हो गया।
- उद्योगों का वर्गीकरण तीन भागों में हुआ –

1. पूंजी निवेशक
2. प्रबन्ध
3. कर्मचारी

- संयोजन की प्रवृत्ति के कारण औद्योगिक इकाइयों का आकार भी बढ़ा। आवश्यकताओं के परिणामस्वरूप संबंधित औद्योगिक इकाई का संचालन पेशेवर प्रबन्ध के द्वारा सम्भव हो सका। इस प्रकार आधुनिक प्रबन्ध औद्योगिक इकाइयों को निर्देशित करने वाली विधा के रूप में प्रकट हुआ। जिससे लाखों करोड़ों लोगों को रोजगार के अवसर मिले तथा अर्थव्यवस्थाओं को भी आगे विकास करने का समुचित आधार प्राप्त हुआ।

2.4 विभिन्न सम्प्रदायों के प्रेरक तत्व

प्रबन्धकीय इतिहास में विभिन्न सम्प्रदायों को प्रेरित करने वाले कुछ तत्व निम्नलिखित हैं, जिनका चयन हमारे ज्ञान को निश्चित ही सुव्यवस्थित करेगा।

(1) औद्योगिक क्रान्ति

1765 से 1785 के मध्य यूरोप के विभिन्न देशों में होने वाली औद्योगिक क्रान्ति ने सामाजिक ढॉचे में भारी परिवर्तन किये। इस क्रान्ति ने श्रमिकों के ज्ञान एवं कौशल को मशीनों एवं यंत्रों में हस्तान्तरित कर दिया गया। इसके साथ ही साथ आविष्कार, श्रम–विभाजन, विशिष्टीकरण, प्रमापीकरण, श्रम–प्रबन्ध, बड़े पैमाने पर उत्पादन का विकास आदि भी हुआ। परिणामतः विभिन्न प्रकार की समस्यायें उत्पन्न हुई जिनका समाधान करने के लिए प्रबन्धकीय विचारधारा का उदय हुआ।

(2) विश्वव्यापी मन्दी

प्रथम, द्वितीय विश्व युद्ध की नकारात्मक परिणामें से उत्पन्न होने वाली विश्व–व्यापी मंदी से उद्योगपतियों को कम से कम लागत पर उपलब्ध साधनों का अधिकतम विदोहन किस प्रकार किये जाये यह सोचने के लिए विवश किया जिसके परिणामस्वरूप प्रबन्धकीय विचारधारा को प्रश्रय मिला।

(3) श्रमसंघों की स्थापना

औद्योगिक क्रान्ति के समय से श्रमिकों में भी अधिकारों के प्रति चेतना का संचार हुआ जिससे श्रम संघों की स्थापना हुई। इससे श्रम समस्याओं में तीव्र वृद्धि हुई और इनका निवारण करने के योग्य प्रबन्धकों की आवश्यकता महसूस हुई।

(4) श्रम विभाजन एवं विशिष्टीकरण

औद्योगिक क्षेत्र में श्रम विभाजन एवं विशिष्टीकरण के कुशल संचालन हेतु प्रबन्धकों की आवश्यकता हुई जिससे भी प्रबन्धकीय विचारधारा को प्रोत्साहन मिला।

(5) औद्योगिक संघर्ष

श्रमिकों एवं पूंजीपतियों को एक दूसरे के प्रति विरोधी विचारधाराओं के परिणामस्वरूप औद्योगिक झगड़ों को निपटाने के लिए कुशल प्रबन्धकों की आवश्यकता ने भी प्रबन्धकीय क्रान्ति को बल दिया।

(6) संगठन का लोकतांत्रिक प्रबन्ध

अधिकांश बड़ी औद्योगिक इकाइयों का संगठन संयुक्त पूंजी स्कन्ध कम्पनियों के रूप में हुआ जिनका प्रबन्ध लोकतंत्र के सिद्धान्तों के आधार पर होता है अर्थात इनमें

अंशधारियों के द्वारा चुने गये प्रतिनिधि कम्पनी का प्रबन्ध करते हैं और इनमें पेशेवर प्रबन्धक नियुक्त किये जाते हैं जिसके कारण कम्पनी का स्वामित्व एवं प्रबन्ध अलग अलग होता है। अतः व्यावसायिक स्वामित्व से कम्पनी प्रारूप के विकसित होने के परिणामस्वरूप प्रबंधकीय सोच का स्वागत हुआ।

(7) प्रबंधकीय कार्यों की कठिन प्रकृति

औद्योगिक इकाइयों के प्रत्येक क्षेत्र में प्रबन्धकीय कार्यों का अपना योगदान होता है जिसके परिणामस्वरूप प्रबन्धकीय विचारधारा को बल मिला।

(8) प्रबन्ध के सामाजिक उत्तरदायित्व

प्रबन्ध के स्वामियों के प्रति, कर्मचारियों और ग्राहकों के प्रति अथवा उपभोक्ताओं के प्रति, पूर्तिकर्ताओं के प्रति, समाज के प्रति, सरकार के प्रति और जन्म राष्ट्रों के प्रति विभिन्न सामाजिक उत्तरदायित्व ने प्रबन्धकीय क्रान्ति को प्रेरित किया।

(9) प्रबन्ध का पेशेवर होना

जब से प्रबध को एक पेशे के रूप में अपनाया गया है तभी से व्यावसायिक क्षेत्र में प्रबंध का महत्व बढ़ गया है। आज प्रबन्ध उद्योगों में पेशे के समान बन गया है।

2.5 भारत में प्रबंधकीय विचारधारा का विकास

भारत में प्रबंधकीय विचारधारा अपने शैशवकाल में है। यहाँ इसका इतिहास अधिक प्राचीन नहीं है। यहाँ स्वतंत्रता से पूर्व औद्योगिक विकास की स्थिति असंतोषजनक थी। स्वतंत्रता के पश्चात हमारे देश में आर्थिक नियोजन के आधार पर देश का आर्थिक एवं औद्योगिक विकास किया गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक विकास की गति को तीव्र किया तथा निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र में यह महसूस किया गया कि औद्योगिक उपक्रमों के सफल संचालन के लिए पेशेवर प्रबन्धकों की आवश्यकता है। प्रबन्धकीय प्रशिक्षण की दिशा में हमारे देश में विगत वर्षों से जो प्रयास हुए हैं, आइये उनको समझने का प्रयास करें–

(अ) अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद

1949 में भारत सरकार द्वारा अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद की स्थापना की। इस परिषद के सुझाव पर औद्योगिक एवं व्यावसायिक प्रशासन उपसमिति की स्थापना हुई जिसने जून 1953 में अपने प्रतिवेदन में अन्य बातों के अतिरिक्त तीन प्रमुख सिफारिशें की थी –

1. अखिल भारतीय प्रबंन्ध तकनीकी संस्थान की स्थापना

2. एक प्रशासकीय कर्मचारी कालेज की स्थापना की जाये,

3. राष्ट्रीय प्रबन्ध संस्थानों की स्थापना की जाये।

इन सुझावों के आधार पर सरकार ने 1953 में, अखिल भारतीय प्रबन्ध तकनीकी अध्ययन मण्डल की स्थापन की, जिसमें, उद्योग, व्यापार, विश्वविद्यालयों, तकनीकी संस्थान, पेशेवर संगठनों एवं सरकार के प्रतिनिधि सम्मिलित थे। इस मण्डल का प्रमुख कार्य देश में प्रबन्धकीय शिक्षा तथा प्रशिक्षण का प्रसार करना था।

(ब) अखिल भारतीय प्रबन्धकीय संस्थान

भारत सरकार ने अखिल भारतीय प्रबन्ध तकनीकी अध्ययन मण्डल की सिफारिश के आधार पर प्रन्धकीय शिक्षा में शोध कार्य हेतु तथा निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र के औद्योगिक उपक्रमों को प्रशिक्षित प्रबन्धक उपलब्ध करने के उद्देश्य से अहमदाबाद और कलकत्ता में शिक्षण कार्य के लिए संस्थान स्थापित किये।

(स) स्नातकोत्तर प्रशिक्षण की स्थापना

भारत सरकार ने अखिल भारतीय प्रबन्ध तरनीकी अध्ययन मण्डल की सिफारिशों के आधार पर औद्योगिक प्रबन्ध तथा इंजीनियरिंग में स्नातकोत्तर प्रशिक्षण देने की व्यवस्था निम्न संस्थाओं में की है –

1. इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ बिजनेस मैनेजमेंट, अहमदाबाद

2. इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलोजी, खड़गपुर

3. इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल वेलफेयर एण्ड बिजनेस मैनेजमेंट, कोलकता

4. इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस, बंगलौर

5. विक्टोरिया जुबली टेक्नीकल इंस्टीट्यूट, मुम्बई

6. जमनालाल बजाज इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंन्ट, मुम्बई,

7. बिड़ला इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलाजी, पिलानी,

8. मोतीलाल नेहरू इंस्टीट्यूट ऑफ रिसर्च एण्ड बिजनेस मैनेजमेंट, इलाहाबाद

9. प्रशासकीय कर्मचारी कालेज, हैदराबाद, आदि ।

(द) कालेज एवं विश्वविद्यालयों में प्रबन्धकीय शिक्षा की व्यवस्था

विभिन्न कालेज और विश्वविद्यालयों में व्यवसाय प्रशासन एवं प्रबंधन की उच्च शिक्षा एवं शोध की व्यवस्था हुई जिनमें व्यवसाय प्रशासन विभाग की स्थापना की गई

विश्वविद्यालय, जौनपुर विश्वविद्यालय, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय बम्बई विश्वविद्यालय, मद्रास विश्वविद्यालय के नाम उल्लेखनीय हैं।

(न) विशिष्ट पहलुओं के लिए शिक्षण एवं प्रशिक्षण संस्थान

प्रबन्धकीय शिक्षण एवं प्रशिक्षण में अनेक पेशेवर संगठन अपनी भूमिका निभा रहे हैं, जिनमें –

1. इंस्टीट्यूट ऑफ कास्ट एण्ड वर्क्स एकाउन्टेंट्स कोलकता,
2. इंस्टीट्यूट ऑफ चार्टर्ड एकाउन्टेंट्स, मुम्बई,
3. इंस्टीट्यूट ऑफ पर्सनल मैनेजमेंट, कोलकता,
4. इंस्टीट्यूट ऑफ प्रोडक्शन इन्जीनियरिंग, मुम्बई
5. इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्सटाइल रिसर्च एसोसियेशन अहमदाबाद आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

(प) लघु उद्योग संगठन

भारत सरकार द्वारा 1955 में लघु उद्योग संगठन की स्थापना हुई। यह संगठन 'लघु उद्योग सेवा संस्थान' एवं 'विस्तार केन्द्रों के द्वारा प्रबन्धकीय शिक्षा की व्यवस्था सुनिश्चित करता है। यह संस्था लघु उद्योंग कारखानों को तकनीकी प्रशिक्षण सुविधायें प्रदान करने, विदेशी विशेषज्ञों को आमंत्रित करने और भारतीय व्यक्तियों को प्रशिक्षण के लिए विदेशों में भेजने से संबंधित कार्यों में महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है।

(फ) औद्योगिक प्रबन्ध संघ

भारत सरकार ने अपने मंत्रालयों के अधीन स्थापित सार्वजनिक उपक्रमों में उच्च प्रबंधकीय पदों पर नियुक्ति के लिए नवम्बर 1957 में 'औद्योगिक प्रबंध संघ' की स्थापना की इस संघ में सुयोग्य प्रबन्धक ही रखे जाते हैं।

(ब) राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद

भारत सरकार ने वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय के अधीन फरवरी 1958 में भारत सरकार के वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय के अधीन फरवरी 1958 में राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद की स्थापना की। इस परिषद ने देश में उत्पादकता एवं प्रबन्धकीय प्रशिक्षण को प्रारम्भ करने, विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

(न) निजी उद्योगपतियों द्वारा प्रबन्धकीय प्रशिक्षण की व्यवस्था

उद्योगपतियों ने अपने संस्थानों में ही प्रबन्धकीय प्रशिक्षण प्रदान करने की व्यवस्था की हुई है जिनमें टाटा, बिड़ला, जे.के., अम्बानी, बजाज आदि के नाम विशेष

रूप से उल्लेखनीय हैं।

वर्तमान समय में भारत में छोटे–बड़े सभी स्तर के उद्योग स्थापित हैं जिनमें निजी, सहकारी, सार्वजनिक तथा संयुक्त स्वामित्व के उद्योग शामिल हैं। प्रबन्ध की विधि ायों और तकनीकी परिवर्तनों के कारण प्रबन्धकीय क्रान्ति का सभी पैमाने की इकाइयों में समान महत्व हैं। विशेषकर बड़े पैमाने के निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों में प्रबंध व्यवस्था में तीव्र गति से हो रहे परिवर्तन भारत में प्रबन्धकीय क्रान्ति के स्पष्ट प्रमाण हैं। भारत सरकार ने स्वतंत्रता के बाद प्रबन्ध के विकास में पर्याप्त रूचि ली हैं

2.6 प्रबंध का रूढ़िवादी सम्प्रदाय

यद्यपि प्रबन्धकीय विज्ञान का सुव्यवस्थित प्रादुर्भाव अभी कुछ ही वर्षों पूर्व हो सका है। किन्तु प्रबन्ध की समस्यायें तथा इनका समाधान मानव आदिकाल से निरन्तर करता चला आया है। हर युग में मानवीय प्रबंधकों ने तत्कालीन संगठनों की समस्याओं के निराकरण का मार्ग ढूँढा। इस प्रकार प्रबन्ध के कई विचारकों को शामिल कर एक विचारधारा का जन्म हुआ, जिसे रूढ़िवादी विचारधारा कहकर सम्बोधित किया गया।

प्रायः रूढ़िवादिता का अर्थ पुराने समय से चले आ रहे नियमों या परम्पराओं से होता है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि कोई चीज स्थाई या समयबद्ध है या उसे छोड़ देना चाहिए। हम अपने अध्ययन की सुविधा के लिये इस विचारधारा के अन्तर्गत तीन महान प्रबन्ध विद्वानों को समझने का प्रयास करेंगे यथा अधिकार तंत्र या दफ्तरशाही, वैज्ञानिक प्रबन्ध तथा प्रशासनिक प्रबन्ध।

(क) रूढ़िवादी विचारधारा के अन्तर्गत सर्वप्रथम हम मैक्स वेबर के अधिकार तंत्र या दफ्तरशाही संगठन से जुड़े विचारों को जानेंगे अपने अधिकार तंत्र का ढॉचा वेबर ने एक प्रतिक्रिया के रूप में निर्मित किया था। औद्योगिक क्रान्ति के बाद प्रबन्धकों के व्यवहार में कर्मचारियों के दमन भाई–भतीजावाद, निदयता, मनमानी तथा व्यक्तिगत स्वार्थ पूर्ति जैसे निमर्म बुराइयॉ पैदा हो गई थीं और इन्हीं के विरोध में अधिकार तंत्रीय संगठन संरचना का सुझाव वेबर ने रखा था। उनका विश्वास था कि अधिकार तंत्रीय ढांचा मानवीय तथा यांत्रिक शक्तियों के उचित समन्वय का अचूक शस्त्र बनेगा जिससे संगठनात्मक क्रियाओं का और अधिक कुशलता से सम्पन्न किया जा सकेगा। आपके द्वारा अधिकार तंत्र या दफ्तरशाही संगठन के सुव्यवस्थित रूप के लिए अग्रलिखित सूत्र दिये गये।

1. कार्यों का सुव्यवस्थित विभाजन,
2. कार्य में अनिश्चितता को दूर करने तथा उनके पूर्वानुमान करने के लिए सुनिश्चत नियमों का निर्धारण

3. अधिकार एवं दायित्वों के सम्बंधों की स्थापना हेतु अधिकारों की एक सुपरिभाषित क्रमिक श्रृंखला,
4. अधीनस्थों से व्यवहार करते समय अधिकारियों को निरपेक्ष रहना,
5. लिखित नियम एवं निर्णय तथा संदर्भों के लिए एक विस्तृत फाइलिंग व्यवस्था,
6. पदाधिकारियों के लिए निर्धारित योग्यताएं,
7. रोजगार के चयन या पदोन्नति केवल गुण या तकनीकी क्षमता के आधार पर तथा
8. जीवनपर्यन्त के लिए रोजगार तथा मनमाने ढंग से सेवामुक्ति से सुरक्षा।

दफ्तरशाही के गुण

1. सुनिश्चितता
2. तीव्रता,
3. स्पष्टता,
4. फाइलों का ज्ञान,
5. निरन्तरता,
6. विवेकपूर्णता,
7. एकता,
8. कड़ी अधीनस्थता,
9. टकराव की कमी तथा
10. सामग्री एवं श्रम लागतों की कमी।

आलोचना

यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि अधिकार तंत्र को वर्तमान में अकुशलता, अलोचपूर्णता, भ्रष्टाचार, लालफीताशाही आदि नकारात्मक विचारों के साथ जोड़ा जाता है। आलोचकों के अनुसार यह इसे यूरोपीय विपत्ति, भीमकाय जानवर तथा अदृश्य पिशाच जैसी संज्ञान प्रदान की है। संक्षेप में अधिकार तंत्रीय संगठनों के अग्रलिखित दोष होते हैं –

1. नियमों की आलोचपूर्णता
2. अधीनस्थों से अव्यक्तिगत संबंध,
3. पहल और निर्णय में स्वतंत्रता का अभाव तथा नियमों का आधिपत्य,

4. विलम्ब तथा लाला फीताशाही,

5. बर्बादीपूर्ण प्रबंध,

6 भ्रष्टाचार तथा,

7. पक्षपात ।

इन बुराइयों के उपरान्त भी संगठन का मूल ढॉचा अधिकार तंत्र पर ही आधारित होता है अर्थात प्रबंध के ऐसे कोई सिद्धान्त या नियम नहीं बने थे, जिनको प्रबंधक पढ़ सके और उनका अपने वास्तविक जीवन में प्रयोग कर सकें। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण में प्रबन्ध के इस परम्परागत दृष्टिकोण में अन्तर आया, वैज्ञानिक प्रबन्ध के लिए प्रयास हुए और अन्त में "वैज्ञानिक प्रबन्ध" की संज्ञा उन प्रयासों को दी गई।

2.6.1 वैज्ञानिक प्रबन्ध

उन्नीसवीं सदी के समापन तक प्रबंध का उपयोग पुराने ढर्रे पर चलता रहा और इसको व्यक्ति का विशेष गुण कह कर ही सम्बोधित किया जाता रहा। यह तरीका पूर्णरूपेण अवैज्ञानिक तथा सहजबुद्धि की उपज थी तथा इसमें भूल सुधार के माध्यम से प्रबन्ध सम्पन्न होता था। लोगों का अपने तरीके से, तथा अपनी बुद्धिमता से ही सुलझा सकता है। उसकी प्रबंध क्षमता में कोई भी सुधार सैद्धान्तिक ज्ञान के अभाव में नहीं किया जा सकता था। दूसरे कोई से कोई सिद्धान्त या नियम नहीं बने थे, जिनको प्रबन्धक पद दे सकते और प्रयोग कर सकते। इस सदी के अंत में प्रबन्ध के इस पुराने दृष्टिकोण में परिवर्तन आना प्रारम्भ हुआ, वैज्ञानिक प्रबन्ध के लिए प्रबंधकीय चिन्तकों ने सकारात्मक सुझाव प्रस्तुत किये जिनमें चार्ल्स वैवेज और टेलर का योगदान प्रमुख रहा। आइये चार्ल्स वैवेज के योगदान को समझने का प्रयास करें :–

2.6.2 चार्ल्स बैवेज का योगदान

वैज्ञानिक प्रबंध का शुभारम्भ वास्वत में चार्ल्स बैवेज ने 1832 में (Economy of Machines and Manufacturers) नामक एक निबन्ध से किया था। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के गणित के प्रोफेसर सर चार्ल्स बैवेज ने इंग्लैण्ड तथा फ्रांस के कई कारखानों का दौरा करने के बाद से इस निष्कर्ष पर पहुॅचे कि लगभग सभी कारखानों में पुरानी रूढ़िवादी और व्यक्ति पर विधियों से कार्य होता है तथा समस्त कार्य अवैज्ञानिक ढंग से किया जाता है। अधिकांश कार्यों का आधार केवल अनुमान ही होता है। उन्होंने यह अनुभव किया कि इन कारखानों को चलाने में विज्ञान एवं गणित की विधियों का उपयोग सम्भव है। उन्होंने हिसाब लगाने की मशीन (Difference Engine) का भी आविष्कार किया तथा अपने उपर्युक्त निबन्ध द्वारा प्रबन्धकों और

मालिकों से अनुरोध किया कि गणितीय सिद्धान्तों द्वारा प्रत्येक प्रक्रिया का विश्लेषण करके वांछनीय प्रक्रिया मालूम की जानी चाहिए तथा केवल उसी प्रक्रिया का प्रयोग किया जाना चाहिए। प्रत्येक प्रक्रिया की लागत निकाल कर प्रत्येक श्रमिक को उसकी कार्य कुशलता के आधार पर बोनस देने की व्यवस्था भी होनी चाहिए।

इसलिए उनका सुझाव था कि परम्परागत, व्यक्तिपरक और अनुमान के आधार पर हो रहे प्रबन्ध के स्थान पर वैज्ञानिक ढंग से प्रबन्ध किया जाना चाहिए। वैज्ञानिक ढंग से प्रबन्ध के लिए विस्तृत निरीक्षण, आंकड़ों का वस्तुपरक वर्गीकरण और विश्लेषण, सही माप, तथा कारण और प्रभावों का सही सम्बन्ध निश्चित करना आदि कुछ महत्वपूर्ण तत्व भी उन्होंने बताये। वैज्ञानिक प्रबंध की दिशा में उठाया गया यह पहला कदम था। लेकिन व्यावसायिक प्रबन्ध के क्षेत्र में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रतिपादन मुख्य रूप से फेडरिक डब्ल्यू. टेलर ने ही किया था।

2.6.3 फ्रेडरिक विन्सले टेलर

20वीं शताबदी के आरम्भ में वैज्ञानिक प्रबंध की विचारधारा को यू.एस.ए. में एफ. डब्ल्यू. टेलर ने प्रतिपादित किया था। उस समय प्रबन्ध पहल तथा प्रेरणा तत्वों के बल पर किया जाता था। टेलर ने अपना जीवन मेडिविल स्टील कारखानें में कार्य करने वाले मशीन पर काम करने वाले कारीगर के रूप में शुरू किया था। धीरे धीरे उन्होंने अपनी योग्यता में वृद्धि की और फोरमैन तथा बाद में उसी कारखाने में मुख्य अभियन्ता का पद पाया। उसके पश्चात उन्होंने एक दूसरी स्टील कम्पनी के परामर्शदाता के रूप में कार्य किया। यह कंपनी उत्पादन की गंभीर समस्याओं से ग्रसित थी। बहुत से प्रेक्षणों तथा शॉप फ्लोर पर कार्य करने से संबंधित प्रयोगों और श्रमिकों के प्रति अधिकारियों के व्यवहार के अध्ययन के आधार पर टेलर ने वैज्ञानिक प्रबंध के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। टेलर द्वारा प्रतिपादित वैज्ञानिक प्रबंध का सिद्धान्त वास्तव में प्रबंध का वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखता है। इसका प्रमुख उद्देश्य भूल तथा सुधार और अंगूठे के जोर पर प्रबंध की परम्परा को बदलता था। नई विचारधारा का आधार निम्नलिखित सिद्धान्त थे–

- कार्य का मापदण्ड निर्धारित करने, उचित मजदूरी की दर को निश्चित करने तथा कार्य को श्रेष्ठतम विधि से करने के लिए वैज्ञानिक विधियों का विकास तथा प्रयोग करना।
- अधिकतम कुशलता प्राप्त करने के लिए श्रमिकों का वैज्ञानिक विधि से चयन तथा उनको कार्य पर लगाना तथा उनके प्रशिक्षण एवं विकास की व्यवस्था करना।

RIL-080

- अधिकारियों तथा श्रमिकों के बीच स्पष्ट आधार पर कार्य विभाजन तथा उत्तरदायित्व को निर्धारित करना।
- नियोजन कार्यों तथा उपकार्यों के अनुसार कार्य निष्पादित कराने के हेतु श्रमिकों के बीच सहयोग तथा मधुर संबंधों की स्थापना करना।

वैज्ञानिक प्रबंध को सफलीभूत करने के लिए बहुत सी तकनीकों का विकास किया गया। इन सभी को मिलाजुलाकर नई विचारधारा के तंत्र के लिए निम्नलिखित तकनीकों को अपनाया गया –

- किसी कार्य की विभिन्न प्रक्रियाओं को पूरा करने में लगने वाले समय का मापन तथा विश्लेषण का अध्ययन, प्रक्रियाओं का प्रमापीकरण और उचित मजदूरी का निर्धारण करना।
- किसी कार्य को निष्पादित करने में की जाने वाली गति का अध्ययन जिससे कार्य की जाने वाली गति को रोका जा सके तथा कार्य निष्पादित करने का एक सर्वश्रेष्ठ तरीका निर्धारित किया जा सके।
- उपकरण यंत्रों व मशीनों का प्रमापीकरण तथा कार्य करने की दशाओं में सुधार।
- कुशल व अकुशल श्रमिकों की मजदूरी की भिन्न दरें तथा प्रेरणात्मक मजदूरी दर को अपनाना।
- कार्यात्मक फोरमैनी को अपनाना जिसमें मशीन की गति, सामूहिक कार्य, रिपेयर्स, कराने आदि के लिए पृथक पृथक फोरमैनों की नियुक्ति की जानी चाहिए।

टेलर ने वैज्ञानिक प्रबंध के अपने विचारों को व्यवस्थित रूप से व्यक्त किया है। प्रबंध व्यवहार के क्षेत्र में उनका प्रमुख योगदान निम्नलिखित पहलुओं से संबंध रखता है:–

(क) प्रबन्ध की समस्याओं को हल करने के लिए पूछताछ, अवलोकन और प्रयोग करने के लिए वैज्ञानिक विधियों को अपनाना।

(ख) नियोजन कार्य को उसकी निष्पत्ति से पृथक रखना जिससे श्रमिक अपनी सर्वश्रेष्ठता का प्रदर्शन कर अपनी जीविका अर्जित कर सके।

(ग) प्रबंध का उद्देश्य उद्योगपति की अधिकतम खुशहाली के साथ श्रमिकों की अधिकतम भलाई होनी चाहिए। वैज्ञानिक प्रबंध के लाभ को प्राप्त करने हेतु श्रमिकों और प्रबंधकों में संपूर्ण मानसिक क्रान्ति की आवश्यकता है। साथ ही ये लाभ आपसी

RIL-080

43

सम्बंधों में मधुरता तथा सहयोग से प्राप्त होना चाहिए व्यक्तिवाद तथा मनमुटाव से नहीं।

गुण

वैज्ञानिक प्रबंध का प्रमुख लाभ शक्ति के प्रत्येक औंस का संरक्षण तथा उचित प्रयोग करना है। फिर, विशिष्टकरण और श्रम विभाजन ने एक दूसरी औद्योगिक क्रान्ति उत्पन्न कर दी है। कार्यों को अधिक कुशल एवं विवेकपूर्ण रीति से निष्पादित करने के लिए समय तथा गति की तकनीकें महत्वपूर्ण उपकरण हैं। संक्षेप में वैज्ञानिक प्रबंध उपक्रम की समस्याओं का हल निकालने के लिए केवल एक विवेकपूर्ण विधि ही नहीं है वरन् यह प्रबंधन के व्यावहारिक पक्ष को भी सुविधाजनक बनाता है।

यद्यपि टेलर द्वारा ही वैज्ञानिक प्रबंध के प्रमुख सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया था, तथापि उनके कई अनुयायियों ने जैसे गैंट, फ्रैंक और विलियम, गिलब्रेथ तथा इमरसन ने इन विचारों का विस्तार किया, नई तकनीक विकसित की तथा प्रबंध की इस नवीन विचार धारा में सुधार किया। व्यवहारिक रूप में वैज्ञानिक प्रबंध उत्पादकता में वृद्धि लाने तथा कार्य प्रक्रियाओं की क्षमता बढ़ाने के लिए यू.एस.ए. तथा पश्चिमी योरोप में दूर दूर तक अपनाया गया।

सीमाएँ

वैज्ञानिक प्रबंध की अपनी सीमाएं भी हैं तथा कई आधारों पर इसकी आलोचना भी की गई है। कुछ आलोचकों का कहना है कि वैज्ञानिक प्रबंध तकनीकी अर्थ में ही श्रमिकों की कार्यकुशलता से संबंधित है तथा यह उत्पादन के महत्व पर ही बल देता है। श्रमिक आरम्भ से कामचोर होते हैं। प्रबंधकों की उन पर कड़ी निगरानी की आवश्यकता है तथा प्रबंधकों को अपना अधिकार इस संबंध में प्रयोग करना चाहिए। इन मान्यताओं पर यह सिद्धान्त आधारित है। यह भी कहा जाता है कि श्रमिकों को केवल मुद्रा से ही अभिप्रेरित किया जा सकता है।कार्य के वातावरण के सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक पहलुओं पर कोई विचार नहीं किया जाता। अन्य आलोचकों ने इसे अवैज्ञानिक, असमाजिक, मनोवैज्ञानिक रूप से अनुचित तथा प्रजातंत्रीय विरोधी बताया है। यह अवैज्ञानिक हैं, क्योंकि श्रमिकों की क्षमता तथा मजदूरी मापन की कोई उचित तथा विश्वसनीय विधि नहीं है। यह असमाजिक है क्योंकि श्रमिकों को आर्थिक उपकरणों के रूप में व्यवहार किया जाता है यह मनोवैज्ञानिक रूप में अनुचित है क्योंकि एक श्रमिक को दूसरे के साथ अधिक उत्पादन करने तथा अधिक कमाने के लिए, अस्वस्थ प्रतियोगिता करनी पड़ती है। यह प्रजातंत्रीय विरोधी है क्योंकि यह श्रमिकों की स्वाधीनता को कम करती है। श्रमिक संघ इसका विरोध करते, क्योंकि यह प्रबंध को तानाशाही बनाती है कर्मचारियों के कार्य का भार बढ़ाती है तथा उनके

रोजगार के अवसरों पर विपरीत प्रभाव डालती है।

रूढ़िवादी सम्प्रदाय के प्रमुख विचार को मेंसर हेनरी फेयोल का नाम भी प्रमुखता से लिया जाता है। प्रबन्धक के क्षेत्र में आप द्वारा किये गये योगदान को प्रबन्ध के प्रशासकीय सिद्धान्तों के नाम से जाना जाता है। जब श्री फेयोल फ्रांस की एक कोयले की कम्पनी में बतौर निदेशक कार्यरत थे तभी उन्होंने प्रबन्धन प्रक्रिया का सुव्यवस्थित विश्लेषण प्रस्तुत किया था। आपके अनुसार किसी भी संगठन में समस्त व्यापारिक प्रक्रियाओं को छः भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है तथा ये परस्पर एक दूसरे पर निर्भर रहती है ये है, तकनीकी, व्यापारिक, वित्तीय सुरक्षा, लेखाकार्य तथा प्रशासनिक कार्य।

आपके अनुसार प्रबंधन प्रक्रिया सार्वभौमिक है तथा इस प्रक्रिया में निम्नलिखित पॉच विशेषताएं होती हैं, यथा – पूर्वनुमान, नियोजन, व्यवस्थापन, आदेश, समन्वय तथा नियंत्रण। इसके साथ साथ अपने 14 सिद्धान्तों का एक सैट भी प्रतिपादित किया। ये सिद्धान्त प्रबंधन प्रक्रिया का प्रयोग करने में पथ प्रदर्शक बनते हैं ।आप इन सिद्धान्तों का इकाई संख्या 3 में विस्तृत रूप में अध्ययन करेंगे।

प्रभावी प्रबंधन के लिए आवश्यक गुण तथा योग्यताएं उपक्रम के विभिन्न स्तरों के प्रबंधकीय पदों पर निर्भर करती है। फेयॉल के अनुसार प्रशासनिक गुण प्रबंधकों के उच्चस्तरीय स्तर पर अनिवार्य है जबकि तकनीकी गुण नीचे के स्तर का कार्य करने वाले पदों के प्रबंधकों के लिए आवश्यक है। उनका यह भी विश्वास था कि जीवन के प्रत्येक मोड़ पर व्यक्तियों के लिए प्रबंधकीय प्रशिक्षण अनिवार्य है। उन्होंने ही पहली बार प्रबंध क्षेत्र में औपचारिक शिक्षा तथा प्रशिक्षण की आवश्यकता पर बल दिया। संक्षेप में फेयॉल का विश्लेषण साधनों का एक सैट (अर्थात नियोजन, व्यवस्था, आदेश, समन्वय तथा नियंत्रण) प्रबंधक प्रक्रिया को चलाने तथा मार्गदर्शन के लिए (जैसे प्रक्रिया को व्यावहारिक रूप देने के लिए सिद्धान्त) प्रदान करता है।

प्रबंध का प्रशासनिक सिद्धान्त एवं प्रबंध की कार्यात्मक विचारधारा फेयॉल द्वारा रखी गई नींव पर ही विकसित हुए हैं। उन्होंने प्रबंध प्रक्रिया का विश्लेषण करने के लिए एक अवधारणात्मक ढांचा बनाकर दिया। साथ ही, उन्होंने प्रबंध को एक पृथक स्वतंत्र इकाई का सम्मान देकर उसका विश्लेषण किया। ज्ञान के समूह के रूप में प्रबंध को अत्यधिक लाभ फैयॉल द्वारा प्रबंधकीय गुणों का विश्लेषण कर उन्हें सार्वभौमिकता प्रदान करने तथा उसके सामान्य प्रबंध के सिद्धान्तों से ही मिला। यद्यपि कुछ आलोचकों ने इसे असंगत अथवा पारस्परिक विरोधी, अस्पष्ट तथा प्रबंधकों का पक्ष लेने वाला सिद्धान्त बताया है, फिर भी यह सिद्धान्त सम्पूर्ण विश्व में प्रबंध शास्त्र की शिक्षा तथा व्यवहार में अपना महत्वपूर्ण प्रभाव रखता है।

स्व–प्रगति मूल्यांकन प्रश्न –क

प्रश्न 1. निम्नलिखित में से सत्य तथा असत्य का चयन करें –

1. सभ्यता की किरणों के आगमन के साथ ही प्रबंध की विचारधारा पर विचार करना प्रारम्भ हो चुका था।

2. वैज्ञानिक प्रबंध की विचारधारा समय तथा गति अध्ययन के प्रयोग पर आधारित नहीं है।

3. टेलर ने कार्य करने के तरीकों पर प्रयोग करने के पश्चात ही वैज्ञानिक प्रबंध के सिद्धान्तों को विकसित किया प्रतिपादन किया था।

4. टेलर ने मुख्यतः अध्ययन कार्यशाला में होने वाले कार्य को किया।

5. एक प्रबंधक के लिए आवश्यक योग्यताएं उसके द्वारा उपक्रम में प्राप्त प्रस्थिति तथा पद से सम्बन्धित नहीं होती है।

6. प्रबंध प्रक्रिया से संबंधित पांच महत्वपूर्ण तत्वों के मध्य फेयॉल ने ही अंतर स्पष्ट किया था।

7. प्रबंध के अध्ययन के लिए समन्वय का दृष्टिकोण फेयोल ने आत्मसात किया था।

प्रश्न 2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

1. श्रमिकों के कल्याण पर प्रबंध के महान विचारक ..... द्वारा बल दिया गया था।

2. विभिन्न विशिष्ट फोरमैन जब कार्य की निगरानी करना..... कहलाता है।

3. फेयोल ने प्रबंध की विचवारधारा की परिभाषा निश्चित ..... के निष्पादन की प्रक्रिया कह कर दी है।

4. श्रमिक संघ प्रायः वैज्ञानिक प्रबंध का विरोध करते हैं क्योंकि यह कर्मचारियों की ..... में वृद्धि करता है।

5. ताउने के अनुसार एक प्रबंधक को ..... को भूमिकाओं का मिश्रण कर लेना चाहिए।

2.6.4 रूढ़िवादी विचारधाराओं की आलोचनाएं

इसमें संदेह नहीं कि रूढ़िवादी विचारधारा ने प्रबन्धशास्त्र के विकास से सराहनीय योगदान किया है, फिर भी इनकी आलोचनाएं निम्न आधार पर की जा

सकती हैं :–

1. रूढ़िवादी प्रबन्ध सिद्धान्त एवं अवधारणाएं व्यक्तिगत अनुभव तथा सीमित अवलोकन पर आधारित है। इनमें प्रयोग साक्ष्यों का अभाव है। इनका सत्यापन, नियंत्रित कथन कहना ही अधिक उचित है। वैज्ञानिक कहना नहीं।

2. बहुत से रूढ़िवादी सिद्धान्तों को या तो स्पष्ट रूप से परिभाषित ही नही किया जा सकता है। दूसरे शब्द में अल्पज्ञता, अति साधारणीयता और अवास्तविकता के शिकार हैं।" अतः यह भी प्रहार किया कि इन्हें कहावत से अधिक नहीं समझना भूल होगी उनकी तुलना लोकोक्ति या लोक साहित्य से की जा सकती है।

3. रूढ़िवादी प्रबन्धशास्त्रियों ने बन्द प्रणाली मान्यताओं के आधार पर सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया और संगठन पर पर्यावरणीय घटकों के प्रभावों पर विचार नहीं किया। जबकि हर संगठन आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक वातावरण से प्रभावित होता है। प्रक्रिया प्रभाव पड़ता है।

4. रूढ़िवादी प्रबन्धशास्त्रियों ने यह माना कि संगठन गतिहीन और अपरिवर्तनीय होते हैं जब कि वास्तव में वे गतिशील एवं परिवर्तनशील होते हैं तथा निरन्तर समायोजन की आवश्यकता महसूस होती है। अतः इनका केवल ऐतिहासिक महत्व रह जाता है।

5. रूढ़िवादी प्रबन्धशास्त्रियों ने श्रमिकों को केवल जीवित संयत्र ही समझा जिन्हें प्रेरणाओं के माध्यम से संचालित किया जा सकता है। लेकिन मानवीय व्यवहार बड़ा ही विषम है, यह आर्थिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक तथा अन्य कारकों में प्रभावित होता है। श्रमिक प्रायः अपने किसी वर्ग के सदस्य के रूप में व्यवहार करते हैं। उनकी क्षमता और विवेक उनकी शारीरिक क्षमता से निर्धारित नहीं होते बल्कि उनके सामाजिक मूल्यों से होते हैं इसीलिए गैर आर्थिक कारक और उनके व्यवहार के निर्धारण में महत्वपूर्ण होते है।

6. प्रशासनिक विचारधारा के प्रबन्धशास्त्रियों का यह मत है कि प्रबन्ध के कार्य, सिद्धान्त एवं अवधारणाएं सभी संगठनों पर लागू होती है तर्कसंगत प्राप्ति नही होता।

2.7 प्रबंध का नव रूढ़िवादी सम्प्रदाय

रूढ़िवादी सम्प्रदाय की ही उपज है नवरूढ़ि वादी सम्प्रदाय। इस सम्प्रदाय में अग्रलिखित प्रबन्ध विद्वानों को शामिल किया जाता है :– एल्टन, मेयो, मेरी पार्कर फोलेट, सी.आई. वर्नाड, तुगलस एम.सी. ग्रेगर तथा आर.लाइकर्ट। मूलतः ये सभी समाजशास्त्री थे तथा इन्होंने वैज्ञानिक प्रबन्ध एवं प्रशासनिक प्रबंध के सिद्धान्तों की व्याख्या समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से की और पाया कि इन सिद्धान्तों के परिणाम अच्छे नहीं हैं क्योंकि इनमें कार्य की वास्तविक दशाओं की अवहेलना ओर मानवीय तथा

RIL-080

47

सामाजिक कारकों के प्रभाव एवं महत्व की घोर उपेक्षा की गई है। नव रूढ़िवादी सम्प्रदाय के विचारकों को हम दो भागों में वर्गीकृत कर सकते हैं।

(क) मानवीय सम्बन्धों के विचारक

(ख) व्यवहारिक विज्ञान के विचारक

आइये इन्हें क्रमशः समझने का प्रयास करें।

2.7.1 मानवीय सम्बन्धी के विचारक

प्रबन्ध में मानवीय दृष्टिकोण का प्रतिपादन एल्टन मेयो तथा उनके सहयोगी जान ड्यवे, डब्ल्यू. एफ. ह्वाइटे तथा कुर्ट लेविन ने किया। एल्टन मेयो हावर्ड विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र प्राचार्य थे और उन्होंने वेस्टर्न एलेक्ट्रिक कम्पनी के होथेर्न कारखाने में विभिन्न प्रयोगों द्वारा अपने इन विचारों का प्रतिपादन टेलर तथा अन्य रूढ़िवादी प्रबन्ध शास्त्रियों ने व्यवस्था, विवेकपूर्णता, कार्य विभाजन, विशिष्टीकरण और अधिकार सम्बन्धों पर आधारित औपचारिक संगठन ढांचे पर विशेष ज़ोर दिया था तथा श्रमिकों को केवल एक आर्थिक साधन माना था। मानवीय सम्बन्ध दृष्टिकोण के प्रबन्ध शास्त्रियों ने इस समरूप आर्थिक दर्शन को चुनौती दी। उन्होंने निश्चित नियमों, व्यवस्था, विवेकपूवर्णता और अधिकार तंत्र पर आधारित औपचारिक संगठन ढांचे पर कड़ा प्रहार किया। और अनौपचारिक प्रजातांत्रिक तथा सहभागी संगठन ढांचे का समर्थन किया जिसमें श्रमिकों के मनोबल, सृजनात्मकता तथा संतोष वृद्धि पर विशेष ध्यान दिया गया।

यह विचार धारणा पर आधारित थी कि आधुनिक व्यवस्था एक सामाजिक तंत्र है जिसमें सामाजिक वातावरण और पारस्परिक संबंध कर्मचारियों के व्यवहार को प्रभावित करते हैं। यह इस बात पर बल देता है कि अधिकारियों तथा अधीनस्थों के अधिकार दायित्व संबंध कर्मचारियों की सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक संतुष्टि से संबंधित होना चाहिए। कर्मचारियों को प्रसन्न रखकर ही एक उपक्रम उनका पूर्ण सहयोग प्राप्त कर सकता है तथा इस प्रकार उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि लाता है। प्रबन्ध को कार्यरत सामाजिक समूहों के विकास को प्रोत्साहित करना चाहिए तथा कर्मचारियों के विचारों को मुक्त रूप से व्यक्त करने का अवसर प्रदान करना चाहिए। प्रबन्धकों को प्रजातांत्रिक नेतृत्व के महत्व को स्वीकार कर लेना चाहिए जिससे सम्प्रेषण मुक्त रूप से प्रवाहित हो सकेगा और अधीनस्थ निर्णयन में भाग ले सकेंगे।

ऐलटन मायो तथा उनके साथियों द्वारा किए गये बहुत से प्रयोगात्मक अध्ययनों के परिणाम स्वरूप प्रबंध में मानव संबंध विचारधारा का विकास हुआ। ये अध्ययन यू.एस.ए. में होथोर्न स्थित वेस्टर्न इलेक्ट्रिक प्लांट में किये गये थे। होथोर्न अध्ययन का

उद्देश्य श्रमिकों की उत्पादकता तथा कार्य निश्पत्ति को प्रभावित करने वाले कारकों को ढूँढ निकालना था। ये निष्कर्ष इस प्रकार थे।

(क) कार्यस्थल का नैसर्गिक वातावरण कार्यक्षमता पर कोई विशेष प्रभाव नहीं डालता।

(ख) श्रमिकों तथा उनकी कार्य टोली का कार्य के प्रति अनुकूल व्यवहार कार्यक्षमता को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण कारक है।

(ग) श्रमिकों की सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने से श्रमिकों के मनोबल तथा कार्यक्षमता पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

(घ) श्रमिकों ग्रुप जो सामाजिक पारस्परिक प्रभाव तथा सामान्य हित पर आधारित होते हैं, श्रमिकों के कार्य निष्पादन पर गहरा प्रभाव डालते हैं।

(च) केवल आर्थिक पारितोषण श्रमिकों को प्रभावित नहीं कर पाता। कार्य सुरक्षा, अधिकारियों द्वारा प्रशंसा, सम्बन्धित विषयों पर विचार व्यक्त करना आदि कारक अभिप्रेरित करने के अधिक महत्वपूर्ण कारक है।

यह ध्यान रखना चाहिए कि मानव संबंधों की विचारधारा का उद्देश्य कर्मचारियों की उत्पादन क्षमता में वृद्धि करना था। कर्मचारियों की संतुष्टि ही उच्च उत्पादकता तथा कार्यक्षमता के उद्देश्य को प्राप्त करने का सर्वश्रेष्ठ साधन है। इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रबंधक यह जान लें कि कर्मचारी वह काम क्यों है जो वे करना चाहते हैं तथा कौन से सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक कारक उन्हें अभिप्रेरित करते हैं। अतः संतुष्टि प्रदान करने वाले कार्य वातावरण को उत्पन्न करने के लिए प्रयास करना चाहिए जिससे वे लोग अपनी आवश्यकताओं को पूरा कर सकें तथा संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक सिद्ध हों।

मानवीय सम्बन्ध दृष्टिकोण का मूल्यांकन

इस विचारधारा का सबसे प्रमुख योगदान यही था कि इसने संगठन को एक सामाजिक व्यवस्था तथा श्रमिकों को उसका सबसे महत्वपूर्ण अंग बताकर प्रबन्धकों के दृष्टिकोण में परिवर्तन का प्रयास किया गया। संगठन की उत्पादकता कर्मचारियों को अधिक संतुष्ट करके ही सम्भव है। कर्मचारियों को अधिक संतुष्ट एवं उत्पादकता तभी बनाया जा सकता है जब उनकी आर्थिक, सामाजिक, तथा मनोवैज्ञानिक आवश्यकताए पूरी की जायं। दूसरे, इस विचारधारा ने अनौपचारिक सम्बन्धों तथा अनौपचारिक व्यक्ति समूहों का संगठन में महत्व बताकर संगठन में उत्पादकता एवं संतोष दोनों के परस्पर सम्बन्धों की स्थापना की। इस प्रकार, व्यक्ति उन्मुख प्रबंध की विचारधारा का सूत्रपात हुआ। दूसरी ओर इस विचारधारा की कड़ी आलोचना भी की गई जिन्हें निम्न प्रकार

से क्रमबद्ध किया जा सकता है।

(1) मानवीय सम्बन्ध विचारधारा के अधिकांश निष्कर्षों का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। वे संकीर्णता के शिकार हैं क्योंकि वे व्यापक और नियंत्रित प्रयोगों के ऊपर आधारित नहीं हैं।

(2) मानवीय सम्बन्धों की विचारधारा के निष्कर्षों का सोचने का आधार बहुत संकीर्ण है क्योंकि वे केवल मानवीय सम्बन्ध और अनौपचारिक व्यक्ति समूह पर ही बल देते हैं और संगठन के ढांचे एवं तकनीकी पक्ष को भूल जाते हैं। उन्होंने कार्य संतोष के आर्थिक घटकों की भी उपेक्षा की है। उन्होंने केवल निम्न स्तर पर कार्यरत श्रमिकों के व्यवहार पर ही अपना ध्यान केन्द्रित रखा है और उच्च प्रबन्धक के व्यवहार के सम्बन्धों में कोई मार्गदर्शन नहीं दिया है।

(3) प्रयोगों में ऐसा कोई प्रमाण कर्मचारियों की उत्पादकता, कार्य संतोष और प्रसन्नता में सम्बन्ध को प्रस्तुत नहीं करता है जिससे उनके दृष्टिकोण में विश्वास किया जा सके।

(4) संमूह निर्णय कुछ निश्चित परिस्थितियों में अच्छे हो सकते हैं किन्तु यह झगड़ों, उत्तरदायित्व के हस्तान्तरण, प्रबन्धक के पद की अवहेलना तथा अनिर्णयन जैसी जोखिमों से भरा हुआ है और नकारात्मक है।

(5) मानवीय सम्बन्ध से जुड़े प्रबन्धशास्त्री संगठन विरोध को सदैव एक सामाजिक हानि की दृष्टि से तथा सहयोग को सामाजिक गुणता की दृष्टि से देखते हैं, फलस्वरूप वें संगठन में समूह की एकता पर जोर देते हैं और विरोध को कम करने की बात करते हैं लेकिन संगठन का स्वस्थ रहना विरोध से सर्वथा मुक्ति में नहीं बल्कि विरोधों के सामन्जस्य और उनकी रचनात्मक शक्ति के रूप में उपयोग में निहित हैं।

(6) यह सिद्धान्त व्यक्ति विरोधी है। यह दृष्टिकोण प्रबन्धक के अधिकार के महत्व को कम करता है उसे पहल करने से रोकता है और उसका मनोबल गिराता है। अन्य सदस्य भी व्यक्तिगत पहल और रूचि में कमी कर देते हैं और अपने व्यक्तित्व को समूह में खो बैठते हैं।

2.7.2 व्यावहारिक विज्ञान के विचारक

व्यावहारिक विज्ञान की विचारधारा का उदगम मानव सम्बन्धी विचारधारा से ही हुआ है। यह विचारधारों संगठन में मानव व्यवहार के सामाजिक और मनोवैज्ञानिक पहलुओं को स्पष्ट करती है। आइये अब व्यवहारिक विज्ञान के अग्रलिखित लक्षणों को समझने का प्रयास करें –

(1) यह अन्तरविषयी विज्ञान है जिसमें विभिन्न सामाजिक विज्ञानों के ज्ञान का

समन्वय होता है।

(2) यह प्रयोगात्मक विज्ञान है जिसमें शोध द्वारा संगठन की विभिन्न समस्याओं का निदान होता है।

(3) यह आदर्श विज्ञान है जो केवल कारक परिणाम सम्बन्ध को प्रदर्शित करता है मार्ग दर्शन करता है कि सफलता के क्या उपाय कर सकता है।

(4) यह व्यक्ति प्रधान है अतः व्यक्तियों के विचारों, भावनाओं, आवश्यकताओं और प्रेरणाओं पर विशेष बल देता है और मानवीय मूल्यों को स्वीकार करता है।

(5) यह लक्ष्य प्रधान विज्ञान भी है। यह संगठन के विरोधों को मानवता प्रदान करता है तथा व्यक्तियों एवं संगठनों दोनों की संतुष्टि के लिए अर्न्तविरोधी लक्ष्यों में सामन्जस्य स्थान के लिए सुझाव देता है।

(6) यह प्रणाली अवधारणा प्रधान है तथा यह सभी कारकों का विश्लेषण करती है जिनका प्रभाव संगठन की कार्यकुशलता पर पड़ता है।

मानव सम्बन्धी विचारधारा जहॉ प्रसन्न श्रमिक को अधिक उत्पादक माना जाता है वहीं यह विचारधारा लक्ष्य एवं कुशलता की प्राप्ति का एक प्रमुख माध्यम मात्र ही है। व्यावहारिक विज्ञान को हम अग्रलिखित तीन बिन्दुओं के माध्यम से और गहनता से समझ सकते हैं।

(क) व्यक्ति का व्यवहार उसके समूह के व्यवहार से प्रभावित होता है। हर व्यक्ति व्यक्तिगत रूप से अपने व्यवहार में परिवर्तन लाने वाले दबावों का विरोध कर सकता है किन्तु जब उसका समूह इस परिवर्तन को स्वीकार करता है तो वह इस परिवर्तन के लिए सहर्ष तैयार हो जाता है। समूह द्वारा कार्य का मानदंड निर्धारित करने पर उस समूह से संबंधित व्यक्ति अधिक कड़ाई के साथ परिवर्तन का विरोध करेंगें। फिर, जो कुछ भी श्रमिक मालिकों की उत्पादन संबंधी अपेक्षा को जिस रूप में समझ पाते हैं वही उत्पादन स्तर को निर्धारित करती है अथवा उसको प्रभावित करती है इसका कारण यह है कि प्रबंध किसी विशेष उत्पादन स्तर का निर्धारण नहीं कर पाता बल्कि यह उचित स्तर का सुझाव देता है। और श्रमिक प्रायः यह विश्वास करते हैं कि यदि वे अधिक कार्य करेंगे तो उनकी मजदूरी की दर कम कर दी जायेगी।

(ख) अनौपचारिक नेतृत्व के औपचारिक अधिकार की अपेक्षा सामूहिक निष्पादन के मानदंण्ड को निर्धारित करने में अधिक महत्व रखता है। नेता के रूप में प्रबंधक अधिक प्रभावी रहेगा और अधीनस्थों को स्वीकार्य होगा यदि वह प्रजातांत्रिक नेतृत्व स्वरूप को अपनाता है । यदि लक्ष्य निर्धारण में अधीनस्थों

को प्रोत्साहित किया जाता है तो उसके प्रति उनकी भूमिका अधिक उपयोगी रहेगी। तकनीक और कार्य विधि में परिवर्तन को श्रमिकों द्वारा प्रायः विरोध किया जाता है। परन्तु श्रमिकों को योजना और कार्य डिजाइन में सहभागी बनाकर इस परिवर्तन को आसानी से किया जा सकता है।

(ग) अधिकांश व्यक्ति स्वभाव से ही कार्य करने में आनंद की अनुभूति करते हैं तथा स्व नियंत्रण और स्वयं के विकास से अभिप्रेरित होते हैं। प्रबन्धकों को उन परिस्थितियों को पहचानना चाहिए और उपक्रम के कार्यों में मानव शक्ति के प्रयोग हेतु आवश्यक वातावरण प्रदान करना चाहिए। प्रबंधकों का अधीनस्थों के प्रति व्यवहार सदैव धनात्मक होना चाहिए। उन्हें ध्यान रखना चाहिए कि ओसतन व्यक्ति आलसी नहीं होता वरन् प्रकृति के अनुसार आगे बढ़ने की इच्छा रखता है। वह महत्वाकांक्षी होता है। प्रत्येक व्यक्ति कार्य करना तथा उत्तरदायित्व स्वीकार करना पसंद करता है।

प्रबन्ध की नई रूढ़िवादी विचारधारा ने प्रबन्ध की रूढ़िवादी विचारधारा के सिद्धान्तों पर प्रतिस्थापन के लिए कोई नया सिद्धानत नहीं दिया है। यह मूलरूप से संगठनात्मक परिवर्तन के स्थान पर कुछ समयोजनों से ही सम्बन्धित है। टिप्पणी कीजिए।

2.8 प्रबंध का आधुनिक सम्प्रदाय

प्रबन्ध विज्ञान में तीव्र गतिशीलता का समय द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से प्रारम्भ माना जाता है। यह वही समय था जब रूढ़िवादी और नव रूढ़िविचारकों की विचारधाराओं का विश्लेषण एवं एकीकरण की कोशिश की गई। प्रबन्ध का यह आधुनिक सम्प्रदाय प्रणालीगत विचारधारा तथा प्रासंगिक क्विारधारा को प्रस्तुत करता है। यह सम्प्रदाय रूढ़िवादी विचारधारा तथा स्थिर स्वरूप और अनौपचारिक तथा गतिशील स्वरूप पर आधारित थी। एक समन्वित रूप है। इस सम्प्रदाय ने उन समस्याओं का हल प्रस्तुत किया जिसका हल रूढ़िवादी और नवरूढ़िवादी सम्प्रदायों द्वारा प्रस्तुत नहीं किया जा सका था। आइये अब क्रमावार आधुनिक सम्प्रदाय की विचारधाराओं को समझने का प्रयास करें –

2.8.1 प्रणालीगत विचारधारा

प्रणाली का तात्पर्य, ऐसी इकाइयों से है जो अर्न्तसम्बन्धित होती है तथा प्रत्येक एक दूसरे को किसी न किसी रूप में प्रभावित करती हैं जैसे –मानव शरीर का निर्माण पंच तत्वों से होता है और उसके शरीर ने स्थित हृदय उस शरीर रूपी प्रणाली की उप प्रणाली है । एक सामान्य प्रणाली की अग्रलिखित विशेषताएं हो सकती हैं –

(1) प्रत्येक प्रणाली के अन्तर्गत अनेक उपप्रणालियॉ होती हैं ।

(2) प्रत्येक प्रणाली के ऊपर अन्य बड़ी प्रणालियां हो सकती हैं।

(3) प्रत्येक उपप्रणाली अर्न्तसम्बन्धित होती है।

(4) प्रत्येक प्रणाली लक्ष्य से उन्मुख होती है तथा समस्त उपप्रणालियॉ उसे सुव्यवस्थित रूप से पाने में सहयोग करती हैं।

(5) सभी प्रणालियों को दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है। खुली प्रणाली व बन्द प्रणाली।

(6) बन्द प्रणाली अपने वातावरण से कोई सम्बन्ध नहीं रखती अर्थात वह तो प्रभावित होती है और न ही प्रभावित करती है। इसके विपरीत खुली प्रणाली प्रभावित होती है और प्रभावित भी करती है।

(7) समस्त प्रणालियों में साधन व उत्पादन दोनों होते हैं।

(8) खुली प्रणाली में प्रतिपुष्टि निरन्तर चलती रहती है। जिससे समय समय पर आवश्यक समायोजन एवं संशोधन चलता रहता है।

उपरोक्त विवेचन के पश्चात हम कह सकते हैं कि इस विचारधारा की दृष्टि में प्रबंध भी एक प्रणाली है तथा इसकी प्रकृति खुली है। अतः प्रबन्ध को अपने संगठन की सफलता के लिए एक एकीकृत प्रणाली समझना चाहिए। प्रबन्ध रूपी प्रणाली के निरन्तर प्रवाह के लिए पांच प्रमुख कारक आवश्यक होते हैं, यथा संसाधन,रूपान्तरण सम्प्रेषण व्यवस्था, उत्पादन तथा प्रतिपुष्टि। इस प्रकार प्रबन्ध रूपी प्रणाली की अग्रलिखित विशेषताएं हो सकती हैं आइये इसे क्रमवार समझने का प्रयास करें।

- यह विचारधारा सम्पूर्ण संगठन को एक इकाई मानती है।
- चूँकि प्रबन्ध की प्रकृति खुली है अतः इसमें परिस्थितिनुकूल परिवर्तन सम्भव है
- परिस्थितिनुकूल परिवर्तनों के कारण इसे एक गतिशील प्रक्रिया में इस बात का ध्यान रखना चाहिए।
- प्रत्येक प्रबन्धक को संगठन को एक इकाई के रूप में देखना चाहिए न कि उसका विभागीकरण कर अलग अलग इकाइयों में।
- प्रबन्धकों को सदैव बहु विषयक दृष्टि अपनानी चाहिए। क्योकि संगठन एक बहु आयामी बहुस्तरीय तथा अनेक तत्वों के सम्मिश्रण से निर्मित प्रणाली है।
- इस विचारधारा के मतानुसार संगठन एक समन्वित व एकीकृत इकाई होती

है अतः सभी विभागों के समन्वित प्रयासों से ही सफलता मिलती है।

• उत्पादकता में वृद्धि तभी सम्भव है जब संगठनात्मक सभी उपप्रणालियों समन्वित रूप से सम्पूर्ण संगठन की सफलता के लिए मिलकर कार्य करें।

प्रबन्ध की इन प्रक्रियात्मक विशेषताओं के पश्चात आइये इसके कुछ लाभों का भी समझने का प्रयास करें –

- यह संगठनात्मक प्रयासों को एकीकृत करता है।
- यह प्रबंधकों को उपक्रम को समग्र रूप में देखने का अवसर प्रदान करता है। समग्र रूप में उपक्रम अपने विभिन्न भागों के योग से भी बड़ा होता है।
- यह विचारधारा संगठन को एक खुला तंत्र मानकर चलती है।फिर उपतंत्रों के बीच पारस्परिक प्रभाव भी गतिशील होते हैं।
- आधुनिक विचारधारा बहुस्तरों तथा बहुआयाम पर आधारित है अर्थात इसमें सूक्ष्म तथा दोनों ही पहलुओं पर विचार किया जाता है। यह देश के औद्योगिक कार्यों पर सूक्ष्म रूप से विचार करती है तथा इनका आन्तरिक इकाइयों पर बहुत रूप से विचार करती है।
- यह तंत्र पद्धति बहुचरों पर आधारित है क्योंकि एक घटना बहुत से कारकों का परिणाम हो सकती है जो एक दूसरे से जुड़े हुए तथा परस्पर निर्भर रहते हों।
- परिष्करण प्रक्रिया उपक्रम को अपने हिस्सों का पर्यावरण में परिवर्तन के अनुसार फिर से व्यवस्थित करने का अवसर प्रदान करती है।

इस प्रणाली की आकर्षक अपील के कारण वर्तमान युग में इसकी विशेष मान्यता है। यह व्यवसायिक निर्णयन प्रक्रिया में क्रान्ति ला रही है। इससे विस्तृत सूचनाए आसानी से सुलभ हो जाती हैं जिनके कारण निर्णय लेने में सुविधा होती है। किन्तु इसकी कुछ सीमायें भी हैं वास्तव में यह व्यवस्था प्रणाली के सुव्यवस्थित रूप से प्रस्तुत नहीं कर पाता है। यह एक संगठन विशेष के उपतंत्रों का संबंध पर्यावरण से किस प्रकार रहता है स्पष्ट नहीं कर पाता है। अतः इसे अव्यवहारिक माना जाता है। अतः यह प्रबन्ध की किसी तकनीकी को स्पष्ट नहीं करती है।

2.8.2 प्रासंगिकता की विचारधारा

सातवें दशक में प्रासंगिक विचारधारा का उदभव हुआ था। यह विचारधारा टाम वर्नस और जी.डब्लू. स्टैलकर, जॉन बुडवार्ड, पॉल लॉरेन्स तथा जे. लारेंस, जेम्स थैम्पसन और उनके अन्य सहयोगियों के द्वारा किये गये शोध पर आधारित है। यह प्रमुखतः वातावरणीय दशाओं तथा संगठन ढॉचे के सम्बन्ध पर आधारित हैं। इस विचारधारा की

मूल धारणा यह है कि प्रबन्ध की कोई सार्वभौम योजना या कार्य नहीं हो सकता जो सभी परिस्थितियों में उचित सिद्ध हो। प्रबन्धकों को स्थिति या सन्दर्भ की विशेषताओं को समझकर ही कोई कार्य योजना बनानी चाहिए।

उदाहरण के लिए आप से सौ वर्ष पूर्व भले ही कुटीर उद्योग में बिजली के यन्त्रों का प्रयोग प्रतिबंधित था किन्तु आज की गलाकाट प्रतिस्पर्धा में इनका प्रयोग अनिवार्य है। अतः प्रबन्धकीय परिस्थितियों को पूर्वाग्रहों से पूर्णतः मुक्त होना चाहिए। यह दृष्टिकोण प्रबन्ध सिद्धान्त की सार्वभौमिकता को स्वीकार नहीं करता।

2.9 प्रासंगिकता की विचारधारा

प्रासंगिकता विचारधारा का आधार यह है कि प्रबंधन की कोई एक सर्वश्रेष्ठ विधि नहीं हो सकती वास्तव में प्रबंध के विभिन्न कार्यों को करने के लिए बहुत से तरीके हैं। यह विचारधारा इस बात पर बल देती है कि नेतृत्व, नियोजन, व्यवस्था तथा प्रबंध कार्यों को करने की विधियॉ परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती हैं । एक विशिष्ट विधि से एक विशिष्ट परिस्थिति में श्रेष्ठ परिणाम प्राप्त हो सकता है किन्तु अन्य परिस्थितियों में वह विधि कतई बेकार सिद्ध हो सकती हैं। परिस्थितियों में एक सार्वभौमिक विधि नहीं अपनाई जा सकती। प्रबन्धकों को विभिन्न परिस्थितियों का विश्लेषण करना चाहिए और उस परिस्थिति में श्रेष्ठतम परिणाम देने के लिए वैज्ञानिक प्रबंध के हिमायती, कार्य के सरलीकरण और अतिरिक्त अभिप्रेरणात्मक सुविधाओं का सुझाव दे सकते हैं। व्यावहारिक वैज्ञानिक कार्य को समृद्ध बनाने तथा कर्मचारियों को प्रजातांत्रिक रूप से कार्यों के निर्णयन में भाग लेने का सुझाव कर सकते हैं।किन्तु प्रासंगिक विचारधारा के समर्थकों द्वारा सम्पूर्ण परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में एक श्रेष्ठ हल ढूँढने की वकालत की जाती हैं।

सीमित साधनों, अकुशल श्रमिक, सीमित प्रशिक्षण तथा स्थानीय बाजारों में सीमित उत्पादों के होने की दशा में कार्य का सरलीकरण आदर्श उपाय होगा। उपक्रमों जहॉ कुशल श्रम शक्ति की बहुलता हो, में कृत्य समृद्धि का होना आदर्श विविध होगी। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि एक दी हुई स्थिति में परिस्थितियों के अनुसार प्रबंधकीय कार्य करना होता है। इस विचारधारा में प्रबंधकों को सर्वप्रथम स्थिति का ज्ञान करना होता है। और उस स्थिति के अनुसार उत्पन्न समस्याओं को हल करने की विधि ढूंढनी होती हैं संक्षेप में दो पहलुओं पर प्रासंगिकता की विचारधारा जोर देती है–

(क) यह प्रासंगिक विशिष्ट कारकों पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है।ये कारक एक प्रबंधक की समरनीति को दूसरे की तुलना में उपयुक्त बनाने में प्रभावित

करती हैं।

(ख) प्रासंगिक परिस्थितियों का विश्लेषण करने में प्रबंधकों के गुणों को विकसित करने के महत्व को यह और अधिक प्रकाश में लाती है। इस प्रकार के गुण प्रबंधकों को प्रबंधन करने की उनकी विचारधारा को प्रभावित करने वाले कारकों को खोजने में सहायक होते है।

इस प्रकार प्रासंगिक विचारधारा प्रबन्धकों की निदानात्मक और विश्लेषणात्मक परिवर्तनशीलता के प्रति सचेत, सावधान, एवं समायोजन शील बने रहने का सुझाव देती है। वह सुझाव भी देती है कि उन्हें लक्ष्य, साधन या कार्य विधियों की किसी पूर्व धारणा का शिकार नहीं होना चाहिए तथा हमेशा परिस्थितियों के संदर्भ में वस्तुनिष्ठ निर्णय लेना चाहिए। अतः यह कहा जा सकता है कि प्रासंगिक विचारधारा प्रणालीगत विचारधारा से अधिक श्रेष्ठ है क्योंकि यह उसके सब से बड़े दुर्गुण का समाधान देती है। यहं विचारधारा अधिक व्यावहारिक एवं कार्य उन्मुख है।

अत्यधिक सैद्धान्तिक जटिलता के कारण इस विचारधारा की खूब आलोचनाएं हुई हैं। अनेक विद्वानों ने इसे प्रबन्धन की पृथक विचारधारा मानने से भी इन्कार किया है। सभी प्रबन्धक विभिन्न परिस्थितियों के अनुरूप सिद्धान्तों का उपयोग सुव्यवस्थित रूप से नहीं कर पाते क्योंकि इनका ज्ञान, बुद्धिमता, अनुभव एवं कुशलता एक दूसरे से भिन्न होती है। कभी कभी परिस्थितियों की जटिलता व तीव्रता के कारण उनको समझना आसान नहीं होता है इसलिए इस विचारधारा का कोई अधिक महत्व नहीं रहा पाता।

स्व–प्रगति मूल्यांकन प्रश्न – ख

प्रश्न 1. निम्नलिखित कथनों में सही गलत का चयन करे –

(क) प्रबंध में मानव सम्बंधी विचारधारा केवल मानव मात्र के खुश करने की रही है।

(ख) वैज्ञानिक प्रबंध के अन्तर्गत श्रमिकों के व्यवहार, भावनाओं तथा आवश्यकताओं का कोई महत्व नहीं होता है।

(ग) व्यक्ति विशेष का व्यवहार किसी समूह में सम्मिलित होने पर सामने आने वाले अधिक प्रभावी रहता है।

(घ) संगठन में प्रायः सभी निर्णय उच्च स्तरीय प्रबंध तंत्र द्वारा किये जाते हैं।

(च) प्रबंध में तंत्र विचारधारा सम्बन्धी दृष्टिकोण प्रबंध में होने वाली क्रियाओं को एकीकृत रखने का दर्शन प्रस्तुत करती है।

(छ) प्रासंगिकता की विचारधारा के अनुसार ऐसा सार्वभौमिक सिद्धान्त कोई भी नहीं है जिसे सभी परिस्थितियों में क्रियान्वित किया जा सके।

प्रश्न 2. रिक्त स्थानों को भरिये।

1. मानव संबंध विचारधारा के अन्तर्गत श्रमिकों की ..... तथा आवश्यकताओं को पूरा कराने का कार्य किया जाता है।

2. .....अभिप्रेरणा ही श्रमिक श्रमिकों को अभिप्रेरित करने का कार्य नहीं करती है।

3. निर्णय कर्ताओं को विभिन्न विकल्पों के संभावित निष्कर्षों का पूर्ण ज्ञान होना, अन्ततः निर्णयन ..... पर निर्भर करते हैं।

4. तकनीकी उपतंत्र उपक्रम सभी के सदस्यों के मध्य ..... का प्रतिनिधित्व करते है।

5. मानव संबंध विचारधारा के अनुसार आधुनिक संगठन व्यवस्था एक ..... तंत्र है।

2.9 आधुनिक प्रबंध

पारिवारिक प्रबन्ध से आराम ऐसी प्रबन्ध व्यवस्था से है जिसमें परिवार के सदस्यों द्वारा प्रबन्धकीय कार्य सम्पन्न कराये जायें। जिस प्रकार किसी परिवार में पिता की मृत्यु होने के बाद उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र होता है। ठीक उसी प्रकार पारिवारिक प्रबन्ध व्यवसायी के प्रबन्ध प्रक्रिया का उत्तराधिकार भी परिवार के सदस्यों को जाता है।इस सम्बन्ध में ध्यान रखने योग्य बात यह है कि इस कार्य के लिए विशिष्ट योग्यता प्राप्त व्यक्तियों को कोई प्राथमिकता नहीं दी जाती । इसी आधार पर पारिवारिक प्रबन्ध व्यवस्था को उत्तराधिकारी द्वारा प्रबन्ध की संज्ञा दी जाती है। भारत में प्रबन्ध अभिकर्ता प्रणाली इस प्रकार की प्रबन्ध व्यवस्था का ज्वलन्त उदाहरण है। इसके अतिरिक्त बड़े बड़े औद्योगिक घरानों जैसे – रिलायन्स, टाटा, बिड़ला आदि परिवारों में इसी प्रकार की प्रबन्ध व्यवस्था अपनाई गई है। पारिवारिक प्रबन्ध व्यवस्था के अन्तर्गत अनेक दोषों का अनुभव किया गया है जैसे –

(1) औद्योगिक सत्ता का उपकरण हो जाना,

(2) वित्तीय प्रभुत्व का विस्तार

(3) स्वार्थपूर्ण कुप्रबन्ध,

(4) जनता के हितों का शोषण

(5) श्रमिकों का शोषण आदि।

इन दोषों के कारण ही भारत में 3 अप्रैल, 1970 से प्रबन्ध अभिकर्ता प्रणाली को एक विशेष अधिनियम पारित करके पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया गया था।

"पेशेवर प्रबन्ध से तात्पर्य ऐसे प्रबन्ध से है जिसके अन्तर्गत प्रबन्ध कार्य प्रबन्ध ज्ञान में प्रशिक्षित व्यक्तियों से कराया जाता है। अर्थात पेशेवर प्रबन्ध कार्य प्रबन्ध ज्ञान में विशिष्ट ज्ञान प्राप्त व्यक्तियों को दी जाती है। वर्तमान प्रबन्ध व्यवस्था में पेशेवर प्रबन्ध का भी महत्व बढ़ता जा रहा है। संयुक्त स्कन्ध कम्पनियों में नीति निर्माण का कार्य संचालक मण्डल द्वारा किया जाता है और शेष कार्यों का प्रबन्ध संचालक या जनरल मैनेजर देखता है।

विभिन्न विभागों के लिए पृथक पृथक प्रबन्धक होते हैं, जैसे – नियोजन विभाग के लिए नियोजन प्रबन्धक, उत्पादन विभाग के लिए उत्पादन प्रबन्धक, वित्त विभाग के लिए वित्तीय प्रबन्धक, विपणन विभाग के लिए विपणन प्रबन्धक होते हैं तथा उनकी सहायता के लिए उप प्रबन्धक भी नियुक्त किये जा सकते हैं। प्रबन्ध कार्य के लिए परामर्श हेतु विशेषज्ञों की भी नियुक्ति की जा सकती है अथवा प्रबन्ध सलाहकार एजेन्सियों से परामर्श लिया यजा सकता है। इस प्रकार की प्रबन्ध व्यवसायी को ही पेशेवर प्रबन्धकाय व्यवस्था कहते हैं।"

यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि पारिवारिक प्रबन्ध की अपेक्षा पेशेवर प्रबन्ध अधिक सफल रहा है क्योंकि पारिवारिक प्रबन्ध व्यवस्था के अन्तर्गत प्रबन्धकीय अधिकार विरासत में प्राप्त होते हैं और इसमें प्रबन्धकीय ज्ञान में विशिष्ट योग्यता पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है जबकि पेशेवर प्रबन्ध व्यवस्था के अन्तर्गत प्रबन्धकीय ज्ञान में प्रशिक्षित व्यक्तियों को ही प्रबन्धकीय अधिकार दिये जाते हैं।

2.10 सारांश

समस्त विश्व में इस बात को व्यक्त करने का पर्याप्त साक्ष्य उपलब्ध है कि प्रबंध का प्रयोग सभ्यता के प्रारंभिक समय से ही होता आया है। किन्तु औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात ही प्रबंधन प्रक्रिया में सम्मिलित विभिन्न कार्यों पर प्रबंध के विद्वानों का ध्यान केन्द्रित हुआ है। राबर्ट ऑवन, चार्ल्स बैवेज, मैटकाफ और ताउने के नाम प्रारंभ के प्रबंध शास्त्र के विचारकों में गिनाए जा सकते हैं। इन्होंने औद्योगिक उपक्रमों के प्रबंधन को सुधारने के लिए अपने सुझाव दिये हैं।वैज्ञानिक प्रबंध की विचारधारा के

जन्मदाता फ्रेडरिक विश्टन टेलर थे। यह विचारधारा पहल तथा प्रेरणा से किए जाने वाली प्रबंध पद्धति का विकल्प थी। इसका प्रमुख उद्देश्य अंगूठे के जोर पर प्रबंध को वैज्ञानिक विधि से पूछताछ अवलोकन तथा प्रयोग प्रबंधन द्वारा बदलना था। वैज्ञानिक प्रबंध का लक्ष्य उत्पादन शाला में कार्यरत व्यक्तिगत श्रमिक की उत्पादन शक्ति में वृद्धि करना था। सम्पूर्ण व्यवस्था में प्रबन्धकों तथा उनके कार्यों को इस विधि में पर्याप्त ध्यान तथा स्थान नहीं दिया गया।

प्रबन्ध की मानव संबंध विचारधारा का विकास यू.एस.ए. में किये गये प्रयोगात्मक अध्ययनों के फलस्वरूप हुआ। यह इस मत पर आधारित है कि आधुनिक व्यवस्था एक सामाजिक तंत्र है और कर्मचारियों की संतुष्टि ही उच्च उत्पादिता और कार्यक्षमता में वृद्धि लाने के लक्ष्यों को प्राप्त करने की सर्वाधिक श्रेष्ठ विधि है। इस उद्देश्य के लिए प्रबंध को संतोषजनक कार्य वातावरण उत्पन्न करना चाहिए, जिसमें लोग अपनी सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं, साथ ही उपक्रम के लक्ष्यों की प्राप्ति में भी योगदान कर सकते हैं।

प्रबन्ध की व्यावहारिक विचारधारा, मानव संबंध विचारधारा का ही विस्तार है। समाज विज्ञान, सामाजिक मनोवैज्ञानिक तथा मानव विज्ञान के क्षेत्र में कार्यरत वैज्ञानिकों ने विस्तृत रूप से शोध कार्य किए और उनके परिणाम व्यावहारिक विचारध ारा के रूप में प्रबंध में प्रस्तुत किए गए हैं । इस विचारधारा ने यह माना है कि एक व्यक्ति का व्यक्तिगत व्यवहार, सामूहिक सामूहिक व्यवहार से ही प्रभावित होता है। अनौपचारिक नेतृत्व तथा नेतृत्व का जनतंत्रात्मक रूप, समूह के मानदंड को निर्धारित करने में अधिक प्रभावी होते हैं, इस मत पर इस विचारधारा में अधिक जोर दिया गया है। प्रबंध की निर्णयन विचारधारा के अनुसार संगठनात्मक कार्यों को समझने की कुंजी निर्णय केन्द्रों तथा सम्प्रेषण माध्यमों की पहचान पर निर्भर करती है।

प्रबंध की तंत्र विचारधारा के अनुसार उपक्रम आजकल अत्यंत जटिल इकाइया बन चुकी हैं। इनमें आंतरिक तथा बाह्य दोनों ही ओर से परिवर्तन होना रहता है। इस प्रकार के उपक्रम की बहुत सी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रबंध की संतुलित तथा एकीकृत विधि को अपनाना होगा। प्रबंध अपने आप में एक तंत्र माना जाता है। तथा यह सामाजिक तंत्र का एक उप तंत्र है। इस दृष्टिकोण से एक उपक्रम बहुत से आदानों से विभिन्न प्रकार के उत्पादन करता है और फिर एक अति उत्पाद वातावरण के सम्मुख प्रस्तुत करता है। वातावरण फिर से आवश्यक शक्ति प्रदान करता है जिसे फीडबैक कहते हैं। यह फीडबैक चक्र को पुनः चलाता रहता है।

प्रासंगिक की विचारधारा इस बात पर जोर देती है कि हर परिस्थियों में कोई एक सार्वभौमिक सिद्धान्त लागू नहीं किया जा सकता। यह परिस्थितियों के विशिष्ट

RIL-080

कारकों पर ध्यान केन्द्रित करती है। ये कारक प्रबंध की एक समरनीति की दूसरे पर प्रधानता को प्रभावित करते हैं तथा परिस्थितियों का विश्लेषण करने में प्रबंधकों के गुणों के विकास के महत्व की विशिष्टता बताते हैं।

2.11 उपयोगी शब्द कोश

1. प्रशासनिक दृष्टिकोण – प्रबंध के कार्यो तथा उनके निष्पादन के लिए आवश्यक गुणों के संदर्भ में प्रबंधन प्रक्रिया का विश्लेषण करना।

2. व्यावहारिक विचारधारा – व्यक्ति की समझ तथा उपक्रमों में समूह के व्यवहार को समझना।

3. विभेदात्मक कार्य दर – मजदूरी की कार्य दर जो कुशल तथा अकुशल श्रमिकों के लिए भिन्न भिन्न होती है।

4. कार्यात्मक फोरमैनशिप – विभिन्न विशिष्ट फोरमैन द्वारा निरीक्षण

5. हॉथोर्न अध्ययन – प्रयोगात्मक अध्ययन जो शॉप फ्लोर दर कार्यरत श्रमिकों की कार्य निष्पत्ति में वृद्धि करने के लिए अभिप्रेरित कारकों का ज्ञान करने के लिए किए गये थे।

6. मानव संबंध विचारधारा – संतुष्टि प्रदान करने वाले कार्य वातावरण द्वारा कर्मचारियों को अभिप्रेरित करना तथा उनकी सामाजिक तथा शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करना।

7. गति अध्ययन – किसी कार्य को करने के लिए प्रयोग की गई गति का अवलोकन कर व्यर्थ गतियों को दूर करना तथा कार्य निस्पादन के लिए एक सर्वश्रेष्ठ विधि का अध्ययन करना।

8. वैज्ञानिक प्रबंध – प्रबंध की समस्याओं को सुलझाने के लिए वैज्ञानिक विधियों के प्रयोग से अंगूठे के दबाव को अथवा भूल सुधार विधि को बदलना।

9. तंत्र विचारधारा – संतुलित तथा एकीकृत तंत्र के रूप में प्रबंध को समझना।

10. समग्र अध्ययन – किसी कार्य का निष्पादन करने में लगने वाले समय का मापन व विश्लेषण करने के लिए प्रयोग की जाने वाली तकनीक।

2.12 स्व–मूल्यांकन प्रश्नावली

1. 20वीं शती में हुए प्रबंध विचारधारा के विकास की संक्षेप में रूपरेखा वर्णित

कीजिए।

2. वैज्ञानिक प्रबंध का क्या अर्थ? इसके प्रमुख सिद्धान्तों गुण व सीमाओं का वर्णन कीजिए।

3. प्रबंध में व्यावहारिक विचारधारा के महत्व का वर्णन कीजिए। इसकी प्रमुख विशेषताएं क्या हैं?

4. प्रबंध में मानव संबंध विचारधारा के प्रमुख तत्वों का वर्णन कीजिए।

5. प्रबंध विचारधारा में फैयॉल के योगदान का वर्णन कीजिए।

6. प्रबंध तंत्र विचारधारा का वर्णन कीजिए। उदाहरण देकर बतलाइये कि यह कैसे संपूर्ण चक्र को चलाने के लिए "फीडबैक" प्रक्रिया का प्रयोग करता है।

7. प्रबंध की प्रासंगिकता की विचारधारा का आलोचनात्मक वर्णन कीजिए।

8. प्रबंध के विभिन्न दृष्टिकोण क्या हैं? प्रत्येक के बारे में संक्षेप में व्याख्या कीजिए।

2.13 स्व–प्रगति मूल्यांकन प्रश्नों के उत्तर

क) 1. (1) गलत (2) सही (3) गलत (4) सही
(5) सही (6) सही (7) सही (8) गलत

2. (1) राबर्ट ऑवन, 2) कार्यात्मक फोरमैनशिप (3) कार्य
(4) कार्य भार (5) प्रशासक, इंजीनियर, सांख्यिक।

ख) 1. (1) गलत (2) सही (3) सही (4) गलत
(5) सही (6) सही

2. (1) सामाजिक मनोवैज्ञानिक (2) आर्थिक (3) निर्णय
(4) औपचारिक संबंध (5) सामाजिक

संदर्भित ग्रन्थ

एम.सी.शर्मा एवं सी.एल.चतुर्वेदी : प्रबंध के सिद्धान्त (दिल्ली : श्री महावीर बुक डिपो, प्रथम संस्करण) अध्याय 1, 2, 4, 5, 6 खंड एक।

जे.आर. कुम्भट : व्यवसाय प्रबंध सिद्धान्त एवं व्यवहार (इलाहाबाद : किताब महल) 1984

हैरेल्ड कुंज एवं ओ. डोने : मैनेजमेंट (नई दिल्ली : मैक ग्राव हिल बुक कम्पनी, 1984) अध्याय 1 से 3 (अंग्रेजी में)

वी.एस.पी. राव और पी.एस. नारायण : प्रिंसिपल्स एण्ड प्रैक्टिस ऑफ मैनेजमेंट (नई दिल्ली : कोर्णाक पब्लिशर्स, 1987) अध्याय 1 से 5 (अंग्रेजी में)।

एस.सी. सक्सेना प्रबन्ध के सिद्धान्त, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा 2000.

इकाई –3 प्रबंध के सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 अर्थ प्रकृति तथा विशेषताएं

3.4 प्रबन्ध सिद्धान्तों का सार्थकता

3.5 हेनरी फेयोल का सिद्धान्त

3.6 फ्रेडरिक टेलर का योगदान

3.7 मैरी पार्कर कौलेट का योगदान

3.8 अन्य महत्वपूर्ण सिद्धान्त

3.9 सार्वभौमिकता पर विचार

3.10 सिद्धान्तों की सीमाएं

3.11 सारांश

3.12 उपयोगी शब्दकोश

3.13 स्वमूल्यांकन प्रश्नावली

3.14 स्व–प्रगति मूल्यांकन प्रश्नों के उत्तर

3.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

- प्रबन्ध सिद्धान्त का अर्थ, प्रकृति एवं विशेषताओं को जान सकेंगें,
- प्रबन्ध सिद्धान्तों की सार्थकता की व्याख्या कर सकेंगे,
- फेयोल, टेलर, फोलेट के योगदानों का विश्लेषण कर सकेंगे,
- प्रबन्ध की सार्वभौमिकता पर का मूल्यांकन कर सकेंगे, तथा
- प्रबन्ध सिद्धान्त की सीमाओं का निर्धारण कर सकेंगे।

3.2 प्रस्तावना

सिद्धान्त शब्द का प्रयोग प्रायः एक मूलभूत सार्वभौमिक सच्चाई अथवा तर्कयुक्त वाक्य से होता है जो कार्य तथा कारण के बीच सम्बन्ध को स्थापित करता है तथा विचार उद्देश्य और कार्य का पथ प्रर्दशन करता है।

इस प्रकार सिद्धान्त समझने तथा किन कार्यों से क्या परिणाम होंगे, का पूर्वानुमान लगाने में सहायक होते हैं। इस प्रकार सिद्धान्त रूप आधार समस्त कार्यों का सारथी होता है। एक कुशल प्रबन्धक, किसी भी व्यवसाय, उद्योग तथा देश की आर्थिक प्रगति एवं समृद्धि का सूत्रधार होता है। अतः भावी प्रबन्धकों को कुशल एवं वैज्ञानिक बनाने के लिए यह आवश्यक प्रतीत होता है कि वे महान प्रबन्ध गुरूओं के नियमों एवं सिद्धान्तों से पूर्णतया परिचित हो तथा व्यावसायिक प्रतिस्पर्धियों की प्रकृतिनुसार उनका सुव्यवस्थित सुसंगठित तथा क्रमबद्ध प्रयोग करें।

3.3 अर्थ, प्रकृति तथा विशेषताएं

प्रबन्ध के संबंध में हम कह सकते हैं कि ये मूलभूत सार्वभौमिक सत्य है जो प्रबन्धकीय कार्यों को दिशा देने में, परिणामों की व्याख्या करने में, तथा उनकी भविष्यवाणी करने में सहायक होते हैं । इन सिद्धान्तों का अवतरण आर्थिक क्रियाकलाप के विभिन्न आयामों में प्रबन्धकों के अनुभवों तथा व्याख्या के द्वारा सम्भव हुआ लगता है। इनका प्रमुख उद्देश्य प्रबन्ध सिद्धान्तों को सुव्यवस्थित करना होता है जिससे प्रबन्ध प्रक्रियां में प्रबन्धकों के कार्यों का मार्ग आंसान एंव लक्ष्योंन्मुख हो सकें। इस प्रकार ये सिद्धान्त वैज्ञानिक प्रक्रिया के रूप में प्रबन्ध के आधार स्तम्भ के रूप में कार्य करते रहेंगे। सम्भवतः यही कारण है कि प्रबन्ध सिद्धान्तों का प्रयोग करते समय, भिन्न एवं परिवर्तनशीलता परिस्थितियों, प्रबन्धक अलग अलग विचार पर ध्यान देते हैं, परिवर्तनशील बाह्य तथा आन्तरिक कारकों का विशेष ध्यान रखते हैं । वास्तव में प्रत्येक प्रबन्धक इन सिद्धान्तों को अपने उद्देश्य तथा अपने चिन्तन के अनुसार अलग अलग ढंग से व्याख्यित एवं प्रयोग करता है। इस प्रकार ये लोचपूर्ण होते हैं तथा आवश्यकता की पूर्ति हेतु इनको अलग अलग परिस्थितियों के अनुसार उपयोग किया जा सकता है। वस्तुतः उपरोक्त विश्लेषणानुसार इन सिद्धान्तों की अग्रलिखित विशेषताएं हो सकती हैं –

(1) प्रबन्ध के सिद्धान्त प्रबन्धकीय क्रियाओं के सुव्यवस्थित संचालन हेतु मार्गदर्शक नियम हैं जिनके आधार पर व्यापारिक स्थितियों व चुनौतियों का समझा जा सकता है जिससे संगठन की कार्यकुशलता में वृद्धि हो सकती है।

(2) पूर्व निर्धारित सिद्धान्त प्रबंधकों को प्रबंधकीय क्षेत्र में एक दृढ़ आधार प्रदान करते हैं।

(3) प्रबन्धकीय सिद्धान्त केवल प्रबन्धकीय कार्यक्षमता में वृद्धि नहीं करते वरन औद्योगिक उपक्रम को भी उन्नति की ओर अग्रसर करते हैं।

(4) प्रबन्ध के सिद्धान्तों के बिना प्रबन्ध विज्ञान की प्रकृति को समझना कठिन कार्य है।

(5) प्रबन्धकों के अध्ययन और प्रशिक्षण के लिए भी ये बहुत उपयोगी होते हैं।

(6) मानवीय व्यवहार, आदतों व रूचियों के सम्बन्ध में शोध व अनुसंधान करने के लिए आवश्यक आधार प्रदान करते हैं।

(7) समाज का मुख्य उद्देश्य अधिकतम उच्च गुणवत्ता युक्त सस्ते उत्पाद प्राप्त करना होता है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के सम्बन्ध में सिद्धान्तों के बिना उद्देश्य प्राप्त करना संभव प्रतीत नहीं होता।

(8) इनके विकास से प्रबन्ध के पेशेकरण की धारणा सिद्ध होती है। नवीन शोधों को बढ़ावा मिलता है तथा प्रबन्ध एवं उद्योग के क्षेत्र में और बेहतर समन्वय स्थापित होता है।

प्रबंधकीय सिद्धान्तों की उपरोक्त विशेषता के आधार पर सुव्यवस्थित, सुसंगठित तथा श्रेष्ठ सिद्धान्तों के कुछ लक्षणों की प्राप्ति होती है। जो कि इस प्रकार से हैं–

(1) वह सरल व सीधे होते हैं जिससे वह एक ही अर्थ में सभी की समझ में आ जाते हैं।

(2) ये सम होते हैं सिद्धान्त के पीछे जो भी विभिन्न तत्व व मान्यताएं हों वे उसके उद्देश्य को परिलक्षित करती हैं।

(3) ये प्रयोगाश्रित विधि से जांचे परखे जाते हैं तथा टिकाऊ आधार पर उसे अनुभवाश्रित शोध का बल मिलना चाहिए।

(4) यें एक उपकरण के रूप में होते हैं तथा जिस बात को ये सिद्ध करना चाहते हैं वह पर्याप्त तथा पूर्णतः समझ में आने योग्य होती हैं।

(5) ये प्रभावपूर्ण प्रबंध व्यवहार के लिए सहायक एवं व्यावहारिक पथ प्रदर्शक होते हैं।

(6) ये प्रबंध सिद्धान्त के लिए एक अंतरण तंत्र बनते हैं तथा प्रबंध शास्त्र में आगे के सिद्धान्तों की निर्माण प्रक्रिया में सहायक होते हैं।

3.4 प्रबन्ध सिद्धान्तों की सार्थकता

प्रबन्ध सिद्धान्तों की सार्थकता उनके उद्देश्य तथा उनके द्वारा प्रबंध के क्षेत्र में प्राप्त किए महत्व पर निर्भर करता है । प्रबन्ध सिद्धान्तों का प्रमुख उद्देश्य प्रबंध

शास्त्र में यथाक्रम सिद्धान्तों का सृजन करना होता है जिससे यह प्रबंध व्यवहार, प्रशिक्षण और कार्यालय प्रबंध में उपयोगी बन सकें। इनकी आवश्यकता इस प्रमुख उद्देश्य के कारण ही उत्पन्न होती है। ये सिद्धान्त प्रबन्ध के लिए व्यवस्थित ज्ञान तथा कार्यात्मक अनुभव का मार्ग खोलते हैं। प्रभावी विधि से अच्छे परिणाम किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है। यह सुझाव प्रबंध के सिद्धान्तों से मिलता है तथा ये प्रबन्धकला को सुधारने का प्रयत्न सदैव करते रहते हैं।

ये सिद्धान्त ही प्रबन्ध व्यवहार का सरलीकरण करते हैं। सिद्धान्त के मूल पहलुओं का स्पष्टीकरण करते हैं तथा प्रबन्ध के कार्य व्यवहार में प्रयोग करने के लिए नियमों का प्रतिपादन करने का सुझाव देते हैं तथा आवश्यक आचार विचार की अपेक्षा करने के लिए उचित मापदंडों का निर्माण करते हैं। प्रबंध के सिद्धान्त केवल मूल तथ्यों का स्पष्टीकरण नहीं करते या वे किसी एक परिस्थि के कारणों को ही प्रकार में नहीं लाते वरन किसी विशेष कार्य को करने पर उस व्यवहार अथवा घटना का क्या निष्कर्ष अथवा परिणाम निकलेगा इसका भी पूर्व अनुमान लगाने में सहायक होते हैं। अपनी व्याख्यात्मक तथा पूर्व अनुमान लगाने की विशेषता के कारण ही ये लोचपूर्ण सुझावात्मक तथा व्यवहारात्मक रूप में प्रबंधकों की विचारशक्ति, निर्णयन तथा कार्यान्वयन में सहयोगी होते हैं। सिद्धान्तों का ज्ञान, नियोजन समस्या समाधान तथा निर्णयन के लिए उद्देश्य साधक तथा सुलझी हुई विधि को विकास करने के लिए प्रबन्धकों को प्रोत्साहित करते हैं। इस प्रकार ये प्रबन्धकों के सहायक होते हैं।

प्रबन्धकों को आंख बन्द कर के इस सिद्धान्त को नहीं अपनाना चाहिए बल्कि उन्हें अपनी चेतन शक्ति तथा अनुभव में वृद्धि के लिए इसका प्रयोग करना चाहिए। इस प्रकार, वे अपने विचारों तथा अनुभवों को और अधिक धनी बना सकते हैं तथा सिद्धान्त एवं व्यवहार के बीच की दूरी को और कम कर सकते है।

इस प्रकार पर्यवेक्षण व अन्य स्तरों पर प्रबन्धकों के प्रशिक्षण कार्यक्रमों में प्रबन्ध के सिद्धान्तों को पाठ्यक्रम से अलग नहीं किया जा सकता। प्रबन्धकों के कार्यों को प्रबन्ध प्रक्रिया तथा सिद्धान्तों का उदाहरण लेकर समझाया जाता है।

प्रबंध के सिद्धान्तों का क्षेत्र शोधकार्य करने के लिए भी उपयुक्त माना जाता है चाहे यह शोध अध्ययन सिद्धान्तों का हो अथवा उनको व्यवहार में अपनाने का। उदाहरण के लिए कई शोध अध्ययन कार्य उन दशाओं की पहचान पर किए जाते हैं जिनके अन्तर्गत प्रबंध के विशिष्ट सिद्धान्तो को व्यवहार में प्रभावी बनाया जा सकता है। इसी प्रकार, कई परम्परावादी सिद्धान्तों को प्रयोगाश्रित बल देने वाले विषयों पर शोध कार्य चल रहा है।

RIL-080

66

3.5 हेनरी फेयोल का सिद्धान्त

विगत शताब्दी में प्रबन्ध गुरूओं ने अनेकानेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। विशेष रूप से परम्परागत विचारधारा से जुड़े विद्वानों का इनके निर्माण में विशेष योगदान रहा है। इनमें से श्री हेनरी फेयोल ने अपने विस्तृत अनुभवों से कार्यप्रणाली के आधार पर प्रबन्ध के अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है।

श्री फेयोल ने अपने कार्यकारी जीवन का प्रारम्भ एक फ्रांसीसी माइनिंग कम्बाइन में मुख्य अधिकारी के रूप में लम्बे समय तक किया तत्पश्चात वे फ्रांस के एक प्रसिद्ध उद्योगपति भी कहलाये। श्री फेयोल ने 14 सामान्य प्रशासनिक सिद्धान्तों की स्थापना की। उन्होंने इस सत्य को स्वीकार किया कि उनकी इस सफलता के पीछे अनेक व्यक्तिगत दृष्टिकोण ही नहीं थे बल्कि इस सफलता का कारण उन प्रबन्धकीय विचारधाराओं का भी है जिनको उन्होंने सीखा और सामान्य कार्य दिवसों में प्रयोग किया। आइये फेयोल के सिद्धान्तों को समझने का प्रयास करें –

(क) कार्य विभाजन का सिद्धान्त – इस सिद्धान्त के अनुसार उद्देश्य प्राप्ति हेतु सर्वप्रथम आवश्यक क्रियाओं का पूर्वानुमान लगाया जाना चाहिए, तत्पश्चात वर्गीकरण, विभागीकरण होना चाहिए और कर्मचारियों में उनकी योग्यता और कुशलतानुसार कार्य का विभाजन सुनिश्चित किया जाना चाहिए जिससे कार्य उचित समय पर और मात्रा में सम्पादित हो सके।

(ख) अधिकार एवं दायित्व – अधिकार तथा उत्तरदायिता एक ही सिक्के के दो पहलू होते हैं। प्रत्येक प्रबंधक को भार्रापण करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि यदि किसी व्यक्ति को किसी कार्य को करने का दायित्व सौंपा जाए तो कार्य के सुव्यवस्थित निष्पादन हेतु आवश्यक अधिकार भी दिये जाने चाहिए। बिना अधिकार के कोई भी व्यक्ति कुशलतापूर्वक अपने कर्तव्यों का निर्वाह सुनिश्चित नहीं कर सकता तथा इनमें एकरूपता रहना भी आवश्यक है।

(ग) अनुशासन – कर्मनिष्ठा तथा आदेश का पालन करना ही अनुशासन है। समस्त उपक्रम में प्रबन्धकों को अपने कार्यसमूह का नेतृत्व करने के लिए इसका पालन करना चाहिए। फेयोल के अनुसार, सभी स्तरों पर अनुशासन के लिए अच्छे अधिशासियों की आवश्यकता होती है। उन्होंने उपक्रमों को सुव्यवस्थित रूप से चलाने के लिए कर्मचारियों के बीच अनुशासन पर बल दिया है तथा अनुशासन तोड़ने पर उन्हें दंड देने की सिफारिश की है।

(घ) आदेश की एकता – एक कर्मचारी को समस्त आदेश एक ही अधिकारी से मिलने चाहिए। इससे यह लाभ होता है कि कर्मचारी एक ही अधिकारी के प्रति

उत्तरदायी होता है। आदेश की एकता के अभाव में अनुशासन भंग होने की सम्भावना बनी रहती है तथा संगठन में भ्रान्ति का माहौल रहता है। अतः आदेश को एक ही अधिकारी से आना चाहिए जिससे कि कार्यो का सफल क्रियान्वयन संभव हो सके तथा अनुशासन बना रहे।

(च) निर्देश की एकता का सिद्धान्त – इस सिद्धान्तानुसार यदि संगठन का उद्देश्य एक है तो प्रबन्धक को सभी क्रियाओं के लिए एक ही निर्देशों का पालन करना चाहिए। इससे संगठन में उद्देश्य की एकता, कार्य में एकरूपता तथा समन्वय बना रहता है।

(छ) केन्द्रीय हित व्यक्तिगत हित के सर्वोपरि होना – सदस्यों के व्यक्तिगत हितों तथा संकीर्ण विचारों पर उपक्रम के सामूहिक तिहों को, इनको सदैव प्राथमिकता दी जानी चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि व्यक्तिगत स्वार्थ को, यदि वह उपक्रम के हित के विरूद्ध ले तो मान्यता नहीं देनी चाहिए। उपक्रम तथा उसके सदस्यों की भलाई के लिए अत्यन्त ही महत्वपूर्ण निर्णय साबित होता है।

(ज) कर्मचारियों का पारिश्रमिक – हेनरी फेयोल के मतानुसार, कर्मचारियों का पारिश्रमिक दर तथा भुगतान की विधि उचित व सन्तोषप्रद होनी चाहिए। यदि भुगतान की पद्धति उचित होगी तो कर्मचारी सदैव संतुष्ट रहेंगे एवं औद्योगिक संबंधों में कभी भी तनावों में नहीं बदलेगी। उन्होंने कर्मचारियों को प्रोत्साहन देने के लिए गैर वित्तीय प्रेरणाएं पर भी बल दिया था।

(झ) केन्द्रीकरण का सिद्धान्त – संस्था के प्रशासन में केन्द्रीकरण को अपनाया जाए या विकेन्द्रीकरण को, इसका निर्णय संस्था के हितों, कर्मचारियों की मनोभावनाओं तथा कार्य प्रकृति सभी बातों का ध्यान रख कर किया जाना चाहिए। संस्था में एक ऐसा केन्द्र होना चाहिए जहॉ से समस्त अधिकारो का निर्वहन और समत्स दायित्वों का भार हो।

(ञ) पदाधिकारी सम्पर्क श्रृंखला – 'पदाधिकारी सम्पर्क श्रृंखला' से आशय सर्वोच्च पदाधिकारियों से लेकर निम्नतम पदाधिकारी के बीच सम्पर्क की व्यवस्था के क्रम से है। दूसरे शब्दों में संस्था के पदाधिकारी ऊपर से नीचे की ओर एक सीधी रेखा के रूप में संगठित होने चाहिए तथा किसी भी अधिकारी को अपनी सत्ता श्रेणी का उल्लेंघन नहीं करना चाहिए। इस प्रकार की व्यवस्था को लोकप्रिय बनाने के लिए संगठन चार्ट का उपयोग किया जा सकता है। पदाधिकारियों की क्रम श्रृंखला में से किसी भी स्तर या अधिकारी की अवहेलना होने की स्थिति से असंतोष बढता है तथा आम भावना में कमी की संभावना हो सकती है।

RIL-080

(प) क्रम व्यवस्था – उपक्रम में कर्मचारियों तथा माल को एक विधिवत रूप में रखना व्यवस्था कहलाता है। माल की व्यवस्था में प्रत्येक वस्तु अपने उचित स्थान पर रखी जाती है तथा प्रत्येक वस्तु के लिए स्थान निर्धारित होता है। "सामाजिक व्यवस्था" में प्रत्येक व्यक्ति (कर्मचारी) के लिए एक स्थान निर्धारित किया जाता है तथा प्रत्येक कर्मचारी को स्थान (पद) के अनुसार कार्य सौंपा जाता है।

(फ) समता – कार्य करने में लगे सभी कर्मचारियों के साथ उचित व्यवहार करने को समता कहा जाता है। उचित व्यवहार का अर्थ है अधिकारी वर्ग द्वारा नर्मी तथा न्याय के साथ अधीनस्थों से व्यवहार करना जिससे वे अपने सौंपे गये कार्य को करने के लिए प्रेरित हो। दूसरी ओर, यह अधिकारी वर्ग व अधीनस्थों के बीच भिन्नता का वातावरण भी उत्पन्न करता है।

(ब) कार्यकाल में स्थायित्व का सिद्धान्त – किसी कर्मचारी को नए कार्य को सीखने तथा कुशलतापूर्वक उसका निर्वहन करने में समय लगना स्वाभाविक है। अतः यदि उसे काम सीखने का समुचित समय न दिया जाय तो यह न्याय न होगा।

इस प्रकार कर्मचारियों द्वारा जल्दी जल्दी संस्था को छोड़कर चले जाना भी प्रायः कुप्रबंधन का ही परिणाम होता है। फेयोल के अनुसार जहाँ तक संभव हो सके कर्मचारियों के कार्यकाल में स्थायित्व होना चाहिए जिससे कि वे निश्चिन्त होकर अपने दायित्वों का निर्वहन कर सकें।

(भ) पहल का सिद्धान्त – इसका अर्थ यह है कि सभी कर्मचारियों को सोचने तथा योजना कार्यान्वित करने का अधिकार होना चाहिए। प्रत्येक प्रबन्धक को अपने अधीन काम करने वाले व्यक्तियों में पहल की भावना को जाग्रत करना चाहिए। अगर कर्मचारी से सोच विचार कर निर्णय लेने के बाद भी कोई गलती हो जाती है तो उन्हें हतोत्साहित नहीं करना चाहिए। इससे कर्मचारी विकास एवं पहल को बल मिलेगा, सीखने का अवसर प्राप्त होगा और उनमें उत्तरदायित्व की भावना का विकास होगा।

(म) संघीय शक्ति का सिद्धान्त – संगठन की शक्ति उसकी एकता, सहयोग और एक सूत्र में बंधे रहने में ही है। यदि सभी एक सूत्र में बंधकर कार्य नहीं करेंगे तो संगठन शीघ्र ही बिखर जायेगा और सामान्य उद्देश्यों की उपलब्धि कदापि संभव नहीं होगी। इसके लिए आदेश में एकता, सहयोग तथा संघीय शक्ति की ताकत में अटूट विश्वास आवश्यक है।

3.6 फ्रेडरिक डब्ल्यू. टेलर का सिद्धान्त

यद्यपि प्रबन्ध का सामान्य विकास अठारहवीं शताब्दी में यूरोप के देशों में होने वाली औद्योगिक क्रान्ति से लगाया जाता है परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी तक प्रबन्ध के क्षेत्र

में परम्परागत पद्धतियों का ही प्रयोग होता रहा। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में औद्योगिक प्रणाली के ढॉचे में बढ़ती हुई जटिलताओं एवं उत्पादन की कारखाना प्रणाली से उत्पन्न अनेक समस्याओं के समाधान के लिए वैज्ञानिक प्रबन्ध का विकास हुआ। सर्वप्रथम ब्रिटेन के विद्वान चार्ल्स बेवेज ने 1932 में अपनी पुस्तक Economy of Manufacturers में वैज्ञानिक प्रबन्ध शब्द का प्रयोग किया परन्तु वास्तव में वैज्ञानिक प्रबन्ध का मूल विकास अमेरिकन विद्वान एफ. डब्ल्यू. टेलर द्वारा 1911 में रचित पुस्तक Principle of Scientific Management में प्रस्तुत किया गया।

फ्रेडरिक विन्सलो टेलर संयुक्त राज्य अमेरिका के निवासी थे। व्यावसायिक प्रबन्ध के क्षेत्र में ये पहले व्यक्ति थे जिन्होंने प्रबन्ध के वैज्ञानिक दृष्टिकोण का सूत्रपात किया इसलिये इन्हें वैज्ञानिक प्रबन्ध के जनक के नाम से सम्बोधित किया जाता है। टेलर ने अपना कार्यकारी जीवन 19 वर्ष की आयु में अमेरिका के फिलाडेल्फिया में क्रेम्प शिपयार्ड में एक सामान्य मशीन प्रशिक्षार्थी एवं टर्नर के रूप में आरम्भ किया। 3 वर्ष के उपरान्त इनकी नियुक्ति मिडवैल स्टील वर्क्स में मशीन श्रमिक के रूप में हुई और 2 वर्ष के उपरान्त इनकी पदोन्नति टोलीनायक के रूप में हो गई।

अपनी योग्यता, प्रतिभा और लगन के परिणामस्वरूप 4 वर्ष के उपरान्त अर्थात 28 वर्ष की आयु में ही इसी संस्था में मुख्य अभियन्ता बन गये। इसी बीच मध्यकालीन स्कूल में अध्ययन करके उन्होंने मास्टर आफ इंजीनियरिंग की उपाधि प्राप्त की और 1898 में इस संस्था को छोड़कर बेथलेहन स्टील कम्पनी में 1901 तक कार्यभार सम्भाला। इस कम्पनी को छोड़ने के पश्चात आपने अपना शेष जीवन कारखाना प्रबन्ध के परामर्शदाता ओर प्रबन्ध विज्ञान के मूलभूत विचारों की खोज करने और उनके प्रचार व प्रसार करने में लगाया । आइये टेलर द्वारा दिये गये वैज्ञानिक प्रबन्धन की अवधारणा को और गहराई से समझने का प्रयास करें।

वैज्ञानिक प्रबंध का सिद्धान्त

वैज्ञानिक प्रबध के अपने नियम तथा सिद्धान्त प्रतिपादित है जिसका संस्था में कुशलता प्राप्ति के लिए दृढ़ता से पालन किया जाना आवश्यक है जो कि निम्नलिखित है।

(क) कार्य का वैज्ञानिक विश्लेषण, अध्ययन तथा मूल्यांकन – वैज्ञानिक प्रबन्ध ने प्रत्येक श्रमिक के लिये कार्य प्रतिमानों की स्थापना की है। ये कार्य प्रतिमान प्रबन्धकों द्वारा कर्मचारियों की औसत कार्य क्षमता को ध्यान में रखकर स्थापित किये जाते हैं। इनकी स्थापना करते समय कार्य विश्लेषण, कार्य अध्ययन तथा प्रयोगों को आधार बनाया जाता है।

टेलर ने कार्य–प्रतिमान स्थापित करने के लिए वैज्ञानिक विधि के अनुकरण का सुझाव दिया है जिसके दो पहलू हैं – कार्य अध्ययन एवं कार्य सुधार।

(1) कार्य अध्ययन – इससे आशय है – प्रत्येक क्रिया को पूर्ण करने की योग्यता पर प्रभाव डालने वाले विभिन्न तत्वों एवं पक्षों का सुव्यवस्थित,निष्पक्ष तथा आलोचनात्मक अध्ययन करना, जिससे कार्य विधि में सुधार किया जा सके। कार्य अध्ययन के दो पक्ष होते हैं – कार्य विधि अध्ययन तथा कार्यमापन ।

(अ) कार्य विधि अध्ययन –इसे लिए सबसे पहले उत्पादन की सम्पूर्ण प्रक्रिया का परीक्षण किया जाता है तथा इसके आधार पर एक प्रक्रिया चार्ट का निर्माण किया जाता है। तत्पश्चात प्रबन्धक सामग्री के आवागमन की दूरी को कम करने, साज सामान को उठाने रखने, एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाने ले जाने, निरीक्षण करने तथा संग्रह करने की विधियों में सुधार करने के लिए विचार किया जाता है और इस प्रकार कार्य विधि को सरल, मितव्ययी तथा उपयोगी बनाया जाता है।

(ब) कार्य मापन – इसके अर्न्तगत अग्रलिखित तीन प्रकार के अध्ययन सम्मिलित किये जाते हैं –

(1) समय अध्ययन – यह एक ऐसा परीक्षण है जिसके अन्तर्गत किसी क्रिया को करने में लगने वाले समय को निर्धारित किया जाता है एवं उसका लेखा जोखा रखा जाता है। यह किसी कार्य को करने में उपयोग की जाने वाली विधियों और नीतियों का विश्लेषण करना, उस कार्य को करने का सर्वोत्तम विधि के व्यावहारिक तथ्यों का विकास करना तथा आवश्यक कार्यों की प्रभावोत्पादकता को मापने का प्रमाण प्रस्तुत करता है एवं उस आधार को बताता है जिस पर पारिश्रमिक निर्धारण की क्रिया निर्भर करनी चाहिए। ऐसा करते समय श्रमिक व नियोक्ता दोनों के हितों को ध्यान में रखना आवश्यक है। यह अध्ययन स्टॉप वाच की सहायता से किया जाता है।

(2) गति अध्ययन – गति अध्ययन एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा किसी कार्य के सम्भव आधारभूत तत्वों का अलग अलग तथा एक दूसरे केसाथ मिलाकर अध्ययन किया जाता है एवं ऐसे तरीके विकसित किये जाते हैं जिनमें न्यूतम समय लगे तथा न्यूनतम क्षति हो। इसका प्रमुख उद्देश्य कार्यकरने की सर्वश्रेष्ठ विधि का पता लगाना है। गति अध्ययन के लिए निम्नलिखित विधियों को अपनाना चाहिए।

- कुछ श्रमिकों का चयन एवं उनकी कार्य में होने वाली हरकतों का विश्लेषण।
- कैमरे या स्टाप वाच की सहायता से प्रत्येक कार्य में लगने वाले न्यूनतम समय की गणना।
- सभी आवश्यक, त्रुटिपूर्ण, धीमी, और अक्षम्य गतियों को समाप्त करना।

– कार्य करने की सर्वोत्तम गतियों तथा न्यूनतम समय का लेखा रखना।

(4) थकान अध्ययन – प्रायः यह देखा गया है कि एक व्यक्ति की कार्यक्षमता पूरे दिन समान नहीं रहती हैं उसे काम करते करते जितना अधिक समय होता जाता है उसकी कार्य शक्ति उतनी ही क्षीण होती जाती है। इसका कारण यह है कि जैसे जैसे कार्य का समय बढ़ता जाता है उसकी थकान बढ़ती जाती है, उसका उत्साह क्षीण होता जाता है तथा उसकी शारीरिक तथा मानसिक शक्ति, घटती जाती है। इससे उत्पादन की मात्रा कम होती है कार्य की किस्म खराब होती है तथा दुर्घटनाओं की मात्रा में वृद्धि होती है।

थकान अध्ययन' के अन्तर्गत यह पता लगाया जाता है कि थकान कब, कैसे और क्यों होती है? इसके आधार पर थकान कम करने वाली विधियों को खोजा जाता है।

(ख) प्रेरणात्मक मजदूरी पद्धति – यह पद्धति श्रमिकों को अधिक कार्य करने के लिए प्रोत्वाहित करती है ताकि उत्पादन की मात्रा में वृद्धि की जा सके। इसके लिए टेलर ने विभेदात्मक मजदूरी पद्धति को अपनाने का सुझाव दिया है। इस पद्धति का उद्देश्य श्रमिकों से उनकी कार्यक्षमता के अनुकूल कार्य कराकर अधिक दर से पारिश्रमिक देना है। दर का निर्धारण वैज्ञानिक आधार पर किया जाता है।समय तथा गति अध्ययन करके प्रत्येक कार्य को करने का प्रमापित समय तथा प्रमापित विधि का पता लगाया जाता है। इसे अन्तर्गत कुशल श्रमिकों को ऊँची दर से मजदूरी मिलती है। जबकि अकुशल श्रमिक को नीची दर से मजदूरी मिलती है।

(ग) योजना बनाना – योजना बनाने के लिए एक अलग विभाग (नियोजन विभाग) की स्थापना की जाती है। औद्योगिक उपक्रमों में नियोजन से अभिप्राय यह निश्चित करना है कि –

- क्या कार्य किया जाना चाहिए?
- कार्य कैसे किया जाना चाहिए?
- कार्य किस प्रकार किया जाना है?
- कार्य किस समय किया जाना है? तथा,
- कार्य किस व्यक्ति के द्वारा किया जाना है?

योजना विभाग निम्नलिखित प्रमुख कार्य करता है –

(1) उत्पादन के लिए आवश्यक सामग्री का आदेश देना।

(2) उत्पादन के लिए आवश्यक मशीनों तथा सुविधाओं की व्यवस्था करना और

उत्पादन प्रंक्रिया को निर्धारित करना।

(3) प्रयोगों के आधार पर प्रत्येक क्रिया को करने में लगने वाले समय को निर्धारित करना।

(4) योजना के अनुसार उत्पादन कार्य चलाना तथा यह देखना कि समस्त सुविधायें योजनानुसार उपलब्ध हो जायें।

(5) वास्तविक प्रगति के आंकड़े व रिपोर्ट तैयार करना तथा उन्हें सुरक्षित रखना।

(घ) श्रमिको का वैज्ञानिक चुनाव एवं प्रशिक्षण

श्रमिकों के वैज्ञानिक चयन से अभिप्राय ऐसी विधि से है जिसके अन्तर्गत सम्बन्धित कार्य का विश्लेषण करके निष्पक्ष आधार पर केवल उन योग्यताओं व गुणों को रखने वाले श्रमिकों का ही चयन किया जाता है जो उस कार्य को करने की योग्यता रखते हैं। श्रमिकों का चयन कार्य की अपेक्षाओं के अनुरूप होता है।

श्रमिकों के चयन के पश्चात उनकी कार्य के कुशल संचालन के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। प्रशिक्षण के द्वारा नये ज्ञान को प्राप्त किया जाता है। प्रगति के अवसर बढ़ते हैं संगठनात्मक स्थिति बढ़ती है कार्य करने के सर्वोत्तम तरीकों का प्रयोग किया जाता है तथा श्रमिकों की कार्यकुशलता में वृद्धि होती हैं।

वैज्ञानिक प्रशिक्षण से ही जुड़ी हुई एक अन्य समस्या इन श्रमिकों के लिऐ पदोन्नति की उपयुक्त व्यवस्था करना है। पदोन्नति का अर्थ है – उच्च पद पर स्थानान्तरण और यह तभी सफल हो सकता है जब वह व्यक्ति नये पद के उत्तर दायित्व के विषय में अच्छी तरह प्रशिक्षित हो और स्वयं उसका स्थान ग्रहण करने के लिए किसी अन्य व्यक्ति से प्रशिक्षण प्राप्त कर सके।

(च) प्रमापीकरण – प्रमापीकरण एक ऐसी व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत एक निश्चित प्रकार, गुण भार आदि के उत्पादों का उत्पादन किया जाता है। इसमें तीन तत्वों का प्रमापीकरण महत्वपूर्ण है –

(1) वस्तुओं का चयन एवं उपयोग – प्रमापित गुणों के उत्पाद के निर्माण के लिए केवल प्रमापित प्रकार के साधनों की ही व्यवस्था की जानी चाहिए। कच्चा माल अच्छी किस्म का तथा एक सा होना चाहिए क्योंकि यह श्रमिकों की कार्यकुशलता को प्रभावित करता है। इसके साथ साथ प्रयोग की विधि भी वैज्ञानिक होनी चाहिए।

(2) नवीनतम एवं उन्नत मशीनों, यंत्रों व उपकरणों का प्रयोग – वैज्ञानिक प्रबन्ध के अन्तर्गत यह आवश्यक है कि उपर्युक्त तथा नवीनतम मशीनों व यंत्रों का प्रयोग किया जाये। इससे श्रमिकों की कार्यकुशलता एवं उत्पादन में वृद्धि होती है।

किस्म में सुधार होता है तथा लागत में कमी आती है। इसके अतिरिक्त एक ही कार्य को करने वाले अलग अलग श्रमिकों की कार्य कुशलता की एक दूसरे से तुलना करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक श्रमिक के पास मशीन, यंत्र व अन्य उपकरण एक समान हो। एक ही प्रकार की मशीनें आदि लगाने से प्रशिक्षण की तथा मशीनों की देखभाल की लागत कम रहती है, उनसे प्राप्त उत्पादन की किस्म में एकरूपता आती है और उत्पादन की प्रक्रिया सरल हो जाती है।

(3) काम करने की दशायें – काम के निर्धारित मानकों को प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि कारखाने में सभी स्थानों पर कार्य दशायें तथा वातावरण उपयुक्त, स्वास्थ्यप्रद तथा एक जैसा हो। उत्तम व स्वास्थ्यप्रद काम करने की दशाओं का अर्थ यह है कि कार्य स्थल पर प्रकाश, स्वच्छ वायु, उपयुक्त तापमान तथा स्फूर्तिदायक जलवायु की उचित व्यवस्था हों। मशीनों के साथ काम करने की स्थिति में कारीगरों की सुरक्षा तथा उसकी सुविधा दोनों का विचार रखा जाना चाहिए।

(ज) प्रशासकीय पुर्नगठन – वैज्ञानिक प्रबन्ध के क्षेत्र में प्रशासकीय पुर्नगठन के लिए क्रियात्मक संगठन प्रणाली आधुनिक प्रबन्ध को टेलर की प्रमुख देन है। व्यावसायिक प्रबन्ध तथा प्रशासन के क्षेत्र में टेलर पहले व्यक्ति हुए जिन्होंने किसी कार्य के दो मूल अंगों नियोजन तथा निष्पादन' को अलग–अलग रखने के लिए क्रियात्मक संगठन व्यवस्था को अपनाने पर बल दिया। विशिष्टीकरण पर आधारित इस संगठन में उत्पादन के कार्य को क्रियाओं के अनुसार बॉट दिया जाता है तथा यथासम्भव एक व्यक्ति को ही एक प्रकार का कार्य सौंपा जाता है जिसका वह विशेषज्ञ होता है।

(झ) कुशल लागत लेखांकन पद्धति – उत्पादन की लागत ज्ञात करने, अपव्ययों को रोकने तथा लागत को कम करने के लिए एक कुशल लागत लेखांकन पद्धति को अपनाना आवश्यक है। लागत लेखकों को तैयार करने के लिए कुशल व्यक्तियों को नियुक्त किया जाना चाहिये।

(ट) पारस्परिक सहयोग – टेलर ने श्रमिकों और प्रबन्धकों के पारस्परिक सम्बन्धों में मानसिक क्रान्ति की आवश्यकता पर जोर दिया है। टेलर का विचार है कि "वैज्ञानिक प्रबन्ध के अन्तर्गत दोनों पक्षों के मानसिक व्यवहार में जो महान क्रान्ति होती है वह यह है कि दोनों पक्ष ही अति उपार्जन के विभाजन को सार्वजनिक महत्व का विषय मानना छोड़ देते हैं और मिलकर अपना प्रयास इस अति उपार्जन को इतना अधिक बढ़ाने की तरफ लगा देते हैं जिससे कि यह अति उपार्जन स्वयं इतना बड़ा हो जाये कि यह विवाद हो कि इसको कैसे बॉटा जाये, अनावश्यक बन जाये।" इसका कारण यह है कि वैज्ञानिक प्रबन्ध के परिणामस्वरूप संस्था की उत्पादकता कई गुना अधिक बढ़ जायेगी और फलस्वरूप प्रबन्धकों के लाभ का अंश और श्रमिकों की मजदूरी

का अंश दोनों ही बढ़ जायेंगे।

(ठ) मानसिक क्रान्ति – श्रम तथा प्रबन्ध के बीच मधुर सम्बन्धों की स्थापना के लिए टेलर ने मानसिक क्रान्ति पर जोर दिया है। प्रायः यह देखने में आता है प्रबन्ध वर्ग का यह विचार होता है कि श्रमिक कार्य से जी चुराते हैं और कम कार्य करके अधिक पारिश्रमिक प्राप्त करना चाहते हैं और दूसरी ओर श्रमिकों का यह विचार होता है कि प्रबन्ध अथवा नियोक्ता वर्ग सदैव उनका शोषण करता है, उनसे कार्य अधिक कराया जाता है और पारिश्रमिक कम दिया जाता है। प्रबन्ध अथवा नियोक्ता वर्ग और श्रमिक वर्ग के मस्तिष्क में बैठे हुए एक दूसरे के प्रति गलत एवं विरोधी विचारों में परिवर्तन करके, दोनों को एक दूसरे के निकट लाना और उद्देश्यों तथा हित की एकता पर बल देना ही मानसिक क्रान्ति कहलाती है।

3.7 मैरी पार्कर फोलेट का योगदान

मैरी पार्कर फोलेट यू.एस.ए. की एक प्रसिद्ध सामाजिक, राजनैतिक दार्शनिक थी। उन्होंने समन्वय पर अपना ध्यान केन्द्रित किया और इस प्रक्रिया से संबंधित कुछ सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया, जो इस प्रकार है –

क. प्रत्यक्ष संपर्क का सिद्धान्त

किसी भी प्रकार का समन्वय करने में प्रबन्धकों व अन्य व्यक्तियों को एक दूसरे के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क करना चाहिए। उन्हें प्रबन्धकों के द्वारा अपनाई जाने वाली पदानुक्रमिका को त्याग देना चाहिए। इससे देरी करने तथा अधिक समय लेने वाले संवहन की विधियों से छुटकारा मिल जाता है।

ख. प्रारम्भिक चरणों में ही समन्वय करने का सिद्धान्त

कार्य शुरू होने के प्रारम्भ में ही समन्वयन कार्य को अपनाकर अंत तक उस पर कार्यान्वयन करने में निश्चित ही सफलता प्राप्त होती है। अन्य शब्दों में प्रबन्धक तथा निचले स्तर पर कार्यरत कर्मचारियों को कार्य प्रारम्भ होने के समय से ही समन्वय प्रक्रिया में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

ग. सभी कारकों के पारस्परिक संबंधों वाला सिद्धान्त

प्रत्येक संगठन व्यवस्था में उद्देश्य, कार्य प्रक्रियाएं, भूमिकाएं तथा सम्बन्ध आपस में जुड़े हुए होते हैं। संगठन के प्रत्येक भाग का आपस में गहरा संबंध होता है। विपरीत प्रक्रियाओं, निपुणता, व्यवहार तथा उपक्रम के सदस्यों के व्यवहार में एकरूपता लाना ही समन्वय है।

घ. समन्वयन की सतत् प्रक्रिया का सिद्धान्त

समन्वयन न तो एक ही बार करने की प्रक्रिया है और न ही निर्धारित समय के पश्चात्। यह तो एक सतत् प्रक्रिया है। प्रबंधकों को तो उपक्रम के कार्यों को सुचारू रूप से चलाने के लिए सदैव ही सतर्क रहना पड़ता है।

ट. परिस्थिति के अनुसार अधिकार का सिद्धान्त

उपक्रमों में अधिकार के उद्देश्य को सही ढंग से समझने की आवश्यकता पर फोलेट ने बल दिया था। उनके अनुसार अधिकार का उद्देश्य अन्य व्यक्ति पर शासन नहीं होता। बल्कि इसका उद्देश्य तो उपक्रम के कार्यों में एकीकरण तथा सामंजस्य स्थापित करना होता है। विभिन्न परिस्थितियों को अपने ढंग से सुलझाने के लिए ही प्रबन्धकों को अधिकार दिया जाता है। क्या करना है और कैसे करना है, परिस्थिति के अनुसार ही निर्णय लेना होता है। प्रबंधकों तथा अन्य व्यक्तियों को परिस्थितियों से ही आदेश लेना चाहिए, एक दूसरे से नहीं।

3.8 अन्य महत्वपूर्ण सिद्धान्त

(क) उद्देश्यों की एकता का सिद्धान्त

संगठन के सभी घटकों को इस प्रकार संयोजित किया जाना चाहिए जिससे कि उसके निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके। हर विभाग या अधिकारी को अपने अपने लक्ष्य प्रस्तुत नहीं करना चाहिए, बल्कि विभागीय कार्यों और उद्देश्यों की रचना संगठन के अंतिम उद्देश्यों की प्राप्ति के अनुरूप ही करनी चाहिए। विभागीय उद्देश्य स्वयं में उद्देश्य नहीं होते अतः संगठन के उद्देश्यों से उनका कोई विरोध नहीं होना चाहिए।

(ख) पर्यवेक्षण के विस्तार का सिद्धान्त

एक अधिकारी के पर्यवेक्षण क्षेत्र में अधिकतम उतने ही कर्मचारी दिये जाने चाहिए जिनको वह सुव्यवस्थित रूप से नियंत्रित कर सके। पर्यवेक्षण के विस्तार की सीमा, कार्य का स्वभाव, गुण, इमारतों की बनावट, पर्यवेक्षण की लागत, निरीक्षकों और अधीनस्थों की उपलब्ध संख्या और कुशलता आदि अनेकों बातों को ध्यान में रखकर निश्चित की जानी चाहिए।

(ग) संतुलन का सिद्धान्त

यह सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि संघटित कार्य के लिए विभिन्न विरोधी वार्ता हितों और विचारों में अधिक संतुलन बनाये रखना चाहिए। उदाहरण के

लिए अधिकार और दायित्व में विभिन्न पक्षों के हितों में कार्य निष्पादन और उसके प्रतिफल में, प्रतिष्ठान के सामान्य हित और कर्मचारियों के व्यक्तिगत हितों में सन्तुलन बनाए रखना, एक अच्छे संगठन के लिए आवश्यक है क्योंकि संगठन एक जटिल कार्य समझा जाता है।

(घ) समन्वय की सुविधा का सिद्धान्त

संगठन का विकास इस ढंग से किया जाना चाहिए जिससे विभिन्न क्रियाओं और विभागों के कार्यों में समन्वय, नियंत्रण और निर्देशन की सुविधा रहे।

(च) प्रबन्ध विकास का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार संगठन ऐसे किया जाना चाहिए जिससे कि कर्मचारियों में प्रबन्ध क्षमता का विकास हो सके। किसी बड़ी संस्था में संगठन द्वारा प्रबन्धकीय क्षमता, योग्यता और अनुभव का विकास बहुत आवश्यक होता है। यह संगठन में उचित प्रशिक्षण के द्वारा ही संभव है। प्रबन्धकों को उनके अनुभवों में वृद्धि के लिए विभिन्न स्थितियों में कार्य करने का अवसर देना चाहिए, साथ ही प्रबन्धकों को अपनी बुद्धि तथा विवेक के प्रयोग तथा स्वतंत्र विचार विमर्श का अवसर भी मिलना चाहिए।

(छ) निरन्तरता का सिद्धान्त

संगठन में उचित स्थान उपलब्ध कराए जाने चाहिए जिससे कि प्रतिष्ठान का अस्तित्व निरन्तर अक्षुण्ण रह सके। संगठन में आधुनिकता बनाए रखने के लिए सदैव नए विचारों और प्रयोगों को बढ़ावा देते रहना चाहिए, अन्यथा प्रतिष्ठान गतिहीन हो जाएगा। प्रतिष्ठान के उद्देश्यों, नीतियों और संरचना का समय–समय पर पुनरावलोकन होते रहना चाहिए तथा नई और आवश्यक नीतियों का प्रतिस्थापन किया जाना चाहिए। इससे संगठन सदैव प्रगतिशील बना रहता है।

(ज) कुशलता का सिद्धान्त

संगठन ऐसा होना चाहिए जिसमें समय, शक्ति और धन का अपव्यय न हो, और उनका सर्वोत्तम उपयोग संभव हो सके। प्रतिष्ठान के सभी मानवीय और भौतिक साधनों के विवेकपूर्ण उपयोग से ही कार्य कुशलता बढ़ती है। अतः संगठन में कार्य कुशलता के सिद्धान्त को प्रभावी रूप से अपनाया जाना चाहिए।

(झ) सहभागिता का सिद्धान्त

यह सिद्धान्त प्रबन्धकीय निर्णयों में अधीनस्थ अधिकारियों एवं कर्मचारियों की सहभागिता, सहयोग एवं उसके परामर्श को सुनिश्चित करने पर बल देता है। इससे

निर्णयों की स्वीकार्यता बढ़ती है और कर्मचारियों के मनोबल में निरन्तर वृद्धि होती है।

(ञ) अपवाद का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार प्रबन्धकों को अपना ध्यान केवल महत्वपूर्ण मामलों पर केन्द्रित रखना चाहिए एवं दैनिक कार्यों को कार्यरत कर्मचारियों पर छोड़ देना चाहिए। इससे उच्चाधिकारियों को चिन्तन एवं नियोजन का अधिक समय मिल सकेगा।

(ट) समर्थनात्मक सम्बन्ध का सिद्धान्त

इसके अनुसार प्रबन्ध को चाहिए कि वह अपने अधीनस्थों को मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और नैतिक सहारा दे। उनके कार्यों एवं निर्णयों की सराहना करें और उनके मनोबल को उठाने में सहयोग दें।

स्व–प्रगति मूल्यांकन प्रश्न – क

1. निम्नलिखित में से सही अथवा गलत कथनों का चयन करें।

   1) प्रबंध के कार्य उपक्रम कार्यों से भिन्नता लिये हुए होते हैं।

   2) प्रबंधकों का प्रथम कार्य अपने अधीनस्थों पर अधिकार करना होता है।

   3) प्रबंधन प्रक्रिया प्रबंधकों के कार्यों के लिए रूपरेखा का निर्माण करती हैं

   4) प्रबंधन प्रक्रिया एक तंत्र संकल्पना है।

   5) प्रबंधक एक बार में एक कार्य करने की इच्छा रखते हैं।

   6) सभी संगठनों में प्रबंध प्रक्रिया एक समान नहीं होती है।

2. श्रेष्ठ उत्तर के लिए उपयुक्त विकल्प पर सही का निशान लगाइये –

   1) प्रबंधकों का वास्तविक कार्य क्या है?.

   क. नियोजन ख. नियंत्रण ग. नेतृत्व घ. समन्वय

   ङ. उपरोक्त सभी

   2) प्रबंध के कार्यों की "सार्वभौमिक मान्यता" से क्या तात्पर्य है?

   क. सभी स्थानों पर प्रबंधक एक से ही कार्य करते हैं।

   ख. मुक्त विश्वविद्यालयों के प्रबंध कार्यक्रमों में प्रबंध से सम्बन्धित समस्त कार्यों को पढ़ाया जाता है।

   ग. प्रबंध कार्य निर्धारित परिस्थितियों में ही उपयोग किए जा सकते हैं।

घ. प्रबंध शास्त्र के विद्वान प्रबंधकों के कार्यों पर एक रूप से एकमत हैं।

3) प्रबंधक कार्य निश्चित कार्यों में क्यों विभाजित किया जाता है?

क. यह प्रबंधक कार्य को सरल एवं सुसंगत बनाता है।

ख. एक समय में एक ही कार्य पर केन्द्रित रहने के लिए प्रबंधन ऐसी युक्ति करते हैं।

ग. व्यवहार में जो प्रबंधक करते हैं उसका विश्लेषण विभाजन द्वारा अधिक उपयोगी होता है।

घ. यह प्रबंध के सिद्धान्तों के प्रतिपादन में सहायक होता है।

4) प्रबन्ध प्रक्रिया विचारधारा के मूल दर्शन में एक है।

क. प्रबंधन प्रक्रिया कार्यों के चक्रीय क्रम से निर्मित होती है।

ख. प्रबंधन प्रक्रिया का उपयोग सार्वभौमिक है।

ग. प्रबंधन एक वैज्ञानिक तथा नीतिगत कार्य है।

घ. अधिक से अधिक प्रबंध की विचारधाराएं प्रतिपादित होती रहनी चाहिए।

5) प्रबंध क्षेत्र में हेनरी फेयोल का प्रमुख योगदान है–

क. उन्होंने प्रबन्धन के लिए एक सैद्धान्तिक संरचना प्रदान की है।

ख. उन्होंने प्रबन्धन प्रक्रिया विचारधारा को प्रतिपादित किया।

ग. उन्होंने प्रबंध के अनेकों सिद्धान्तों का प्रतिपादित न क्रियान्वयन किया।

घ. उन्होंने प्रबंध सिद्धान्तों पर आधारित प्रबंध शिक्षा की आवश्यकता पर प्रकाश डाला।

6) समन्वय को प्रबन्धकों के प्राथमिक कार्यों को क्यों नहीं सम्मिलित किया जाता है?

क. इसे एक महत्वपूर्ण प्राथमिक कार्य नहीं समझा जाता।

ख. इसे सभी प्रबन्धकीय कार्यों का निचोड़ कहा जाता है।

ग. यह एक नितान्त प्रशासनिक कार्य है।

घ. यह एक प्रक्रिया है सुव्यवस्थित योजनाबद्ध कार्य नहीं।

सार्वभौमिकता पर विचार

परम्परावादी लेखकों की निरंतर चली आने वाली विषम वस्तुओं में एक विषय

वस्तु यह भी है कि क्या उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त सार्वभौमिक है। सार्वभौमिकता के सिद्धान्त का तात्पर्य यह है कि प्रबन्ध सिद्धान्त विश्व के सभी स्थानों के सभी उपक्रमों में लाभपूर्ण रूप से अपनाए जा सकते हैं चाहे उपक्रमों की भिन्नता तथा कार्य करने का वातावरण कितना ही भिन्न क्यों न हो। प्रबन्ध सिद्धान्त की सार्वभौमिकता पर विचार करते समय हम प्रबन्ध सिद्धान्तों के पक्ष में निम्नलिखित तर्कों को प्रस्तुत कर सकते हैं।

परम्परावादी प्रबन्ध सिद्धान्तों को "मूलभूत सत्य" का नाम दिया गया है। विज्ञान के क्षेत्र में जिस प्रकार समय तथा अवधि से न प्रभावित होने वाले "मूलभूत सत्य" हैं जिनकी सार्वभौमिकता चुनौती से परे है। द्वितीय, सम्पूर्ण विश्व में सभी उपक्रमों का उद्देश्य एक सा ही है उदाहरण के लिए समाज द्वारा मांगे जाने वाले उत्पादो/सेवाओं की पूर्ति करना। इन उद्देश्यों की भली प्रकार से प्राप्ति के लिए प्रबंध सिद्धान्त उपक्रमों की योग्यता में वृद्धि करते हैं, अतः वे सभी उपक्रमों पर एक ही अर्थ में लागू होते हैं तीसरे, किसी भी प्रकार के उपक्रम में प्रबंध सिद्धान्तों को लागू किया जा सकता है क्योंकि वे लोचपूर्ण होते हैं। फिर, प्रबंध सिद्धान्तों की सर्वोत्कृष्ट विवेकता तथा व्यावहारिक उपयोगिता के कारण विश्व भर के उपक्रम अपने ढॉचे तथा प्रक्रिया के निर्धारण में इन सिद्धान्तों का प्रयोग करते हैं

इस तर्क के आधार पर इन सिद्धान्तों के अपनाए जाने के कारण उनके विवेक तथा व्यावहारिक मूल्य हैं उपक्रमों की विविधता तथा जटिलता नही। चौथे, प्रबन्धक जो इन सिद्धान्तों तथा प्रबंध के सैद्धान्तिक प्रयोग में पूर्णतः प्रशिक्षित हैं तथा अन्यथा भी विविध प्रकार से अनुभवी एवं कुशाग्र हैं । इन सार्वभौमिक प्रबंध के सिद्धान्तों का प्रयोग किसी भी प्रकार के उपक्रम में तथा किसी भी परिस्थिति में कर सकते हैं। अंतिम यह भी संभव है कि कुछ प्रबंध सिद्धान्त परिस्थितियों में कुछ उपक्रमों में लागू न हो पाएं। वे तब अफवाह ही कहलाएंगे तथा वे प्रबंध सिद्धान्तों की सार्वभौमिकता को अमान्य नहीं कर सकते। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक नियम की ही भांति प्रत्येक सिद्धान्त के अपने ही अपवाद होते हैं।

सार्वभौमिकता के सिद्धान्त के समर्थन में यह कहा जा सकता है कि उपक्रमों की एक बड़ी संख्या सम्पूर्ण विश्व में, अमीर तथा गरीब पश्चिम से पूरब तक, पूंजीगत और सामाजिक सभी देशों में परम्परावादी सिद्धान्तों के आधार पर डाले गये हैं। यह भी कहा जा सकता है कि नवीनतम तथा सर्वाधिक आधुनिक उपक्रम मील अपना ढॉचा तंत्र तथा प्रक्रियाओं को निर्धारित करने के लिए परम्परागत प्रबंध सिद्धान्तों की ओर निहारते रहते है। उस संदर्भ में कहा जा सकता है कि अनुक्रम अधिकार (आदेश की श्रृंखला) केन्द्रीयकरण तथा विकेन्द्रीयकरण, अधिकारों का हस्तांतरण नियंत्रण की

सीमा, कार्यात्मक अंतर आदि के आधार पर ही दन उपक्रमों की रूपरेखा बनाई जाती है।

किन्तु इस सिद्धान्त को समस्त विश्व से समर्थन नहीं मिल पाया है। इस सिद्धान्त के आलोचक अपने तर्क की पुष्टि के लिए फैयाल का भी उदाहरण देते हैं जबकि फैयोल प्रबंध प्रक्रिया सिद्धान्तों तथा उनकी सार्वभौमिकता के प्रबल समर्थक थे। फैयोल ने कहा था, "मै सिद्धान्त शब्द का प्रयोग करूँगा, किन्तु इसकी अनम्यता अथवा कठोरता से पृथक रहना चाहूँगा क्योंकि प्रबन्ध में निरपेक्षता अथवा अनम्यता (कठोरता) का कोई स्थान नहीं है, यह सब तो केवल अंश का प्रश्न है। विभिन्न तथा बदलती हुई परिस्थितियों के लिए स्थान रखना ही चाहिए। परिस्थितियों के विभिन्न समूह में प्रबंध के सिद्धान्तों की एक सीमित सार्थकता रहती है। परिस्थितियों के विभिन्न समूह में वह अपनी सार्थकता खो बैठते हैं अथवा कम कर लेते हैं। यह भी तर्क दिया जाता है कि उपक्रम तथा प्रबंध की परिस्थितियॉ इतनी परिवर्तनशील एवं जटिल है कि वे पूर्व सिद्धान्तों द्वारा नियंत्रित नहीं की जा सकती है।

स्व–प्रगति मूल्यांकन प्रश्न –ख

प्रश्न 1 निम्नलिखित में से सत्य तथा असत्य कथनों का चयन करें –

1) प्रबंध के समस्त सिद्धान्त वैज्ञानिक रूप में उत्पन्न नहीं हुए हैं।

2) परम्परागत प्रबन्ध के सिद्धान्त आज के प्रतिस्पर्द्धात्मक आधुनिक उपक्रमों पर क्रियान्वित नहीं होते हैं।

3) प्रबन्ध के सिद्धान्त वेदवाक्य हैं।

4) आदर्श की एकता का सिद्धान्त का तात्पर्य है एक कर्मचारी के एक से अधिक अधिकारी।

5) निर्देश की एकता का सिद्धान्त यह बोध कराता है कि एक ही उद्देश्य रखने वाली बहुत सी क्रियाओं के लिए निर्देश एक ही प्रबंधक से प्राप्त होना चाहिये।

6) केन्द्रीयकरण से तात्पर्य है कि अधिकारों का विभिन्न स्तरों के प्रबन्धकों के मध्य विभाजन।

प्रश्न 2 निम्नलिखित कथनों हेतु सर्वाधिक श्रेष्ठ विकल्प का चयन करें –

1) निम्नलिखित में से कौन परम्परागत प्रबंध सिद्धान्तों का स्रोत था।

क) वैज्ञानिक शोध तथा विश्लेषण

ख) प्रबंध के विद्वानों तथा पेशेवर व्यक्तियों का अनुभव तथा अवलोकन।

ग) प्राचीन समय के दार्शनिकों के बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय ।

घ इच्छाजनित धारणा तथा दुराग्रही कल्पना का आविर्भाव ।

3) प्रबंध के सिद्धान्त का परम्परागत सिद्धान्त कहलाने के प्रमुख कारण क्या थे?

क) वे भिन्न समूहों में वर्गीकृत है।

ख) वे बहुत ही प्राचीन तथा अप्रचलित हैं।

ग) उनको प्रबंध के आदर्शों से चुना गया है।

घ) वे प्रबंध की विकास यात्रा के प्रारम्भ के समय से ही पृथक सिद्धान्त के रूप में प्रतिपादित किए गये थे।

4) प्रबंध के विद्वानों के अनुसार प्रबन्ध के सिद्धान्तों के प्रतिपादन का क्या प्रमुख उद्देश्य था?

क) प्रबंधकों को उनके कार्यों में व्यावहारिक रूप से प्रारम्भ करना।

ख) प्रबंधकों को अपने व्यवहार में नीतिगत नागरिक मनुष्य बनाना।

ग) व्यावसायिक उपक्रमों की कार्यप्रणाली को सुव्यवस्थित, सुसंगठित तथा क्रमबद्ध करना।

घ) स्वयं के लिए नाम तथा प्रशंसा अर्जित सन्तोष प्राप्त करना।

5) सामान्यतः उपक्रम के आंतरिक कार्यों पर ही प्रबंध के सिद्धान्त क्यों केन्द्रित होते हैं?

क) उपक्रम की आंतरिक कार्यप्रणाली से प्रबन्धक की सूचना प्राप्त हो जाती है।

ख) उपक्रम का बाह्य वातावरण स्थायी है तथा भविष्यवाची होता है।

ग) यह सिद्धान्तों के प्रतिपादन तथा प्रयोग के कार्य को सरल या सुसंगत बनाता है।

घ) उपक्रम बंद तंत्र होता है। इसमें कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।

6) प्रबंध सिद्धान्तों को प्रायः मूल सत्य कहकर इन रूप में परिभाषित किया जाता है –

क) कि वे विश्वासपूर्वक आत्मसात कर लिये जायें।

ख) वे नैतिक रूप से अदूषित हैं।

ग) वे प्रबंध की वास्तविकता का ज्ञान कराते हैं।

घ) वे सार्वभौमिक रूप से सत्य हैं की कसौटी पर खरे साबित होते हैं।

3.10 सिद्धान्तों की सीमाएँ

बड़ी संख्या में प्रबंधकों का मत है कि प्रबंध के सिद्धान्त कई सीमाओं से ग्रसित हैं। एक उग्र वर्ग तो प्रबंध के सिद्धान्तों के बिल्कुल ही विपरीत है तथा "सिद्धान्तों द्वारा प्रबंध की विचारधारा" को अनुपयोगी भ्रमात्मक और हानिकारक बनाता है। आइये प्रबंध सिद्धान्तों की सीमाओं को समझने का प्रयास करें –

(1) अधिकतर सिद्धान्त इस शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में प्रतिपादित किए गये थे जब उपक्रम अपेक्षाकृत सरल थे तथा अपेक्षाकृत स्थायी परिस्थितियों में कार्य करते थे। अतः इन सिद्धान्तों में अपने समय की सरलता तथा स्थायित्व दिखाई देती है। तब से इन दशकों तथा वर्षों में तकनीकी तथा आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और अन्य परिस्थितियों में तीव्रता के साथ होने वाले परिवर्तनों के कारण उपक्रम तथा वातावरण दोनों ही अत्यधिक जटिल एवं प्रतियोगात्मक बन चुके हैं। वर्तमान समय के बदलते हुए वातावरण में कार्यरत आधुनिक जटिल उपक्रमों पर लागू इन प्रबंध के सिद्धान्तों की सार्थकता तथा उपयोगिता पर गंभीर शंकाएं उठाई जा रही हैं।आधुनिक प्रबंध सिद्धान्त समर्थकों में से कुछ इन सिद्धान्तों में सुधार करने के पक्ष में हैं जिससे ये वर्तमान परिस्थितियों के अनुरूप ढाले जा सकें जबकि अन्य अधिक उपयुक्त सिद्धान्तों द्वारा इनके मूलतः प्रतिस्थापन के पक्ष में हैं।

(2) परम्परावादी प्रबंध के सिद्धान्तों का परीक्षण करने से मन में यह विचार उठता है कि उपक्रम बंद तंत्र व्यवस्था में कार्य कर रहे हैं, बाह्य वातावरण तथा घटनाओं और उनसे होन वाले परिवर्तन से उनका कोई संबंध नहीं हैं । संभवतः परमपरावादी लेखकों में प्रबंध के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने का कार्य सरलीकरण करने के लिए इन मान्यताओं को अपनाया। वास्तविकता यह है कि उपक्रम अपेक्षाकृत खुला तंत्र है। वे अपने वातावरण में कार्य करते हैं तथा पर्याप्त रूप से इससे प्रभावित होते हैं। यह बात जो परम्परावादी प्रबुद्ध युग में थी वह अब भी पाई जाती है। खुले तंत्र वाली प्रकृति के उपक्रमों को परम्परावादी प्रबंध सिद्धान्तों में जिस सीमा तक अनदेखा किया है, उसके लिए उनको अवास्तविक कहना सही होगा।

(3) प्रबंध के सिद्धान्तों का आधार बहुत कम वैज्ञानिक है तथा उन्हें बहुत कम अनुभव सिद्ध सहायता प्राप्त हैं।

3.11 सारांश

प्रारम्भिक प्रबंध के सिद्धान्त प्रायः उपक्रमों तथा प्रबंध से संबंधित पहलुओं के व्यवहार का अवलोकन तथा विशलेषण करके बनाए जाते हैं। अधिकांश प्रबंध सिद्धान्त, परम्परावादी प्रबंध के विद्वानों, जैसे हेनरी फैयाल, फ्रेडरिक टेलर, मेरी पार्कर आदि ने प्रतिपादित किए थे। वे प्रयोगाश्रित शोध पर आधारित नहीं थे। ये सिद्धांतवादियों के अपने अनुभव तथा अवलोकन पर आधारित थे। प्रकृति में ये सिद्धान्त वर्णनात्मक तथा आदेशात्मक दोनों ही हैं। अधिकांश प्रबंध सिद्धान्त, सैद्धान्तिक विकास, शिक्षण तथा शोध में सहायक होने के साथ साथ प्रबंधकों को उनके व्यवहारिक कार्यों में सामान्य रूप से पथ प्रदर्शन करते हैं। परम्परागत सिद्धान्तों में भी प्रायः अधिकतर सिद्धान्त जैसे अधिकार का हस्तांतरण, आदेश की एकता, आदेश का सोपान क्रम, श्रम विभाजन आदि आदि अपनी कई सीमाओं के रहते हुए भी उपक्रमों के ढॉचे तथा प्रबंध तंत्रों के निरूपण में विस्तृत रूप से अपनाएं जाते हैं।

3.12 उपयोगी शब्दकोश

अधिकार – आदेश देने की शक्ति तथा यह निश्चित कर लेना कि इन आदेशों का पालन किया जा रहा है।

अधिकार का दायित्व के साथ मेल – अधिकार कार्य निष्पादन करने का विवेकाधिकार है तथा दायित्व अधिकार प्राप्त करने वाले व्यक्ति का कार्य निष्पादन करने का दायित्व है, अतः यह तार्किक ढंग पर निष्कर्ष निकलता है कि कार्य करने का दायित्व हस्तांतरित अधिकार से अधिक नहीं होना चाहिए और न ही यह कम रहना चाहिए। यह सम रहना चाहिए।

केन्द्रीयकरण –यह बिन्दु अथवा स्तर जहॉ सभी निर्णय लेने वाले अधिकार केन्द्रित रहते हैं।

नियंत्रण – अधीनस्थों के कार्यों का मापन तथा सुधार जिससे यह आश्वस्त हो सके कि कार्य नियोजन के अनुसार किया गया है।

समन्वय – व्यक्ति तथा समूह के प्रयासों में सामूहिक कार्यों तथा उद्देश्यों को पूरा करने के लिए सामंजस्य स्थापित करना।

विकेन्द्रीकरण – उपक्रम के नीचे के स्तरों पर निर्णय लेने की शक्ति को सौंपना।

निर्णयन –किसी कार्य को करने के विभिन्न विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन

या किसी कार्य के निष्पादन के लिए विवेकपूर्ण चयन।

अधिकार का प्रयोजन – निर्धारित कार्यों के निष्पादन के लिए आवश्यक अधिकारों को अन्य व्यक्तियों को सौंपना।

नेतृत्व – समूह के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए व्यक्तियों को प्रभावित करने की प्रक्रिया की कला।

अभिप्रेरणा– एक व्यक्ति के बीच इच्छा अथवा अनुभव का होना जिसके कारण वहकार्य करने के लिए उद्यत होता हैं

दायित्व – एक व्यक्ति की बाध्यता अथवा सौंपे गए कार्य को निष्पादित करने की उसकी बाध्यता।

संगठन – फर्म के लक्ष्यों को सरलतापूर्वक प्राप्त करने के लिए व्यक्तियों तथा कार्यों का औपचारिक रूप से समूहीकरण करना।

उपक्रम के उद्देश्य – उपक्रम की विद्यमानता तथा कार्यों द्वारा लक्ष्यों की प्राप्ति ।

नियोजन – किन कार्यों को कहॉ औरे कैसे करना है का पूर्व निर्णय।

सिद्धान्त – मूल सत्य अथवा किसी निश्चित समय पर विश्वास योग्य सत्य जो दो अथवा अधिक चलों के सेट के बीच संबंधों की व्याख्या करता है, प्रायः एक चल स्वतंत्र होता है तथा दूसरा चल पहले पर निर्भर करता है, ये वर्णनात्मक भी हो सकते हैं जो यह बतलाते हैं कि क्या होगा अथवा आदेशात्मक (अथवा नियामक) भी होते हैं जो व्यक्ति को क्या करना है का आदेश देते हैं, इस दशा में सिद्धान्त मूल्यों का कुछ मान प्रदर्शित करते हैं जैसे कुशलता और इस प्रकार के मूल्यों के आधार पर निर्णय लेते हैं।

कर्मचारी नियुक्ति –उपक्रम में उत्पन्न होने वाली स्थितियों पदों की कार्यशक्ति की आवश्यकताओं को देखते हुए भरना।

आदेश की एकता – प्रत्येक अधीनस्थ को एक ही अधिकारी के प्रति जवाबदेही के लिए बाध्य किया जाना चाहिए। यह सिद्धान्त यह बतलाता है कि जितना अधिक एक व्यक्ति एक ही अधिकारी के प्रति जवाबदेही करेगा, उतना ही कम विवाद की समस्या उत्पन्न होने की संभावना होगी।

निर्देश की एकता – इस सिद्धान्त का आशय एक अधिकारी, एक योजना अर्थात एक से ही उद्देश्य वाली सामूहिक क्रियाओं के लिए एक ही अधिकारी द्वारा निर्देश किया जाना चाहिए।

प्रबंध की सार्वभामिकता – प्रबंध विज्ञान के मूल अथवा प्रमुख तत्व, सिद्धान्त अवधारणाएँ सभी प्रकार की परिस्थितियों में सभी स्थानों पर लागू होते हैं, व्यवहार में

उनका प्रयोग सांस्कृतिक अंतरों, संभाव्यताओं, अथवा परिस्थितियों के अनुसार किया जाता है।

आदेश की सोपान श्रृंखला – उच्चतम अधिकारी से लेकर नीचे के स्तर तक उपक्रम में कार्य करने वाले व्यक्तियों के बीच अधिकार संबंध का यह सोपान बोध कराती है। इसमें अधिकारियों की कड़ी होती है। जो दोनों ही दिशाओं, (ऊपर से नीचे तथा नीचे से ऊपर) में संवहन के लिए कड़ी के रूप में कार्य करते हैं।

प्रबंध अथवा नियंत्रण का विस्तार – एक प्रबंधक के द्वारा प्रभावपूर्ण पर्यवेक्षण करने के लिए सीमित कर्मचारियों की संख्या निर्धारण।

3.13 स्व–मूल्यांकन प्रश्नावली

प्रश्न–1 "प्रबंध एक सामाजिक तथा बदलती हुई प्रक्रिया है।" टिप्पणी करें?

प्रश्न–2 प्रबंध के सिद्धान्त कार्य निष्पत्ति के एक सर्वश्रेष्ठ मार्ग पर केन्द्रित करते हैं तथा "आदेशात्मक प्रकृति" के हैं। क्या आप इस विचार से सहमत हैं? कारण स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न–3 प्रबंध के सिद्धान्तों की आवश्यकता का वर्णन कीजिए।

प्रश्न–4 फैयाल की प्रशासनिक प्रबंध थ्योरी तथा प्रबंध प्रक्रिया विचारधारा में क्या अंतर है? स्पष्ट करें।

प्रश्न–5 क्या प्रबंध के सिद्धान्त मूलभूत तथा सार्वभौमिक सत्य है? हैं तो क्यो, व्याख्या करें।

प्रश्न–6 क्या आप समझते हैं कि टेलर के वैज्ञानिक प्रबंध के सिद्धान्त फैयाल के सिद्धान्तों की तुलना में अधिक वैज्ञानिक हैं? स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न–7 मेरी पार्कर फौलेट द्वारा प्रतिपादित समन्वय सिद्धान्त का क्या महत्व है?

प्रश्न–8 "प्रबंध के सिद्धान्त लचीले हैं न कि दृढ़ किन्तु उनका प्रयोग बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार ही होना चाहिए" इस कथन का विश्लेषण करें ?

3.14 स्व–प्रगति मूल्यांकन प्रश्नों के उत्तर

क. 1	1) सच	2) गलत	3) सच	4) सच	5) गलत	6) गलत
2	1) क	2) क	3) ग	4) ख	5) क	6) ख
ख. 1	1) गलत	2) सच	3) गलत	4) गलत	5) सच	6) गलत
2	1) ख	2) ग	3) घ	4) क	5) ग	6) क

संदर्भित ग्रन्थ

- एम.सी.शर्मा एवं सी.एल.चतुर्वेदी : प्रबंध के सिद्धान्त (दिल्ली : श्री महावीर बुक डिपो, प्रथम संस्करण) अध्याय 1, 2, 4, 5, 6 खंड एक।
- जे.आर. कुम्भट : व्यवसाय प्रबंध सिद्धान्त एवं व्यवहार (इलाहाबाद : किताब महल) 1984
- हैरेल्ड कुंज एवं ओ. डोने : मैनेजमेंट (नई दिल्ली : मैक ग्राव हिल बुक कम्पनी, 1984) अध्याय 1 से 3 (अंग्रेजी में)
- वी.एस.पी. राव और पी.एस. नारायण : प्रिंसिपल्स एण्ड प्रैक्टिस ऑफ मैनेजमेंट (नई दिल्ली : कोर्णाक पब्लिशर्स, 1987) अध्याय 1 से 5 (अंग्रेजी में)।
- एस.पी. सक्सेना प्रबन्ध के सिद्धान्त, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा 2000.

RIL-080

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
प्रयागराज

M.Com - 202
प्रबन्ध सिद्धान्त एवं पर्यावरण

खण्ड
2
नियोजन एवं निर्णयन

इकाई- 1 5
नियोजन एवं निर्णयन

इकाई- 2 23
उद्देश्य द्वारा प्रबन्धन

इकाई- 3 29
निर्णयन

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	कुलपति - अध्यक्ष
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
श्री एम0 एल0 कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

संरचनात्मक सम्पादन

डॉ0 मंजूलिका श्रीवास्तव	निदेशक, दूरस्थ शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली

विषयगत सम्पादन

प्रो0 मूल मोतिहार	प्रोफेसर, मोनिरबा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 अंजनी मालीवय	रीडर, वाणिज्य संकाय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

प्रस्तुत पाठ्य सामग्री में विषय से सम्बन्धित सभी तथ्य एवं विचार मौलिक रूप से लेखक के स्वयं के हैं।

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

RIL-080

खण्ड-2 नियोजन एवं निर्णयन

यह खण्ड-2 नियोजन एवं निर्णयन से सम्बन्धित निम्न इकाईयों में विभाजित है। प्रथम इकाई में नियोजन एवं निर्णयन, द्वितीय इकाई में उद्देश्य द्वारा प्रबन्धन को समझाया गया है, तृतीय इकाई में निर्णयन का उल्लेख किया गया है।

RIL-080

इकाई –1 नियोजन एवं निर्णयन

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 नियोजन का अर्थ

1.3.1 विशेषताएँ

1.3.2 प्रकृति

1.4 नियोजन के उद्देश्य

1.4.1 नियोजन के प्रकार

1.4.2 नियोजन के सिद्धान्त

1.5 नियोजन की प्रक्रिया

1.5.1 नियोजन का महत्व

1.5.2 नियोजन बनाम पूर्वानुमान

1.6 सारांश

1.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.8 स्व–मूल्यांकन प्रश्नों के उत्तर

1.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप जान सकेंगे –

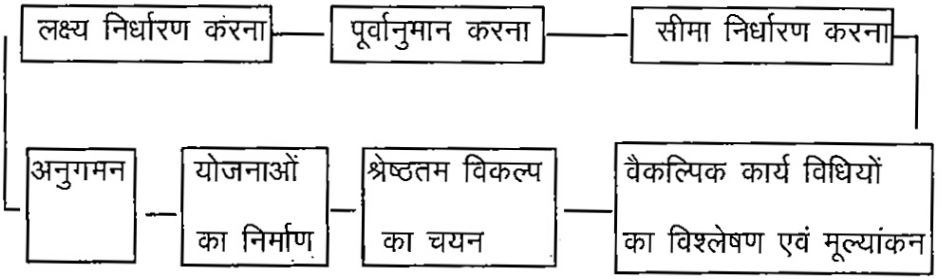
- नियोजन का आशय एवं नियोजन का उद्देश्य
- नियोजन की प्रकृति एवं विशेषताएं,
- नियोजन के प्रकार,
- नियोजन जिन सिद्धान्तों पर आधारित होता है,
- नियोजन का व्यवसाय में महत्व
- नियोजन और पूर्वानुमान में अन्तर

1.2 प्रस्तावना

नियोजन एक प्रबन्धकीय कार्य है। नियोजन का अन्य सभी प्रबंधकीय कार्यों में आधारभूत स्थान हैं। संगठन व्यवसायिक हो या राजनैतिक,

धार्मिक या सामाजिक, सभी में नियोजन की आवश्यकता पड़ती है। कौन सा कार्य कब करना है, कार्य कहाँ पर करना है, कार्य को कैसे करना चाहिए, कार्य कितनी मात्रा में किया जाना चाहिए, कार्य किस समय प्रारम्भ करना चाहिए, कार्य कितने समय में पूरा होना चाहिए, कार्य करने में कितनी लागत आनी चाहिए, कार्य कराने के लिए सम्भावित स्त्रोत या व्यक्ति कौन कौन से हैं, कार्य करने में कौन कौन से संसाधनों का प्रयोग किया जाना चाहिए। कार्य में प्रयुक्त संसाधनों का कितनी मात्रा में मिश्रण किया जाना चाहिए आदि का निर्धारण करना ही नियोजन कहलाता है। अर्थात् कौन सा कार्य कब, कहाँ, कितनी मात्रा में, किन संसाधनों से, कितनी लागत पर, कितने समय में होना है आदि का निर्धारण नियोजन में ही होता है। इसीलिए नियोजन करना प्रत्येक संगठन के लिये अति आवश्यक है। संगठन अपने संसाधनों का सफल नियोजन करके ही सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

नियोजन प्रक्रिया



इस इकाई में नियोजन के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया गया है। इसके अध्ययन के पश्चात आप यह ज्ञात कर सकेंगे कि प्रगति के लिए नियोजन कितना आवश्यक है।

1.3 नियोजन का अर्थ

नियोजन प्रबन्ध का आधार है। नियोजन भविष्य में किये जाने वाले कार्य के सम्बन्ध में यह निर्धारित करता है कि अमुक कार्य को कब किया जाय, किस समय किया जाय कार्य को कैसे किया जाय कार्य में किन साधनों का प्रयोग किया जाय, कार्य कितने समय में हो जायेगा आदि ।

उदाहरण : श्री शिवम से उनके व्यवसायिक सहयोगी श्री सत्यम किसी कार्य के सम्बन्ध में मिलना चाहते है। श्री शिवम द्वारा उनसे मिलने के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों का निर्धारण नियोजन ही है।

RIL-080
6

– सत्यम से किस दिन मिला जाय?

– किस समय मिला जाय?

– कहॉ मिला जाय?

– किस सम्बन्ध में मुलाकात होनी है?

– किन बातों पर विचार विमर्श होना है?

– विचार विमर्श में किसको शामिल किया जाय आदि?

इस प्रकार किसी भी कार्य को करने से पहले उसके सम्बन्ध में सब कुछ पूर्व निर्धारित करना ही नियोजन कहलाता है। नियोजन का आशय पूर्वानुमान नहीं है अपितु यह किसी कार्य को करने के सम्बन्ध में पहले से ही निर्णय कर लेना है। व्यवसाय में पग पग पर निर्णय की आवश्यकता पड़ती है। व्यवसाय के प्रवर्तन से समापन तक निर्णयन की आवश्यकता पड़ती है। जो नियोजन पर ही आधारित होता है।

प्रबन्ध के क्षेत्र में नियोजन से आशय वैकल्पिक उद्देश्यों, नीतियों कार्यविधियों तथा कार्यक्रमों मे से सर्वश्रेष्ठ का चयन करने से है। पीटर एफ–ड्रकर के अनुसार "एक प्रबंधक जो भी क्रियायें करता है वे निर्णय पर आधारित होती है।"

परिभाषाएँ –

नियोजन के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने अपने मत व्यक्त किये हैं जिन्हें हम परिभाषायें कह सकते हैं, उनमें से कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं :–

बिली ई गोल्ज : नियोजन मूलतः चयन करता है और नियोजन की समस्या उसी समय पैदा होती है जबकि किसी वैकल्पिक कार्यविधि ा की जानकारी हुई हो।

कूण्टज और ओ डोनेल – व्यवसायिक नियोजन एक बौद्धिक प्रक्रिया है किसी क्रिया के कारण का सचेत निर्धारण है, निर्णयों को लक्ष्यों तथ्यों तथा पूर्व–विचारित अनुमानों पर आधारित है ।"

एम.ई.हर्ले – "क्या करना चाहिए इसका पहले से ही निर्धारण करना नियोजन कहलाता है।वैज्ञानिक लक्ष्यों, नीतियों, विधियों तथा कार्यक्रमों में से सर्वश्रेष्ठ का चयन करना ही व्यावसायिक नियोजन कहलाता है।

मेरी कुशिंग नाइल्स – "नियोजन किसी उद्देश्य को पूरा करने के लिए सर्वोत्तम कार्यपथ का चुनाव करने एवं विकास करने की जागरूक प्रक्रिया है। यह वह प्रक्रिया है जिस पर भावी प्रबन्ध प्रकार्य निर्भर करता है"।

जार्ज आर. टेरी – "नियोजन भविष्य में झांकने की एक विधि है। भावी आवश्यकताओं का रचनात्मक पुनर्निरीक्षण है जिससे कि वर्तमान क्रियाओं को निर्धारित लक्ष्यों के सन्दर्भ में समायोजित किया जा सके।

उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन एवं विश्लेषण के आधार पर हम कह सकते हैं कि, "नियोजन प्रबंध का एक आधारभूत कार्य है, जिसके माध्यम से प्रबन्ध द्वारा अपने साधनों को निर्धारित लक्ष्यों के अनुसार समायोजित करने का प्रयास किया जाता है और लक्ष्य पूर्ति हेतु भविष्य के गर्भ में झॉककर सर्वोत्तम वैकल्पिक कार्यपथ का चयन किया जाता है जिससे कि निश्चित परिणामों को प्राप्त किया जा सके।"

4.3.1 नियोजन की विशेषताएँ

नियोजन की परिभाषाओं के अध्ययन एवं विश्लेषण के आधार पर इसकी निम्नलिखित विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं –

- नियोजन प्रबंध का प्राथमिक कार्य है क्योंकि नियोजन प्रबन्ध के अन्य सभी कार्यो जैसे स्टाफिंग, सन्देशवाहन, अभिप्रेरण आदि से पहले किया जाता है।
- नियोजन का सार तत्व पूर्वानुमान है।
- नियोजन में ऐक्यता पायी जाती है अर्थात एक समय में किसी कार्य विशेष के सम्बन्ध में एक ही योजना कार्यान्वित की जा सकती है।
- प्रबंध के प्रत्येक स्तर पर नियोजन पाया जाता है।
- नियोजन उपलब्ध विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन है।
- नियोजन एक सतत एवं लोचपूर्ण प्रक्रिया है।
- नियोजन एक मार्गदर्शक का कार्य करती है।
- नियोजन में प्रत्येक क्रियाओं में पारस्परिक निर्भरता पायी जाती

है।

- नियोजन में संगठनात्मकता का तत्व पाया जाता है।
- निर्णयन नियोजन का अभिन्न अंग है।
- नियोजन भावी तथ्यों व आंकड़ों पर आधारित होता है। यह इन क्रियाओं का विश्लेषण एवं वर्गीकरण करता है। इसके साथ ही यह इन क्रियाओं का क्रम निर्धारण करता है।
- नियोजन लक्ष्यों, नीतियों, नियमों, एवं प्रविधियों को निश्चित करता है,
- नियोजन प्रबन्धकों की कार्यकुशलता का आधार है।

4.3.2 नियोजन की प्रकृति

नियोजन की परिभाषाओं के अध्ययन एवं विश्लेषण से नियोजन की प्रकृति के सम्बन्ध में निम्नलिखित बिन्दु दृष्टिगोचर होते हैं –

नियोजन की निरन्तरता

नियोजन की आवश्यकता व्यवसाय की स्थापना के पूर्व से लेकर, व्यवसाय के संचालन में हर समय बनी रहती है। व्यवसाय के संचालन में हर समय किसी न किसी विषय पर निर्णय लिया जाता है जो नियोजन पर ही आधारित होते हैं। भविष्य का पूर्वानुमान लगाने के साथ साथ वर्तमान योजनाओं में भी आवश्यकतानुसार परिवर्तन करने पड़ते हैं । एक योजना से दूसरी योजना, दूसरी योजना से तीसरी योजना, तीसरी योजना से चौथी योजना, चौथी योजना से पांचवीं योजना, इस प्रकार नियोजन एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है।

नियोजन की प्राथमिकता

नियोजन सभी प्रबन्धकीय कार्यों में प्राथमिक स्थान रखता है। प्रबन्धकीय कार्यों में इसका प्रथम स्थान है। पूर्वानुमान की नींव पर नियोजन को आधार बनाया जाता है।इस नियोजन रूपी आधार पर संगठन स्टाफिंग, अभिप्रेरण एवं नियंत्रण के स्तम्भ खड़े किये जाते हैं। इन स्तम्भों पर ही प्रबंध आधारित होता है। प्रबंध के सभी कार्य नियोजन के पश्चात ही आते हैं तथा इन सभी कार्यों का कुशल संचालन नियोजन

पर ही आधारित होता है।

नियोजन की सर्वव्यापकता

नियोजन की प्रकृति सर्वव्यापक होती है यह मानव जीवन के हर पहलू से सम्बन्धित होने के साथ साथ संगठन के प्रत्येक स्तर पर और समाज के प्रत्येक क्षेत्र में पाया जाता है।संगठन चाहे व्यावसायिक हो या गैर व्यावसायिक (धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, या सामाजिक) छोटे हों या बड़े, सभी में लक्ष्य व उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए नियोजन की आवश्यकता पड़ती है।

नियोजन की कार्यकुशलता

नियोजन की कार्य कुशलता आदाय और प्रदाय पर निर्भर करती है। उसी नियोजन को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है जिसमें न्यूनतम लागत पर न्यूनतम अवांछनीय परिणामों को प्रबट करते हुए अधिकतम प्रतिफल प्रदान करें। यदि नियोजन कुशलता पूर्वक किया गया है तो व्यक्तिगत एवं सामूहिक सन्तोष अधिकतम होगा।

नियोजन एक मानसिक क्रिया

नियोजन एक बौद्धिक एवं मानसिक प्रक्रिया है। इसमें विभिन्न प्रबन्धकीय क्रियाओं का सजगतापूर्वक क्रमनिर्धारण किया जाता है। नियोजन उद्देश्यों तथ्यों व सुविचारित अनुमानों की आधारशिला हैं।

1.4 नियोजन के उद्देश्य

- नियोजन एक सर्वव्यापी मानवीय आचरण है। मानव को प्रत्येक क्षेत्र में सतत विकास के लिए नियोजन का सहारा लेना पड़ता है। संगठनों में भी नियोजन प्रत्येक स्तर पर देखने को मिलता है। नियोजन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं –

- नियोजन कार्य विशेष के निष्पादन के लिये भावी आवश्यक रूपरेखा बनाकर उसे एक निर्दिष्ट दिशा प्रदान करना है।

- नियोजन के माध्यम से संगठन से सम्बन्धित व्यक्तियों (आन्तरिक एवं बाह्य) को संगठन के लक्ष्यों एवं उन्हें प्राप्त करने की विधियों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती हैं।

- नियोजन संगठन की विविध क्रियाओं में एकात्मकता लाता है जो नीतियां के क्रियान्वयन के लिये आवश्यक होता है।

- नियोजन उपलब्ध विकल्पों में सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन है। जिसके परिणामस्वरूप क्रियाओं में अपव्यय के स्थान पर मितव्ययता आती है।

- भावी पूर्वानुमानों के आधार पर ही वर्तमान की योजनायें बनायी जाती हैं। पूर्वानुमान को नियोजन का सारतत्व कहते हैं।

- नियोजन का उद्देश्य संस्था के भौतिक एवं मानवीय संसाधनों में समन्वय स्थापित कर मानवीय संसाधनों द्वारा संस्था के समस्त संसाधनों को सामूहिक हितों की ओर निर्देशित करता है।

- नियोजन में भविष्य की कल्पना की जाती है। परिणामों का पूर्वानुमान लगाया जाता है एवं संस्था की जोखिमों एवं सम्भावनाओं को जॉचा परखा जाता है।

- नियोजन के परिणामस्वरूप संगठन में एक ऐसे वातावरण का सृजन होता है जो स्वस्थ प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहित करता है।

- नियोजन में योजनानुसार कार्य को पूरा किया जाता है जिससे संगठन को लक्ष्यों की प्राप्ति अपेक्षाकृत सरल हो जाती है।

- नियोजन, संगठन में स्वस्थ वातावरण का सृजन करता है जिसके परिणामस्वरूप स्वस्थ मोर्चाबन्दी को भी प्रोत्साहन मिलता है।

- नियोजन समग्र रूप से संगठन के लक्ष्यों, नीतियों, उद्देश्यों, कार्यविधियों कार्यक्रमों, आदि में समन्वय स्थापित करता है।

1.4.1 नियोजन के प्रकार

नियोजन समान तथा विभिन्न समयावधि व उद्देश्यों के लिए किया जाता है इस प्रकार नियोजन के प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं :–

दीर्घकालीन नियोजन – जो नियोजन एक लम्बी अवधि के लिये किया जाए उसे दीर्घकालीन नियोजन कहते हैं। दीर्घकालीन नियोजन, दीर्घकालीन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है। जैसे पूंजीगत सम्पत्तियों की व्यवस्था करना, कुशल कार्मिकों की व्यवस्था करना, नवीन पूंजीगत योजनाओं को कार्यान्वित करना, स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा बनाये रखना आदि।

अल्पकालीन नियोजन – यह नियोजन अल्पअवधि के लिये किया जाता है। इसमें तत्कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति पर अधिक बल दिया जाता है। यह दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, तिमाही, छमाही या वार्षिक हो सकता है।

भौतिक नियोजन – यह नियोजन किसी उद्देश्य के भौतिक संसाधनों से सम्बन्धित होता है। इसमें उपक्रम के लिए भवन, उपकरणों आदि की व्यवस्था की जाती है।

क्रियात्मक नियोजन – यह नियोजन संगठन की क्रियाओं से सम्बन्धित होता है। यह किसी समस्या के एक पहलू के एक विशिष्ट कार्य से सम्बन्धित हो सकता है। यह समस्या, उत्पादन, विज्ञापन, विक्रय, बिल आदि किसी से भी सम्बन्धित हो सकता है।

स्तरीय नियोजन – यह नियोजन ऐसी सभी संगठनों में पाया जाता है जहॉ कुशल प्रबन्धन हेतु प्रबंध को कई स्तरों में विभाजित कर दिया जाता है यह उच्च स्तरीय, मध्यस्तरीय तथा निम्नस्तरीय हो सकते हैं।

उद्देश्य आधारित नियोजन – इस नियोजन में विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु नियोजन किया जाता है जैसे सुधार योजनाओं का नियोजन, नवाचार योजना का नियोजन, विक्रय सम्वर्द्धन नियोजन आदि।

4.1.2 नियोजन के सिद्धान्त

नियोजन करते समय हमें विभिन्न तत्वों पर ध्यान देना होता है। इसे ही विभिन्न सिद्धान्तों में वर्गीकृत किया गया है। दूसरे शब्दों में नियोजन में निम्नलिखित सिद्धान्तों पर ध्यान देना आवश्यक है।

प्राथमिकता का सिद्धान्त – यह सिद्धानत इस मान्यता पर आधारित है कि नियोजन करते समय प्राथमिकताओं का निर्धारण किया जाना चाहिए और उसी के अनुसार नियोजन करना चाहिए।

लोच का सिद्धान्त – प्रत्येक नियोजन लोचपूर्ण होना चाहिए। जिससे बदलती हुई परिस्थितियों में हम नियोजन में आवश्यक समायोजन कर सकें।

कार्यकुशलता का सिद्धान्त– नियोजन करते वक्त कार्यकुशलता को ध्यान में रखना चाहिए। इसके तहत न्यूनतम प्रयत्नों एवं लागतों के आध

ाार पर संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहयोग दिया जाता है।

व्यापकता का सिद्धान्त – नियोजन में व्यापकता होनी चाहिए।नियोजन प्रबन्ध के सभी स्तरों के अनुकूल होना चाहिए।

समय का सिद्धान्त – नियोजन करते वक्त समय विशेष का ध्यान रखना चाहिए जिससे सभी कार्यक्रम निर्धारित समय में पूरे किये जा सकें एवं निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके।

विकल्पों का सिद्धान्त – नियोजन के अन्तर्गत उपलब्ध सभी विकल्पों में से श्रेष्ठतम विकल्प का चयन किया जाता है जिससे न्यूनतम लागत पर वांछित परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं।

सहयोग का सिद्धान्त – नियोजन हेतु संगठन में कार्यरत सभी कार्मिकों का सहयोग अपेक्षित होता है। कर्मचारियों के सहयोग एवं परामर्श के आधार पर किये गये नियोजन की सफलता की सम्भावना अधिकतम होती है।

नीति का सिद्धान्त – यह सिद्धान्त इस बात पर बल देता है नियोजन को प्रभावी बनाने के लिए ठोस एवं सुपरिभाषित नीतियॉ बनायी जानी चाहिए।

प्रतिस्पर्द्धात्मक मोर्चाबन्दी का सिद्धान्त – यह सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि नियोजन करते समय प्रतिस्पर्धी संगठनों की नियोजन तकनीकों, कार्यक्रमों, भावी योजनाओं आदि को ध्यान में रखकर ही नियोजन किया जाना चाहिए।

निरन्तरता का सिद्धान्त – नियोजन एक गतिशील तथा निरन्तर जारी रहने वाली प्रक्रिया है। इसलिये नियोजन करते समय इसकी निरन्तरता को अवश्य ध्यान में रखा जाना चाहिये।

मूल्यांकन का सिद्धान्त – नियोजन हेतु यह आवश्यक है कि समय समय पर योजनाओं का मूल्यांकन करते रहना चाहिए। जिससे आवश्यकता पड़ने पर उसमें आवश्यक दिशा परिवर्तन किया जा सके।

सम्प्रेषण का सिद्धान्त – प्रभावी सम्प्रेषण के माध्यम से ही प्रभावी नियोजन सम्भव है।नियोजन उसके क्रियान्वयन, विचलन, सुधार आदि के सम्बन्ध में कर्मचारियों को समय समय पर जानकारी दी जा सकती है और सूचनायें प्राप्त की जा सकती हैं।

RIL-080

1.5 नियोजन की प्रक्रिया

नियोजन छोटा हो या बड़ा, अल्पकालीन हो या दीर्घकालीन, उसे विधिवत संचालित करने हेतु कुछ आवश्यक कदम उठाने पड़ते हैं। इन आवश्यक कदमों को ही नियोजन प्रक्रिया कहते हैं। नियोजन प्रक्रिया के प्रमुख चरण निम्नलिखित हैं –

लक्ष्य निर्धारण करना –

व्यावसायिक नियोजन का प्रारम्भ लक्ष्यों को निर्धारित करने से होता है। सर्वप्रथम संगठन का लक्ष्य निर्धारित किया जाता है। इसके पश्चात इसे विभागों और उपविभागों में विभाजित कर दिया जाता है। कर्मचारी जिस विभाग से सम्बन्धित हो, उसे उस विभाग के लक्ष्य के बारे में अवश्य ही जानकारी होनी चाहिए। लक्ष्य निर्धारण से ही योजनाओं का क्रियान्वयन सरलतापूर्वक किया जा सकता है।

पूर्वानुमान करना –

लक्ष्य निर्धारण के पश्चात पूर्वानुमान की आवश्यकता पड़ती है। व्यवसाय से सम्बन्धित विभिन्न बातों का पूर्वानुमान लगाना पड़ता है। जैसे – पूंजी की आवश्यकता है? कितना उत्पादन करना है? कच्ची सामग्री कहॉ से क्रय करना उपयुक्त होगा? उत्पादन में कितना समय लगना चाहिए। उत्पादन लागत कितनी होनी चाहिए? किसे कितना पारिश्रमिक देना चाहिए? विक्रय मूल्य कितना हो? विक्रय कब, कहॉ, कितना किया जाना चाहिए? आदि इसके अतिरिक्त व्यावसायिक वातावरण से सम्बन्धित अन्य तथ्यों को भी पूर्वानुमान किया जाता है। इसमें तेजी, मन्दी, सरकारी नीतियॉ, वैश्विक दशायें आदि प्रमुख हैं।

सीमा निर्धारण करना –

नियोजन की सीमायें भी होती हैं ऐसे नियोजन जिन पर संगठन का पूर्ण नियंत्रण होता है नियंत्रण योग्य सीमायें कहलाती हैं। इनमें कम्पनी की नीतियॉ, विकास कार्यक्रम कार्यालय तथा शाखाओं की स्थिति आदि आते हैं। अर्द्धनियंत्रण में ऐसे नियोजन को सम्मिलित किया जाता है जिन पर संगठन का पूर्ण नियंत्रण नहीं होता है, इसे आंशिक रूप से ही नियंत्रित किया जा सकता है। इसे अर्द्ध नियंत्रण

योग्य नियोजन कहते हैं।इसमें मूल्य नीति, विक्रय क्षेत्र,पारिश्रमिक, अनुलाभ आदि प्रमुख हैं। अनियंत्रण योग्य नियोजन वह है जिन पर संगठन का कोई नियंत्रण नहीं होता है। इसमें देश की जनसंख्या, राजनीतिक वातावरण, कर दरें, भावी मूल्य स्तर, व्यापार चक्र आदि प्रमुख हैं। नियोजन की सीमाओं में प्रबन्धकों में परस्पर मतभेद हैं। यह संगठन एवं उसके लक्ष्यों पर ही निर्भर करता है कि उनके नियोजन की सीमायें क्या होनी चाहिए।

वैकल्पिक कार्यविधियों का विश्लेषण एवं मूल्यांकन

नियोजन के इस चरण में वैकल्पिक कार्यविधियों का विश्लेषण एवं मूल्यांकन किया जाता है। विकल्पों के विश्लेषण से हमें यह जानकारी प्राप्त हो जाती है कि उपलब्ध विकल्पों में क्या गुण दोष हैं तथा इनके मूल्यांकन से हमें यह पता चलता है कि कौन सा विकल्प किन परिस्थितियों में हमें सर्वोत्तम परिणाम देगा।

श्रेष्ठतम विकल्प का चयन

नियोजन के इस चरण में उपलब्ध विकल्पों के विश्लेषण एवं मूल्यांकन के पश्चात संगठन के लिए श्रेष्ठतम विकल्प का चयन किया जाता है। यह आवश्यक नहीं है कि एक संगठन के लिए जो श्रेष्ठतम विकल्प हो वही दूसरे संगठन के लिए भी श्रेष्ठतम विकल्प हो। अतः प्रत्येक संगठन आवश्यकतानुसार श्रेष्ठ विकल्प का चयन करता है।

योजनाओं का निर्माण

श्रेष्ठतम विकल्प के चयन के पश्चात योजनाओं और उपयोजनाओं का निर्माण किया जाता है। जिससे लक्ष्य को प्राप्त करने में सरलता हो। इन योजनाओं में समय, लागत, लोचशीलता, प्रतिस्पर्द्धा की नीति,आदि घटकों का भी ध्यान रखा जाता है। उपयोजनायें, मूल योजनाओं के क्रियान्वयन को सरल कर देती है। इसके पश्चात योजनाओं के सुचारू संचालन के उद्देश्य से क्रियाओं के निष्पादन का क्रम व समय भी निर्धारित कर दिया जाता है। योजनाओं के निर्माण के समय विभिन्न कर्मचारियों का सहयोग लिया जाता है जिससे योजनाओं का भली–भॉति निर्माण हो सके।

अनुगमन

योजनाओं के क्रियान्वयन के पश्चात उनकी सफलताओं का मापन किया जाता है और यदि आवश्यक हुआ तो योजनाओं में आवश्यक संशोधन किया जाता है। बदलती हुई आवश्यकताओं, परिस्थितियों एवं सम्भावित परिवर्तनों के सम्बन्ध में भी योजनाओं में आवश्यक संशोधन किया जाता है इस प्रकार अनुगमन में योजनाओं के क्रियान्वयन के पश्चात हमें जो परिणाम प्राप्त होते हैं। उन्हीं के अनुसार हम आवश्यक कदम उठाते हैं।

1.5.1 नियोजन का महत्व

नियोजन की अनुपस्थिति में व्यवसायिक सफलता प्राप्त करना असम्भव है। जिस प्रकार एक उद्देश्यहीन व्यक्ति जीवन में सफल नहीं हो सकता है उसी प्रकार बिना नियोजन के कोई भी संगठन, व्यावसायिक या गैर व्यावसायिक, सफल नहीं हो सकता है। नियोजन ही संगठन का मार्गदर्शन करता है तथा मार्ग में आने वाली बाधाओं पर विजय प्राप्त करने में सहायक होता है। अर्नेस्ट सी. मिलर ने ठीक ही कहा है कि, "बिना नियोजन के कोई भी कार्य केवल निष्प्रयोजन क्रिया होगी जिससे अव्यवस्था के अतिरिक्त कुछ भी प्राप्त न होगा। नियोजन का महत्व निम्नलिखित बिन्दुओ से और भी अधिक स्पष्ट होता है –

संगठन के उद्देश्यों पर ध्यान केन्द्रित करना

प्रत्येक व्यावसायिक संगठन के आधारभूत लक्ष्य होते हैं। इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए ही नियोजन किया जाता है। नियोजन से संगठन के प्रबंधकों का लक्ष्य की ओर ध्यान केन्द्रित रहता है, जिससे संगठन के प्रत्येक कर्मचारी जागरूक और सतर्क बने रहते हैं।संगठन के लक्ष्यों के प्रति सभी का ध्यान केन्द्रित रहने से अर्न्तविभागीय क्रियाओं में परस्पर समन्वय बना रहता है।

इस प्रकार नियोजन विभिन्न क्रियाओं को व्यवस्थित करता है। नियोजन ही संगठन की नीतियों, क्रियाविधियों, कार्यक्रमों तथा अन्य विभागों में समन्वय स्थापित करता है।

लागत व्ययों को कम करना

नियोजन के माध्यम से संगठन की प्रत्येक क्रिया निर्धारित ढंग से

RIL-080
16

की जाती है। यह विधि उपलब्ध विकल्पों में श्रेष्ठतम होती है जिससे व्ययों में कमी आती है। संकट की परिस्थितियों में इनसे निपटने के लिए नियोजन का ही सहारा लेना पड़ता है। अनेकों व्यावसायिक व्याधियों के उपचार हेतु पूर्वानुमान का सहायक होता है। नियोजन से कार्यकुशलता में वृद्धि होती हैं। जिससे लागत व्यय में कमी आ जाती है।

भविष्य की अनिश्चितता का सामना करने के लिए

भविष्य सदा अनिश्चित रहता है। आज के व्यावसायिक वातावरण ने इस अनिश्चितता को और भी अधिक बढ़ा दिया है। इन अनिश्चितताओं पर पूर्ण रूप से तो नहीं अपितु काफी हद तक नियोजन के माध्यम से निपटा जा सकता है। भविष्य के गर्भ में झांककर अनिश्चितताओं का उपचार करना ही तो नियोजन है। बाढ़, अग्निकाण्ड, भूकम्प, व्यापारिक उतार चढ़ाव, बदलती हुई बाजार स्थिति कर व्यवस्थाओं में बदलाव आदि अनिश्चितता ही तो है जिन का नियोजन के माध्यम से सामना किया जा सकता है।

प्रबन्धकीय कार्यों में समन्वय स्थापित करना

प्रबन्धकीय कार्यों में नियोजन का प्रथम स्थान है। बिना नियोजन के अन्य सभी प्रन्धकीय कार्यों की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। नियोजन के माध्यम से ही समुचित नियंत्रण, समन्वय, निर्देशन, अभिप्रेरण, स्टाफिंग आदि किये जा सकते हैं। अतः सभी प्रबन्धकीय कार्यों में समन्वय स्थापित करने के लिए नियोजन अपरिहार्य है।

मनोबल एवं अभिप्रेरण में वृद्धि

एक कुशल नियोजन पद्धति के अन्तर्गत प्रत्येक स्तर पर प्रबन्धकों की भागिता एवं कर्मचारियों को प्रोत्साहित किया जाता है। जिससे मनोबल एवं अभिप्रेरण में वृद्धि होती है। कर्मचारियों को यह पता होता है कि कौन सा कार्य कब, कहाँ, कैसे, कितने समय में होना है? इससे उनके मनोबल में वृद्धि होती है।

उतावले निर्णयों पर रोक

नियोजन के अन्तर्गत विभिन्न विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन किया जाता है। विकल्प के चयन के समय परिस्थितियों, समस्याओं, कठिनाइयों व मिव्ययता का पर्याप्त ध्यान रखा जाता है। इससे उतावले

निर्णयों पर रोक लगती है जिससे अनावश्यक हानि से संगठन सुरक्षित रहता है।

प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति में सुधार

नियोजन से संगठन की प्रतिस्पर्धा क्षमता में अभिवृद्धि होती है। नियोजन के माध्यम से ही एक संगठन प्रतियोगिता का सामना करने में सफल हो सकता है। कुशल नियोजन से ही एक संगठन अपने प्रतिद्वन्दी संगठन पर विजय प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार नियोजन से प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता में सुधार होता हैं।

सृजनात्मकता को प्रोत्साहन

नियोजन में भविष्य के गर्भ में झांककर बेहतर विकल्पों का चयन किया जाता है। इससे संगठन की सृजनात्मकता को प्रोत्साहन मिलता है। शोध, नवप्रवर्तन आदि सृजनात्मकता के प्रोत्साहन का ही परिणाम हैं।

नियोजन मानव जीवन के सभी पहलुओं पर सम्बन्धित होता है। प्रत्येक संगठन की सफलता और विफलता नियोजन पर ही निर्भर करती है। कुशल नियोजन व्यावसायिक संगठन ही नहीं अपितु मानव जीवन, समाज एवं राष्ट्र को भी प्रगति के पथ पर अग्रसर करता है। नियोजन के महत्व के संदर्भ में जितना भी कहा जाय कम है।

1.5.2 नियोजन बनाम पूर्वानुमान

जिस प्रकार उद्देश्यहीन व्यक्ति के लिए जीवन में सफलता पाना असम्भव होता है। उसी प्रकार बिना नियोजन के व्यावसायिक सफलता असम्भव है। नियोजन पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की ओर सभी का ध्यान केन्द्रित करता हैं। नियोजन दूरदर्शिता का प्रयास होता है। कुशल नियोजन रचनात्मक विचारों को जन्म देता है। नियोजन संकटों का पहले से ही अनुमान लगाने और उनका सामना करने में प्रबन्धकों की सहायता करता है। इससे कर्मचारियों का मनोबल बढ़ता है। नियोजन तकनीक का विधिवत उपयोग करने से ही सही परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं।

नियोजन के पूर्व नियोजन की आधारशिला तैयार की जाती है।

नियोजन की आधारशिला ही पूर्वानुमान कहलाती है। प्रत्येक आधुनिक व्यवसायी चेतन या अचेतन रूप से पूर्वानुमान अवश्य लगाता है। वस्तुतः आर्थिक एवं व्यावसायिक विश्लेषण को ही व्यावसायिक पूर्वानुमान कहते हैं। पूर्वानुमान का आधार आकस्मिकता का नियम है जिसके अनुसार वर्तमान गतिविधियों भूतकालीन गतिविधियों पर तथा भावी गतिविधियाँ वर्तमान गतिविधियों पर आधारित होती हैं। पूर्वानुमान के आधार पर ही बजट का निर्माण किया जाता है। पूर्वानुमान व्यवसाय का अभिन्न अंग है एवं नियोजन की समस्त क्रियायें इसी पर आधारित होती हैं। पूर्वानुमान हेतु गणितीय एवं सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया जाता है।

1.6 सारांश

नियोजन एक प्रबंधकीय कार्य है। इसका सभी प्रबंधकीय कार्यों में महत्वपूर्ण स्थान है। नियोजन प्रबन्ध का आधार है। नियोजन भविष्य में किये जाने वाले कार्य के सम्बन्ध में यह निर्धारित करना है कि अमुक कार्य को कब किया जाये, किस प्रकार कार्य सम्पादित किया जाय । कौन कौन से संसाधन प्रयोग किया जाय। संसाधनों का कितनी मात्रा में प्रयोग किया जाय, कार्य में कितनी लागत आयेगी। इस प्रकार किसी भी कार्य को करने से पहले उसके सम्बन्ध में सब कुछ पूर्व निर्धारित करना ही नियोजन कहलाता है। व्यवसाय के प्रवर्तन से समापन तक निर्णयन की आवश्यकता पड़ती है जो नियोजन पर ही आधारित होता है। प्रबन्ध के क्षेत्र में नियोजन से आशय वैकल्पिक उद्देश्यों, नीतियों, कार्यविधियों तथा कार्यक्रमों में से सर्वश्रेष्ठ का चयन करने से है। नियोजन प्रबंध का एक आधारभूत कार्य है, जिसके माध्यम से प्रबंध द्वारा अपने साधनों को निर्धारित लक्ष्यों के अनुसार समायोजित करने का प्रयास किया जाता है और लक्ष्य पूर्ति हेतु भविष्य के गर्भ में झॉकर सर्वोत्तम वैकल्पिक कार्यपथ का चयन किया जाता है जिससे कि निश्चित परिणामों को प्राप्त किया जा सके।

नियोजन प्रबंध का प्राथमिक कार्य है। यह नियोजन प्रबंध के

प्रत्येक स्तर पर पाया जाता है। नियोजन में उपलब्ध विकल्पों में सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन किया जाता है। नियोजन सतत एवं लोचपूर्ण प्रक्रिया है। नियोजन लक्ष्यों, नीतियों, नियमों एवं प्रविधियों को निश्चित करता है। नियोजन प्रबंधकों की कार्यकुशलता का आधार होता है। नियोजन का मुख्य उद्देश्य कार्य विशेष के निष्पादन के लिये भावी रूपरेखा बनाकर उसे एक निर्दिष्ट दिशा प्रदान कर वांछित लक्ष्यों को न्यूनतम समय में सर्वोत्तम विधियों द्वारा मितव्ययता से प्राप्त करना है। नियोजन की प्रकृति में निरन्तरता, प्राथमिकता, सर्वव्यापकता, कार्यकुशलता एवं मानसिक क्रियाविधि के गुण पाये जाते हैं। नियोजन के विभिन्न प्रकारों में दीर्घकालीन नियोजन, अल्पकालीन नियोजन, भौतिक नियोजन, क्रियात्मक नियोजन, स्तरीय नियोजन एवं उद्देश्य आधारित नियोजन प्रमुख हैं।

कुशल नियोजन के लिए आवश्यक है कि नियोजन के सिद्धान्त को अपनाया जाय। प्राथमिकता लोचपूर्णता, कार्यकुशलता, व्यापकता, समय, सहयोग, नीति, निरन्तरता, मूल्यांकन, सम्प्रेषण, प्रतिस्पर्द्धात्मक, मोर्चाबन्दी आदि नियोजन के प्रमुख सिद्धान्त हैं। सफल नियोजन के लिये इन सिद्धान्तों को ध्यान में रखना अति आवश्यक है। नियोजन किसी भी प्रकार का हो उसकी एक निश्चित प्रक्रिया होती है। प्रत्येक प्रक्रिया कई चरणों में विभक्त होती है। नियोजन प्रक्रिया के प्रमुख चरणों में लक्ष्य निर्धारण करना, पूर्वानुमान करना, सीमा निर्धारण करना, वैकल्पिक कार्यविधियों का विश्लेषण एवं मूल्यांकन करना श्रेष्ठतम विकल्प का चयन, योजनाओं का निर्माण करना एवं अनुगमन है।

नियोजन की अनुपस्थिति में व्यावसायिक सफलता प्राप्त करना असम्भव है। नियोजन ही संगठन का मार्गदर्शन करता है तथा मार्ग में आने वाली बाधाओं पर विजय प्राप्त करने में सहायक होता है। नियोजन के कारण ही हम भविष्य की अनिश्चितता का सामना करने के लिये पहले से तैयार हो सकते हैं। यह मनोबल में वृद्धि करके उतावले निर्णयों को रोकता है। नियोजन से प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति में सुधार होता है। एवं सृजनात्मकता को प्रोत्साहन मिलता है। नियोजन से ही प्रबन्धकीय कार्यों में समन्यव स्थापित किया जा सकता है। तथा लागत व्ययों को

कम किया जा सकता है। नियोजन पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की ओर सभी का ध्यान केन्द्रित करता है। नियोजन के पूर्व नियोजन की आधारशिला तैयार की जाती है। नियोजन की आधारशिला ही पूर्वानुमान का आधार 'आकस्मिकता का नियम' है। जिसके अनुसार वर्तमान गतिविधियॉ, भूतकालीन गतिविधियों पर तथा भावी गतिविधियों वर्तमान गतिविधियों पर आधारित होती हैं। पूर्वानुमान पर ही नियोजन की समस्त क्रियायें आधारित होती हैं।

1.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. नियोजन की परिभाषा दीजिये। व्यवसाय प्रशासन में इसके उद्देश्य एवं महत्व की विवेचना कीजिए।
2. व्यवसाय प्रशासन तथा प्रबन्ध में नियोजन की प्रकृति तथा क्षेत्र की विवेचना कीजिए।
3. श्रेष्ठ नियोजन के आवश्यक लक्षणों को संक्षेप में बताइये।
4. "आगे देखना नियोजन का सार है।" समझाइये।
5. नियोजन एक उद्देश्य के सम्पादन के लिए उत्तम क्रियाविधि के चुनाव और विकास की चेतनायुक्त प्रक्रिया है।" उपर्युक्त वक्तव्य को स्पष्ट कीजिए और वर्तमान परिस्थितियों के सन्दर्भ में नियोजन का महत्व स्पष्ट कीजिए।

1.8 सम्भावित उत्तर

1. नियोजन की परिभाषा लिखनी है। नियोजन के उद्देश्यों एवं महत्व का उल्लेख करना है।
2. नियोजन की प्रकृति, क्षेत्र को बताते हुये यह बताना है कि नियोजन कहॉ कहॉ आवश्यक है।
3. श्रेष्ठ नियोजन (उपयुक्त एवं सही) नियोजन में पायी जाने वाली विशेषताओं का उल्लेख करना हैं।
4. किसी कार्य को करने से पहले उसके सभी पक्षों पर विचार कर

एक कार्यपथ के चयन करने के सम्बन्ध में नियोजन की व्याख्या करनी हैं।

5. नियोजन किसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये एक प्रक्रिया का मार्ग प्रशस्त करता है अर्थात् प्रक्रिया का उल्लेख करते हुये, चेतना पर बल देने हेतु अनुगमन की विशेष व्याख्या करनी होगी।

इकाई –2 उद्देश्य द्वारा प्रबन्धन

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 उद्देश्य द्वारा प्रबन्ध

2.3.1 प्रकार

2.3.2 महत्व

2.4 सारांश

2.5 सम्भावित प्रश्नों के उत्तर

2.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप जान सकेंगे–

- उद्देश्य द्वारा प्रबन्ध आशय
- उद्देश्य द्वारा प्रबन्ध के विभिन्न प्रकार,
- उद्देश्य द्वारा प्रबन्ध का महत्व,

2.2 प्रस्तावना

आज का युग कटु प्रतिस्पर्द्धा का युग है जहाँ प्रबंधन आसान नहीं रह गया है। इसीलिए प्रबंध की नवीन तकनीकों का विकास होता जा रहा है इसमें से ही एक है उद्देश्य द्वारा प्रबंधन, मे संगठन की प्रबंध व्यवस्था एक निश्चित उद्देश्य के अनुसार व्यवस्थित होती है और एक निश्चित उद्देश्य की पूर्ति हेतु सभी अधिकारी तथा कर्मचारी सामूहिक रूप से प्रयासरत रहते हैं।

2.3 उद्देश्य द्वारा प्रबन्ध

उद्देश्य द्वारा प्रबंधन एक लक्ष्य आधारित प्रबंधन है। प्रबन्ध की इस तकनीक का आविष्कार सर्वप्रथम एलफ्रेड स्लोन ने सन 1950 में

RIL-080

किया। उद्देश्यों द्वारा प्रबंध के तहत सामूहिक उद्देश्य प्रत्येक प्रबंधक के लक्ष्य बन जाते हैं। इसमें बाह्य नियंत्रण का स्थान आन्तरिक नियंत्रण द्वारा ले लिया जाता है। इस तकनीक में उद्देश्यों का निर्धारण करके उनके आधार पर प्रबन्ध कार्य किया जाता हैं। इसे संक्षेप में उ. द्वा. प्र. कहते हैं । इससे लक्ष्यों द्वारा प्रबन्ध तथा मिशन द्वारा प्रबन्ध आदि नामों से भी जानते हैं। उ. द्वा. प्र. एक प्रणाली है जिसके अन्तर्गत संगठन के शीर्ष व अधीनस्थ प्रबन्धक सामूहिक रूप से संगठन के सामान्य उद्देश्यों का निर्धारण करते हैं, प्रत्येक व्यक्ति के उत्तरदायित्व की उससे अपेक्षित परिणामों के सन्दर्भ में परिभाषित करते हैं एवं इकाई के संचालन तथा उसके प्रत्येक सदस्य के योंगदान का मूल्यांकन करने में इन्हीं मापदण्डों का उपयोग किया जाता है।

2.3.1 प्रकार

उद्देश्य द्वारा प्रविध की प्रक्रिया में प्रबंध के प्रत्येक स्तर पर सभी लोगों को व्यक्तिगत रूचि लेनी पड़ती है। तभी निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति सम्भव हैं। उ. द्वा. प्र. को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है –

दीर्घकालीन उद्देश्यों द्वारा प्रबन्धन

इसके अन्तर्गत संगठन के दीर्घकालीन उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। यह संगठन के सामान्य उद्देश्य होते हैं। संगठन के विभिन्न विभागों के भी सामान्य उद्देश्य होते हैं। दीर्घकालीन उद्देश्यों द्वारा प्रबंध व्यवस्था के अंतर्गत सभी कार्य इन उद्देश्यों को ध्यान में रखकर ही किये जाते हैं। यह प्रबन्ध व्यवस्था अल्पकालीन प्रबन्ध व्यवस्था के साथ ही सफलतापूर्वक संचालित हो सकती है।

अल्पकालीन उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध

इस क्रिया के अन्तर्गत सम्पूर्ण संगठन के तथा संगठन के सभी विभागों के अल्पकालीन उद्देश्य निर्धारित कर दिये जाते हैं। संगठन के अल्पकालीन उद्देश्य दीर्घकालीन उद्देश्यों को ध्यान में रखकर ही निर्धारित किये जाते हैं। प्रबन्धन के सफलता हेतु यह आवश्यक है कि अल्पकालीन एवं दीर्घकालीन उद्देश्यों में तारतम्यता होनी चाहिए

जिससे संगठन एवं उसके विभागों के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके। यह प्रबन्ध व्यवस्था दीर्घकालीन उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध के साथ साथ संचालित की जाती है।

इन दोनों प्रबन्ध व्यवस्था का किसी भी संगठन में एक साथ संचालन होता है। इन दोनों में से किसी को एकांकी का रूप से अपनाकर संगठन सफल नहीं हो सकता है। इस व्यवस्था के लागू होने पर किसी भी स्तर पर ऐसा अनुभव नहीं होना चाहिए कि उद्देश्य या लक्ष्य ऊपर थोपे गये हों जिसके परिणाम स्वरूप प्रत्येक प्रबन्धक अपने व्यक्तिगत लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए निष्ठापूर्वक प्रयास करता है। संगठन में परस्पर अर्न्तग्रस्तता की भावना के कारण समस्त संगठन में उद्देश्यों की प्राप्ति करने का एक अनोखा वातावरण छा जाता हैं ।

2.3.2 महत्व

वर्तमान प्रतिस्पर्धी युग में उद्देश्य द्वारा प्रबन्ध की महत्ता को निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट किया जा सकता है।

(1) कुशल निष्पादन

उद्देश्य द्वारा प्रबन्ध से संगठन में कार्यकुशलता में अभिवृद्धि हो जाती है जिससे संगठन में कुशल निष्पादन होने लगता है। संगठन में निष्ठापूर्वक लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु स्वस्थ वातावरण छा जाता है तथा प्रबन्धकीय निष्पादन में सुधार होता है।

(2) भागीदारी की भावना का विकास

संगठन में सामूहिक रूप से और पृथक पृथक रूप से लक्ष्यों का निर्धारण किया जाता है जिससे संगठन के अधिकारियों एवं कर्मचारियों दोनों की भागीदारी होती हैं। और दोनों ही मिलकर संगठन के लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु सतत रूप से प्रयासरत रहते हैं। इससे टीम भावना का विकास होता है एवं प्रबंध तथा संगठन के अन्य सदस्यों के बीच भागीदारी की भावना का विकास होता है।

(3) निष्ठापूर्वक काम करना

उद्देश्य द्वारा प्रबन्ध में संगठन के प्रत्येक कर्मचारी एवं प्रबन्ध

अपने अपने लक्ष्यों से सुनिश्चित होते हैं तथा जिसे प्राप्त करने हेतु वे सतत् प्रयत्नशील रहते हैं। लक्ष्यों की स्पष्टता के कारण वह अधिक परिश्रम एवं निष्ठा से कार्य करते हैं। लक्ष्य की प्राप्ति न होने पर उनकी गैर जिम्मेदारी पूर्ण व्यवहार स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो जाता है। इसलिए वे और भी मन लगाकर काम करते हैं क्योंकि उनकी लापरवाही के लिए उन्हें जवाब देना पड़ेगा।

(4) कार्यमूल्यांकन में सरलता

उद्देश्य द्वारा प्रबन्ध में संगठन के प्रत्येक सदस्य के लक्ष्य पूर्वनिर्धारित होते हैं। लक्ष्य की प्राप्ति न होने पर उनकी कार्य के प्रति लापरवाही स्पष्ट रूप से पता चल जाती है और इसके लिए वे जवाबदेह भी होते हैं।

इससे कार्य के मूल्यांकन से सरलता होती है । कुशल कर्मचारियों को उनकी कुशलता पर लाभान्वित किया जा सकता है और लापरवाह कर्मचारियों को दण्डित किया जा सकता है।

(5) लाभदायकता में वृद्धि

इस प्रकार के प्रबन्ध को अपनाने पर संगठन की कार्यकुशलता में वृद्धि हो जाती है। अलाभकारी कार्यों को प्राथमिकता नहीं दी जाती। संगठन लाभपूर्ण कार्यों तक अपने को सीमित कर लेता है। इसके परिणामस्वरूप संगठन की लाभदायकता में वृद्धि हो जाती है।

(6) प्रभावी नियंत्रण

इस प्रकार के प्रबंध में संगठन प्रभावपूर्ण नियंत्रण रखता है। इसका मूल कारण लक्ष्यों को पूर्णतः परिभाषित होना एवं लक्ष्य विशेष के प्रति व्यक्ति विशेष की जिम्मेदारी होना जिसके कारण संगठन में प्रभावूपर्ण नियंत्रण व्यवस्था हो जाती है।

(7) मनोबल में वृद्धि

संगठन में उद्देश्य द्वारा प्रबन्ध व्यवस्था लागू होने पर संगठन में प्रत्येक स्तर के प्रबन्धकों एवं संगठन के कर्मचारियों के मनोबल में वृद्धि हो जाती है। लक्ष्यों को सुपरिभाषित होना, जवाबदेही होना, कार्य कुशलता पर मौद्रिक अभिप्रेरण आदि व्यवस्था से संगठन के प्रबन्धक एवं

कर्मचारी उच्च मनोबल के साथ कार्य करते हैं एवं संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु निरन्तर प्रयासरत रहते हैं।

(8) श्रेय संचार व्यवस्था

इस प्रकार की प्रबंधन पद्धति लागू करने के लिए यह आवश्यक है कि संगठन की संचार व्यवस्था श्रेष्ठ होनी चाहिए। इसलिए जिन संगठनों ने इस व्यवस्था को अपनाया है वहॉ श्रेष्ठ संचार व्यवस्था देखने को मिलती है। जिससे संगठन में द्रुतगामी संदेशवाहन होता है एवं संगठन की उत्पादकता में वृद्धि हो जाती है।

(9) प्रभावशाली संगठन

इस प्रकार की व्यवस्था जिन संगठनों में सफलतापूर्वक लागू रहती है वह संगठन प्रभावशाली संगठन की श्रेणी में आ जाते हैं। ऐसे संगठनों में कुशल निष्पादन स्तर, श्रेष्ठ संचार व्यवस्था, कार्य के प्रति निष्ठा, लाभदायकता एवं मनोबल में वृद्धि आदि वे सभी लक्षण पाये जाते हैं जो एक प्रभावशाली संगठन में पाये जाते हैं। अधिकारों के भारार्पण एवं विकेन्द्रिकरण होने से संगठन अधिक प्रभावी बन जाता है' इससे संगठन का बाजार प्रतिबिम्ब अच्छा हो जाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. उद्देश्यों द्वारा प्रबंध के महत्व पर प्रकाश डालिए।
2. उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध के प्रकारों को समझाइये।
3. वर्तमान व्यावसायिक परिवेश में उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध की उपादेयता पर विचार कीजिए।

2.4 सारांश

प्रबंधन की नवीन तकनीकों में से एक उद्देश्य द्वारा प्रबंधन है। उद्देश्य द्वारा प्रबंधन में, संगठन की प्रबंध व्यवस्था एक निश्चित उद्देश्य के अनुसार व्यवस्थित होती है और एक निश्चित उद्देश्य की पूर्ति हेतु सभी अधिकारी तथा कर्मचारी सामूहिक रूप से प्रयासरत रहते हैं। इस तकनीक का विकास एल्फ्रेड स्लोन ने सन 1950 में किया। इस विधि में वाह्य नियंत्रण के स्थान पर आंतरिक नियंत्रण पर बल दिया

जाता है। इस तकनीक में उद्देश्यों का निर्धारण करके उनके आधार पर प्रबंध कार्य किया जाता है। इस प्रणाली में प्रत्येक व्यक्ति के उत्तरदायित्व को उससे अपेक्षित परिणामें के संदर्भ में परिभाषित करते हैं एवं इकाई के संचालन तथा उसके प्रत्येक सदस्य के योगदान का मूल्यांकन करने में इन्हीं मापदण्डों का उपयोग किया जाता है।

उद्देश्य द्वारा प्रबंध की प्रक्रिया में प्रबंध के प्रत्येक स्तर पर सभी लोगों को व्यक्तिगत रूचि लेनी पडती है, तभी निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति सम्भव है। इस प्रणाली में दीर्घकालीन उद्देश्यों तथा अल्पकालीन उद्देश्यों के आधार पर प्रबंधन किया जाता है। इस प्राविधि के उपयोग से कार्यो का कुशल निष्पादन होता है, कार्मिकों में भागीदारी की भावना का विकास होता है। कार्मिक कार्य के प्रति निष्ठावान होते हैं तथा उनके कार्यों का मूल्यांकन सरलता से किया जा सकता है। यह तकनीक लाभदायकता में वृद्धि, मनोबल में वषद्धि तथा प्रभावी नियंत्रण में सहायक है। इस प्रणाली को अपनाने के लिये संगठन में श्रेष्ठ संचार व्यवस्था होनी चाहिए जिससे प्रभावशाली संगठन का निर्माण किया जा सके।

2.5 स्व–परक प्रश्नों के उत्तर

1. इसमें उद्देंश्यों द्वारा प्रबंध के महत्व का उल्लेख करना है।

2. इसमें उद्देश्यों द्वारा प्रबंध के कौन कौन से प्रकार हैं उनका वर्णन करना है।

3. वर्तमान समय में उद्देश्यों द्वारा प्रबंध की प्रासंगिकता का उल्लेख करना है अर्थात यह कहॉ तक उपयोगी है?

इकाई –3 निर्णयन

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 निर्णयन का अर्थ,

3.4 निर्णयन के प्रकार

3.5 निर्णयन का महत्व

3.6 निर्णयन प्रक्रिया

3.7 निर्णयन की तर्कसंगतता एवं सीमायें

3.8 सारांश

3.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप जान सकेंगे –

- निर्णयन का आशय एवं उसके प्रकार
- निर्णयन का महत्व
- निर्णयन प्रतिक्रिया
- निर्णयन की तर्कसंगतता एवं सीमायें

3.2 प्रस्तावना

किसी भी प्रकार का संगठन हो, उसमें निर्णय अवश्य ही लिये जाते हैं। किसी भी व्यावहारिक संगठन में हर समय किसी न किसी विभाग में कोई न कोई निर्णय अवश्य लिये जाते हैं। इन निर्णयों का व्यवसाय पर कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पड़ता है। व्यवसाय में लिये जाने वाले निर्णय की अपनी एक भूमिका होती है और प्रत्येक निर्णय व्यवसाय को एक निश्चित सीमा तक अवश्य प्रभावित करता है। एक गलत निर्णय

RIL-080

व्यवसाय के जीवन को संकट में ला सकता है या व्यवसाय का जीवन ही समाप्त कर सकता है। एक सही निर्णय व्यवसाय की जीवंतता को बढ़ता है तथा निरन्तर लिये गये सही निर्णय व्यवसाय को प्रगति के पथ पर अग्रसर करते है। इसीलिए निर्णयन व्यवहारिकता को ध्यान में रखकर पर्याप्त आधार पर लिये जाते हैं।

3.3 निर्णयन का अर्थ

निर्णयन का शाब्दिक अर्थ, किसी निष्कर्ष पर पहुँचने से लगाया जाता है। व्यवसाय में प्रवर्तन से समापन तक निर्णय ही लेने पड़ते हैं। प्रबन्धकों को उपलब्ध विभिन्न विकल्पों में से श्रेष्ठतम विकल्प का चयन करना पड़ता है जिससे न्यूनतम लागत पर कम समय में, कुशलतापूर्वक कार्यों को सम्पन्न किया जा सके। पीटर एफ. ड्रकर के शब्दों में, "एक प्रबन्धक जो भी क्रिया करता है वह निर्णय पर आधारित होती है।उसे निर्णय लेकर ही अपने कर्तव्यों का निष्पादन करना पड़ता है। कब व्यवसाय प्रारम्भ करें? कितने लोगों को काम पर लगायें? किस वस्तु का उत्पादन करें? कच्चा माल कहॉ से क्रय करें? निर्मित माल की बिक्री कहाँ करें? आदि निर्णयन ही तो है।

परिभाषाएँ

निर्णयन की विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाएँ इस प्रकार हैं –

आर.एस.डाबर के शब्दों में "निर्णयन को दो या अधिक विकल्पों में से एक आचरण विकल्प का किसी सिद्धान्त के आधार पर चुनाव करने के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।निर्णय लेने का आशय काम समाप्त करना या व्यावहारिक भाषा में किसी निष्कर्ष पर पहुँचना ।

कून्टज एवं ओडोनेल के अनुसार, "निर्णयन एक क्रिया को करने के विभिन्न विकल्पों में से किसी एक का वास्तविक चयन है। यह नियोजन की आत्मा है।"

जी.एल.एस. शेकैल के अनुसार, "निर्णय लेना रचनात्मक मानसिक क्रिया का वह केन्द्र बिन्दु होता है जहॉ ज्ञान विचार भावना तथा कल्पना कार्यपूर्ति के लिए एकत्र किये जाते हैं।

अर्नेस्ट डेल – "प्रबंधकीय निर्णयों से आशय उन निर्णयों से है जो प्रबंध संबंधी प्रत्येक क्रिया नियोजन, संगठन, स्टाकिंग, नियंत्रण,

नव प्रवर्तन तथा प्रतिनिधित्व करना आदि के निष्पादन के लिए आवश्यक होते हैं।''

जार्ज टैरी – ''निर्णयन मापदण्डों पर आधारित दो या दो से अधिक संभावित विकल्पों में से किसी एक विकल्प का चयन है।''

हर्बर्ट साइमन – ''निर्णयन के अन्तर्गत तीन प्रमु. अवस्थायें समाहित होती हैं – कार्य करने के अवसरों का पता लगाना, कार्य के सम्भावित क्रमों का पता लगाना तथा कार्य के सम्भावित क्रमों में से चयन करना।

हाज एवं जॉनसन –''उपलब्ध विभिन्न विकल्पों में से एक विशेष विकल्प का चयन करना ही निर्णयन कहलाता है।''

व्यावसायिक नियोजन के समय लक्ष्यों, नीतियों, कार्यविधियों, कार्यक्रमों आदि के कई विकल्प उपलब्ध रहते हैं जिनमें से एक सर्वोपयुक्त विकल्प का चयन किया जाता है। यह चयन ही प्रबंधकीय भाषा में निर्णयन कहलाता है। इस प्रकार निर्णयन से आशय किसी वांछित परिणाम की प्राप्ति हेतु सजगता से चयन किये जाने वाले मार्ग से है, जिससे श्रेष्ठतम विकल्प का चयन सम्भव हो सके। निर्णयन एक तकनीक है तथा नियोजन का अभिन्न अंग है।

3.4 निर्णयन के प्रकार

प्रकार

कार्यक्रमिक एवं अकार्यक्रमिक निर्णय

ऐसे निर्णय जिसे लेने के लिए एक सुव्यवस्थित प्रणाली संगठन में विकसित रहती है कार्यक्रमिक निर्णय कहलाते हैं ये पुनरावृत्ति प्रकृति के होते हैं। कार्यालय के लिये आवश्यक सामग्री का आदेश देना, कार्मिकों की आकस्मिक, अवकाश तथा अर्जित अवकाश को स्वीकार करना, प्राविडेन्ट फण्ड में योगदान देना, मेडिकल अवकाश को स्वीकार करना आदि।

ऐसे निर्णय जिसे लेने के लिये एक सुव्यवस्थित प्रणाली संगठन में विकसित नहीं रहती है। अकार्यक्रमिक निर्णय कहलाते हैं। इन निर्णयों

की उस समय आवश्यकता पड़ती है जब कोई समस्या, आकस्मिक रूप से हमारे सामने आ जाती है और जिसके लिये हमें त्वरित निर्णय की आवश्यकता होती है। उदाहरण विक्रय में अचानक गिरावट होते जाना, आकस्मिक रूप से ऐसी परिस्थितियों का होना कि व्यवसाय बन्द करना पड़े या स्थानान्तरित करना, विदेशों में निर्यात के नवीन अवसरों का लाभ उठाये या न उठायें आदि।

भीर्श प्रबंध निर्णय तथा विभागीय निर्णय

ऐसे निर्णय जो शीर्ष प्रबंध द्वारा लिये जाते हैं तथा जिसका प्रभाव व्यवसाय के समस्त कर्मचारियों एवं सभी विभागों पर पड़ता है शीर्ष प्रबंध ा निर्णय कहलाते हैं।

विभागीय निर्णय विभागीय स्तर पर लिये जाते हैं तथा प्रभाव विभाग के कर्मचारियों पर पड़ता है। उत्पादन विभाग में लिये जाने वाले निर्णय, विपणन विभाग में लिये जाने वाले निर्णय जैसे – किन क्षेत्रों में विक्रय एजेण्ट नियुक्त किये जायें, किन क्षेत्रों में वितरण का कौन सा माध्यम प्रयोग किया जाय, अमुक क्षेत्र में विक्रय संवर्द्धन

की कौन सी तकनीक प्रयोग की जाय आदि।

व्यावसायिक निर्णय को कई प्रकार से वर्गीकृत्त कर सकते हैं। इनमें से प्रचलित कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं :–

1) **प्रमुख व गौण निर्णय** – जब किसी महत्वपूर्ण विष्ज्ञय पर निर्णय लिये जाते हैं तो इसे प्रमुख निर्णय कहते हैं। इसे आधारभूत निर्णय या महत्वपूर्ण निर्णय भी कहते हैं। भूमि क्रय करना, संयंत्र क्रय करना, वस्तु का मूल्य निर्धारित करना आदि निर्णय इस वर्ग में आते हैं। ऐसे निर्णयों के लिये अत्यधिक सावधानी की आवश्यकता होती है। जब सामान्य मामलों के संबंध में निर्णय लिये जाते हैं जिसके लिए अधिक सोच विचार करने की आवश्यकता नहीं होती है तो ऐसे निर्णयों को गौण निर्णय कहते हैं। इनमें स्टेशनरी क्रय करना, फोन के बिलों का भुगतान करना आदि आते हैं।

2) **अनियोजित एवं नियोजित निर्णय** – ऐसे निर्णय जो किसी परिस्थिति विशेष पर अकस्मात लेने पड़ते हैं जिसके लिए कोई पूर्व

योजना नहीं होती है अनियोजित निर्णय कहलाते हैं। इसके विपरीत ऐसे निर्णय जो किसी पूर्व योजना पर आधारित होते हैं, नियोजित निर्णय कहलाते हैं। नियोजित निर्णय ठोस तथ्यों पर आधारित होते हैं क्योंकि यह पूर्व निर्धारित योजना पर आधारित होते हैं।

3) संगठनात्मक एवं व्यक्तिगत निर्णय – ऐसे निर्णय जो संगठन को प्रत्यक्षतः प्रभावित करते हैं। यह संगठन के पदाधिकारी के रूप में लिये गये होते हैं तो ऐसे निर्णय को संगठनात्मक निर्णय कहते हैं। दूसरे शब्दों में किसी संगठन में कार्यरत व्यक्ति द्वारा अपने पद के कारण जो निर्णय लेने पड़ते हैं जिससे संगठन प्रभावित होता है संगठनात्मक निर्णय कहलाते हैं। इसके विपरीत व्यक्ति द्वारा लिये गये ऐसे निंर्णय जिससे व्यक्ति का व्यक्तिगत जीवन प्रभावित होता है व्यक्तिगत निर्णय कहलाते हैं। माल कब क्रय करना है? कितना क्रय करना है? आदि संगठनात्मक निर्णय है। आज कहाँ जाना है किस मित्र से मिलना है? आदि व्यक्तिगत निर्णय है।

4) नैतिक एवं व्यूह रचना संबंधी निर्णय – ऐसे निर्णय जो दिन प्रतिदिन के कार्यों से सम्बन्धित होते हैं नैतिक निर्णय कहलाते हैं। इन्हें सामान्य निर्णय भी कहते हैं। जैसे दिहाड़ी मजदूर को किया जाने वाला मजदूरी भुगतान। व्यूह रचना संबंधी निर्णय लेना व्यवसाय के लिए कठिन होता है। यह व्यवसाय के भविष्य को प्रभावित करते हैं तथा सम्पूर्ण संगठन को प्रभावित करता है। ऐसे निर्णय प्रतिद्वन्दियों को पराजित करने तथा व्यावसाय विषम परिस्थितियों में भी सफलता से संचालित करने हेतु किये जाते हैं।

5) व्यक्तिगत एवं सामूहिक निर्णय – ऐसे निर्णय जो केवल एक व्यक्ति द्वारा लिये जाते हैं व्यक्तिगत निर्णय कहलाते हैं। एकल स्वामित्व व्यवसाय में लिये जाने वाले निर्णय व्यक्तिगत निर्णय कहलाते हैं। ऐसे निर्णय जो एक समूह द्वारा जैसे अधिकारियों एवं कर्मचारियों के समूह, द्वारा लिये जाते हैं, सामूहिक निर्णय कहलाते हैं।

6) नीति विषयक निर्णय एवं संचालन संबंधी निर्णय – नीति विषयक निर्णय संगठन के शीर्ष प्रबंध द्वारा लिये जाते हैं । यह संगठन

की आधारभूत नीतियों से संबंधित होते हैं। लाभाश की दर निर्धारित करना? कर्मचारियों को प्रशिक्षण देना आदि नीति विषयक निर्णयों की श्रेणी में आते हैं। संचालन संबंधी निर्णय निम्नस्तरीय प्रबंधकों द्वारा लिये जाते हैं। किस व्यक्ति को कौन सा काम करना है? कितना काम आज हो जाना चाहिए? आदि संचालन संबंधी निर्णय ही हैं।

3.5 निर्णयन का महत्व

व्यवसाय में अनवरत निर्णय लिये जाते रहते हैं। व्यावसायिक नियोजन हो या अभिप्रेरण, नियंत्रण हो या समन्वय नेतष्त्व हो या संदेशवाहन, विपणन हो या उत्पादन, विनीयन हो या कार्मिक आदि सभी क्षेत्रों में निर्णयन की आवश्यकता पड़ती है। प्रत्येक परिस्थिति में प्रबंधकों द्वारा लिये गये निर्णय सही होने चाहिए तथा जिस उद्देश्य की पूर्ति हेतु निर्णय लिये गये हैं उनकी पूर्ति होनी चाहिए। एक गलत निर्णय व्यवसाय के जीवन को संकट में ला सकता है। प्रबंधकों की सही निर्णयन क्षमता ही व्यावसायिक सफलता का आधार होती है। प्रबंधकों द्वारा लिये गये सटीक निर्णय व्यवसाय को प्रगति के पथ पर ले जाते हैं सिसे व्यवसाय उत्तरोत्तर विकास के पथ पर अग्रसर हो जाता है। निर्णयन के महत्व को निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट किया जा सकता है–

1) **प्रबन्धकीय कार्यों का आधार** – निर्णयन सभी प्रबन्धकीय कार्यों का आधार है। नियोजन, संगठन, निर्देशन, स्टाफिंग, नियंत्रण, अभिप्रेरण, संदेशवाहन, आदि सभी में निर्णय की आवश्यकता होती है। निर्णयन के अभाव में कोई भी प्रबंधकीय कार्य सम्पन्न नहीं किया जा सकता है। सही निर्णय ही प्रबंधकीय कार्यों को एक दिशा प्रदान करते हैं और व्यवसाय को विकास के पथ पर ले चलते हैं।

2) **अति व्यापक क्षेत्र** – निर्णयन व्यवसाय के प्रत्येक स्तर से संबंधित होते हैं। प्रत्येक कार्य के लिए निर्णय लेने ही पहते हैं। निर्णयन केवल व्यावसायिक संगठन ही नहीं अपितु गैर व्यावसायिक संगठनों को भी लेने पड़ते हैं। निर्णयन मानव जीवन के सभी पहलुओं से संबंधित

होते हैं। सही निर्णयन ही व्यावसायिक सफलता को सम्भव बनाती है। किसी व्यक्ति या संगठन के लिये निर्णयन का क्षेत्र अति व्यापक है क्योंकि प्रतिपल हमें निर्णयन की प्रक्रिया से ही गुजरते रहते हैं।

3) **निष्पादन मूल्यांकन का आधार** – व्यवसाय की सफलता प्रबंधकों द्वारा लिये जाने वाले निर्णयों के प्रभाव को दर्शाती है। व्यवसाय की बाजार स्थिति ही इस बात का ज्ञान कराती है कि प्रबंधकों द्वारा लिये गये निर्णय वास्तविकता के कितने नजदीक हैं प्रबंधक व्यावसायिक समस्या का समाधान करने में कहॉ तक सफल हुए हैं? इस प्रकार व्यवसाय की स्थिति के आधार पर प्रबंधकीय क्षमता का मूल्यांकन हो जाता है। इसीलिये इसे कुशल प्रबन्ध की कसौटी कहते हैं।

4) **व्यवसायिक सफलता का आधार** – व्यवसाय में प्रतिफल कोई न कोई निर्णय लिया जाता रहता है। कोई निर्णय ऐसे होते हैं जिनका त्वरित प्रभाव पड़ता है तो कोई निर्णय ऐसा होता है जिसका दूरगामी प्रभाव पड़ता है। व्यवसाय में प्रबंध के प्रत्येक स्तर पर निर्णय लिये जाते हैं। व्यवसाय की सफलता प्रत्येक स्तर पर लिये जाने वाले निर्णय का समेकित प्रभाव होता है। इसीलिये यदि निर्णयन सही है तो वह व्यवसायिक सफलता का आधार बन जाते हैं। इसके विपरीत यदि त्रुटियुक्त हैं तो व्यवसायिक विफलता का भी आधार बन जाते हैं। सही निर्णयन ही व्यवसाय को सफलता के पथ पर ले जाता है। इसीलिये यह कहा जाता है कि निर्णयन व्यवसायिक सफलता का आधार हैं

5) **संगठन के निर्बाध संचालन में सहायक** – यदि किसी संगठन में सही समय पर सही निर्णय लिये जाते हैं तभी व्यवसाय का निर्बाध संचालन सम्भव हो पाता है। व्यवसाय की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उसका सतत् रूप से संचालन होता रहे।

6) **परिवर्तनों का सामना करने में सहायक** – आज का व्यावसायिक युग परिवर्तन का युग है। आज प्रतिपल, व्यावसायिक वातावरण में परिवर्तन हो रहे हैं। ऐसे परिवर्तनशील वातावरण का सफलतापूर्वक सामने हेतु कुशल निर्णयन की आवश्यकता पड़ती है। परिवर्तनों को सफलतापूर्वक लागू करने के लिए भी निर्णयन की आवश्यकता पड़ती हैं

RIL-080

3.6 निर्णयन प्रक्रिया

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से निर्णयन प्रक्रिया को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त किया जा सकता है –

1) **समस्या को परिभाषित करना** – निर्णयन का प्रथम चरण समस्या को परिभाषित करना है। समस्या की प्रकृति कैसी है? इसका स्वरूप कैसा है? यह कितनी मात्रा में संगठन को प्रभावित करती है? आदि प्रमुख बिन्दु पर विचार किया जाता है। समस्या को परिभाषित करना ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार किसी बीमारी को पता लगाने हेतु चिकित्सकीय परीक्षण किये जाते हैं और बीमारी का सही सही पता लगाया जाता है। इसके पश्चात ही बीमारी के उपचार हेतु औषधि दी जाती है। इसी प्रकार निर्णयन के प्रथम चरण में समस्या को सुपरिभाषित किया जाता है जिससे समस्या के सम्बन्ध में सही सही निर्णय लिये जा सकें।

2) **समस्या का विश्लेषण करना** – समस्या को परिभाषित करने से उसका स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। इसके पश्चात हम समस्या का गहन विश्लेषण करते हैं इसमें निम्नलिखित बातों पर विचार किया जाता है –

1. समस्या की प्रकृति कैसी है?
2. यह किन विभागों से सम्बन्धित है?
3. निर्णय के लिए किन किन सूचनाओं की आवश्यकता होगी?
4. निर्णय हेतु कौन कौन से व्यक्तियों की सहायता लेनी चाहिए?
5. निर्णय किन आधारों पर लिये जाने चाहिए? आदि

उपरोक्त बातों पर विचार किये बिना जो निर्णय लिये जाते हैं उनके कार्यान्वयन में कठिनाई आ सकती है। समस्या के विश्लेषण हेतु वैज्ञज्ञनिक विधियों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

3) **वैकल्पिक हलों पर विचार करना** –किसी समस्या के समाधान के लिए अनेक हल होते हैं। संगठन को सभी हलों पर गम्भीरता से

विचार करना चाहिए तथा जो हल संगठन के लिये सर्वथा उपयुक्त हो उसे ही अपनाना चाहिए। यह आवश्यक नहीं कि जो हल एक संगठन के लिये भी उपयुक्त हो वही दूसरे संगठन के लिए ही उपयुक्त हो।यदि किसी संगठन में कार्यरत संयंत्र खराब हो गया हो तो उसके सम्बन्ध ा में निम्नलिखित तथ्यों पर विचार किया जा सकता है –

- संयंत्र की मरम्मत कराई जा सकती है।
- यदि मरम्मत संभव न हो तो संयंत्र को बदला जा सकता है।
- संयंत्र को उसी प्रकार के संयंत्र से बदला जा सकता है।
- यंत्र को आधुनिक संयंत्र से बदला जा सकता है आदि।

यदि सभी विकल्पों पर विचार करना संभव न हो तो केवल उन्हीं विकल्पों पर विचार किया जा सकता है। जो संगठन के लिए अधिक प्रासंगिक हैं। इस प्रकार हम सीमित करने वाले घटकों पर विचार कर लेते हैं।

4) सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन करना – उपलब्ध विकल्पों में से संगठन के लिए अधिक प्रासंगिक विकल्पों पर विचार कर सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन किया जाता है। इसके लिये निम्नलिखित बातों पर विचार किया जा सकता है।

- किस विकल्प में न्यूनतम प्रयत्न करने की आवश्यकता है?
- किस विकल्प में कितना व्ययय होगा?
- किस विकल्प में लाभ कितना होगा?
- किस विकल्प में कितना समय लगेगा?
- किस विकल्प में कम सामग्री एवं श्रम की आवश्यकता पड़ती है?

इस प्रकार विभिन्न विकल्पों के विभिन्न घटकों पर विचार कर संगठन के लिए सर्वथा उपयुक्त विकल्प का चयन कर लिया जाता है।

4. कार्यान्वयन

सर्वश्रेष्ठ विकल्प के चयन के पश्चात उसे कार्यरूप में परिणित करना पड़ता है। अन्तिम निर्णय को कार्यान्वित करने से पूर्व उस निर्णय

से प्रभावित होने वाले लोगों को इस बात की जानकारी दी जानी चाहिए एवं उन्हें विश्वास में लेना चाहिए। कार्यान्वित किया जाने वाला निर्णय तभी सफल होगा जब सभी संबंधित व्यक्ति इसे अपना ही निर्णय समझें। निर्णयन के सफल क्रियान्वयन हेतु कर्मचारियों एवं प्रबन्धकों के बीच परस्पर सहयोग एवं विश्वास की भावना होनी चाहिए।

5. अनुगमन

निर्णयन का यह अन्तिम चरण है। निर्णयन को व्यवहार में लाने पर इसका निष्पादन कैसा रहा? इसे क्रियान्वित करने में कहाँ तक सफल रहे? क्या इसमें कहीं सुधार की आवश्यकता है? आदि सभी बातें अनुगमन में ही आती हैं। अनुगमन में हम निर्णय को क्रियान्वित करने के पश्चात प्राप्त परिणाम का मूल्यांकन करते हैं? और यदि आवश्यक हुआ तो आवश्यक सुधार भी करते हैं।

3.7 निर्णयन की तर्कसंगतता एवं सीमायें

किसी भी संगठन में तर्कसंगत निर्णय लेना आसान नहीं है। एक प्रभावी निर्णय वह होता है जो अपेक्षाओं और उपलब्धियों के अन्तर को समाप्त कर दे। जिस निर्णय को क्रियान्वित करने पर परिणाम अपेक्षानुसार प्राप्त हो उन्हें सही निर्णय कहा जा सकता है। एक तर्कसंगत निर्णय, इसकी सीमाओं को ध्यान में रखकर ही लिये जा सकते हैं। निर्णयन को प्रभावी बनाने की आज सबसे अधिक आवश्यकता है। इसके लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है –

- निर्णयन के समय व्यावहारिक पक्ष को ध्यान में रखना चाहिए।
- निर्णय पक्षपात रहित होने चाहिए।
- निर्णय त्रुटिहीन होने चाहिए।
- निर्णय सर्वसम्मत होने चाहिए।
- निर्णय लेने वाले अधिकारियों एवं कर्मचारियों को पर्याप्त प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।
- निर्णय धैर्यपूर्वक लिये जाने चाहिए।
- निर्णयन हेतु प्रभावशाली संचार व्यवस्था का उपयोग किया जाना

चाहिए।

- निर्णयन संगठन के लक्ष्य को ध्यान में रखकर लिये जाने चाहिए।
- निर्णय सही आधारों पर लिये जाने चाहिए आदि।

किसी भी संगठन में प्रतिपल निर्णय लिये जाते रहते हैं। यह संगठन के विभिन्न विभागों से संबंधित होते हैं। संगठन में कुछ ऐसे निर्णय होते हैं जिनका प्रभाव शीघ्र नजर आने लगता है। जबकि कुछ ऐसे निर्णय होते हैं जिनका दूरगामी प्रभाव होता है। अतःयह आवश्यक है कि निर्णयन के समय उसकी व्यावहारिकता को ध्यान में रखा जाय।

3.8 सारांश

संगठनों में सभी प्रकार के निर्णय लिये जाते हैं। किसी भी संगठन में हर समय किसी न किसी विभाग में कोई न कोई निर्णय लिया जाता है। प्रत्येक निर्णय का व्यवसाय पर प्रभाव पड़ता है। निर्णयन का शाब्दिक अर्थ, किसी निष्कर्ष पर पहुँचने से लगाया जाता है। व्यवसाय में प्रवर्तन से समापन तक निर्णय ही लेने पड़ते हैं। प्रबंधकों को उपलब्ध विभिन्न विकल्पों में से श्रेष्ठतम विकल्प का चयन करना पड़ता है जिससे न्यूनतम लागत पर कम समय में कुशलतापूर्वक कार्यो को सम्पन्न किया जा सके। निर्णयन से आशय किसी वांछित परिणाम की प्राप्ति हेतु सजगता से चयन किये जाने वाले मार्ग से होता है। व्यवसायिक निर्णयन में लक्ष्यों, नीतियों, कार्यविधियों तथा कार्यक्रमों के विकल्पों में से श्रेष्ठतम विकल्प के चयन करने की प्रक्रिया है।

निर्णयन को कई प्रकार से वर्गीकष्त कर सकते हैं, इनमे प्रमुख है प्रमुख एवं गौण निर्णय,अनियोजित एवं नियोजित निर्णय, संगठनात्मक एवं व्यक्तिगत निर्णय, नैतिक एवं व्यूह रचना संबंधी निर्णय, व्यक्तिगत एवं सामूहिक निर्णय नीतिविषयक तथा संचालन संबंधी निर्णय दीर्घकालिक निर्णय तथा अल्पकालीन निर्णय आदि। व्यवसाय में अनवरत निर्णय लेने पड़ते रहते हैं। प्रबंध के प्रत्येक क्षेत्र में निर्णयन की अपरिहार्यता होती है। प्रत्येक परिस्थितियों में प्रबंधकों द्वारा सही निर्णय लेने की क्षमता ही व्यावसायिक सफलता को निर्धारित करती है। निर्णयन, प्रबंधकीय कार्यों का आधार होता है। निर्णयन का क्षेत्र अति व्यापक होता है। व्यवसाय

RIL-080

की सफलता और असफलता प्रबंधकों द्वारा लियेजाने वाले निर्णयों के प्रभाव को दर्शाती है, इस प्रकार निर्णयन निष्पादन मूल्यांकन का आधार होता है। सही निर्णयन के आधार पर ही व्यावसायिक सफलता अर्जित की जा सकती है। निर्णयन संगठन के निर्वाध संचालन में सहायक होता है। निर्णयन परिवर्तनों का सामना करने में भी सहायक होता है।

निर्णयन एक प्रक्रिया है जिसे कई चरणों में विभक्त किया जा सकता है। सर्वप्रथम समस्या को परिभाषित किया जाता है। दूसरे चरण में समस्या का विश्लेषण किया जाता है। इसके पष्चात वैकल्पिक समाधानों पर विचार किया जाता है। चौथे चरण में उपलब्ध संसाधनों तथा परिस्थितियों के आधार पर सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन किया जाता है। श्रेष्ठतम विकल्प के चयन के पश्चात इसको कार्यान्वित किया जाता है। अंततः अनुगमन किया जाता है।

किसी भी संगठन में तर्कसंगत विर्णय लेना सरल नहीं है। एक प्रभावी निर्णय वह होता है जो अपेक्षाओं और उपलब्धियों के अन्तर को समाप्त कर दे। जिस निर्णय को क्रियान्वित करने पर परिणाम अपेक्षानुसार प्राप्त हो उन्हें सही निर्णय कहा जा सकता है। एक तर्क संगत निर्णय इसकी सीमाओं को ध्यान में रखकर ही लिये जा सकते हैं। वर्तमान में, निर्णयन को प्रभावी बनाये जाने की आवश्यकता है। सही निर्णयन विभिन्न पहलुओं पर विचार कर ही लिया जाता है अतः यह अति आवश्यक है कि निर्णयन के समय उसकी व्यावहारिकता को ध्यान में रखा जाय।

3.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

- निर्णयन का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
- निर्णयन से आप क्या समझते हैं?
- निर्णयन की प्रक्रिया को समझाइये?
- निर्णयन कितने प्रकार के होते हैं?
- निर्णयन के अर्थ एवं महत्व को स्पष्ट कीजिए?

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
प्रयागराज

M.Com - 202
प्रबन्ध सिद्धान्त एवं पर्यावरण

खण्ड
3
संगठन

इकाई- 1 संगठन	5
इकाई- 2 संगठन संरचना	16
इकाई- 3 विभागीकरण	25
इकाई- 4 अधिकार सत्ता	34

परामर्श-समिति

प्रो० नागेश्वर राव	कुलपति - अध्यक्ष
डॉ० हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
श्री एम० एल० कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

संरचनात्मक सम्पादन

डॉ० मंजूलिका श्रीवास्तव	निदेशक, दूरस्थ शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली

विषयगत सम्पादन

प्रो० मूल मोतिहार	प्रोफेसर, मोनिरबा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ० अंजनी मालीवय	रीडर, वाणिज्य संकाय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

प्रस्तुत पाठ्य सामग्री में विषय से सम्बन्धित सभी तथ्य एवं विचार मौलिक रूप से लेखक के स्वयं के हैं।

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

RIL-080

खण्ड-3 संगठन

इस खण्ड की प्रथम इकाई में संगठन पर प्रकाश डाला गया है संगठन शब्द की संरचना समय गठन से हुआ है, जिसका अर्थ है उचित प्रकार की व्यवस्था। इकाई द्वितीय में संगठन संरचना का उल्लेख किया गया है। इकाई तृतीय में विभागीय तथा इकाई चतुर्थ में अधिकार सत्ता की व्याख्या की गई है।

RIL-080

इकाई –1 संगठन

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 संगठन की अवधारणा

1.3.1 व्यक्तियों के समूह के रूप में संगठन

1.3.2 व्यक्तियों के बीच परस्पर संरचना के रूप में संगठन

1.3.3 एक प्रक्रिया के रूप में संगठन

1.4 संगठन की विशेषतायें

1.5 संगठन की प्रक्रिया

1.6 सारांश

1.7 बहुविकल्पीय प्रश्न

1.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.9 बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर

1.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

- संगठन की अवधारणा को समझ पायेंगे,
- संगठन की विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे,
- संगठन की प्रक्रिया का विश्लेषण कर पायेंगे।
- नियोजन जिन सिद्धान्तों पर आधारित होता है।
- नियोजन का व्यवसाय में महत्व
- नियोजन और पूर्वानुमान में अन्तर

1.2 प्रस्तावना

हमारे समाज में धार्मिक संगठन (जैसे – विश्व हिन्दू परिषद, जमायते इस्लामी, कैथोलिक क्रिश्चियन सोसाइटी), राजनीतिक संगठन (कांग्रेस, भारतीय जनता पार्टी, बहुजन समाज पार्टी, समाजवादी पार्टी कम्युनिस्ट पार्टी) आध्यात्मिक संगठन। राधास्वामी सत्संग, ओशो इंटरनेशनल, जूना अखाड़ा,

निरंजनी अखाड़ा), आतंकवादी संगठन (लश्करे तैयबा, जैश ए मोहम्मद, तालिबान) वैधानिक संगठन (रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया, योजना आयोग) आदि अनेकों संगठन हैं जो अलग अलग गतिविधियों में संलग्न हैं। जिस संगठन का निर्माण जिन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये होता है वह उसी कार्य में संलग्न रहते हैं, जिससे उनके लक्ष्यों की प्राप्ति सम्भव हो सके। हम शिक्षा, नौकरी, उपचार, व्यवसाय, मनोरंजन, पर्यटन आदि का आनन्द सामाजिक संगठनों से ही प्राप्त करते हैं।संगठन से ही हम अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं और उन्हें ही हम वस्तुएं और सेवायें प्रदान करते हैं। संभवतः मानव संगठन में ही जन्म लेता है, संगठन में ही विकास करता है और संगठन में ही उसके जीवन का अंत हो जाता है।

मानव एक सामाजिक प्राणी है। मानव का जन्म विकास और अन्त समाज रूपी संगठन में होता है।हम बिना संगठन के जीवित ही नहीं रह सकते। आज विश्व में मानव संगठनों का निर्माण कर रहे हैं। संगठनों को प्रभावित कर रहे हैं और संगठनों से प्रभावित हो रहे हैं। परिवार सबसे छोटा सामाजिक संगठन है। संगठन समाज के नियमों को दृढ़ता प्रदान करते हैं। मानव की प्रगति या अवनति संगठन पर ही निर्भर करती है। मानव निर्मित संगठनों में आपसी सम्बन्ध संगठन के सदस्यों द्वारा निर्धारित होते हैं। संगठन के अभाव में किसी का अस्तित्व नहीं हैं।

1.3 संगठन की अवधारणा

संगठन के आशय व्यक्तियों के ऐसे समूह से है जो अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु संगठन के संसाधनों एवं मानवीय प्रयासों में एक ऐसा सम्बन्ध स्थापित करता है। प्रबंध की दृष्टि से संगठन एक बहुअर्थी शब्द है। संगठन का आंशय स्पष्ट करने हेतु विभिन्न विद्वानों ने अपने मत दिये हैं जिन्हें हम तीन वर्गों में विभक्त कर सकते है।

1) व्यक्तियों के समूह के रूप में

2) व्यक्तियों की परस्पर सम्बन्धों की संरचना के रूप में

3) प्रक्रिया के रूप में।

1.3.1 व्यक्तियों के रूप में संगठन –

संगठन व्यक्तियों का एक समूह है। इसका आशय यह कदापि नहीं है कि भीड़ एक संगठन है क्योंकि भीड़ का कोई सामान्य उद्देश्य नहीं होता है। व्यक्तियों के रूप में संगठन के सम्बन्ध में कुछ प्रमुख विद्वानों के मत निम्नलिखित हैं –

चेस्टर आई. बर्नार्ड के अनुसार, "संगठन दो या दो से अधिक व्यक्तियों द्वारा सोच समझ कर की गई समन्वित क्रियाओं का तंत्र है।

मैक फालैण्ड के अनुसार, "संगठन से तात्पर्य व्यक्तियों के एक विशेष समूह से है जो पूर्वनिश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मिलकर कार्य करते हैं।"

इटजियोनि के अनुसार, "संगठन विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये, स्वेच्छा से निर्मित एवं पूर्वनिर्मित सामाजिक इकाइयाँ हैं।"

आर. सी. डेविस के अनुसार, "संगठन व्यक्तियों का एक समूह है जो अपने नेता के निर्देशन में सामान्य उद्देश्य की पूर्ति हेतु सहयोग प्रदान करता हैं।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन एवं विश्लेषण के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि "संगठन व्यक्तियों का एक समूह या तंत्र है जो एक व्यक्ति के नेतृत्व में पूर्व निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मिलकर समन्वित रूप से कार्य करते हैं।"

इस प्रकार संगठन व्यक्तियों का एक समूह है। इस समूह का अपना एक उद्देश्य होता है जिसके लिये संगठन के प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने स्तर से प्रयत्नशील रहते हैं। व्यक्तियों के इस समूह में व्यक्ति ही व्यक्तियों का नेतृत्व करता है और निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये मिलकर कार्य करते हैं। किसी भी संगठन के निर्माण के लिए कम से कम दो व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। संगठन में व्यक्तियों की अधिकतम सीमा संगठन के उद्देश्यों, कार्यों प्रक्रियाओं के आधार पर भिन्न भिन्न होती हैं। एक ही व्यवसाय में कार्यरत संगठनों में भी व्यक्तियों की अधिकतम संख्या भिन्न भिन्न होती है। किसी भी संगठन में व्यक्तियों की संख्या उसकी आवश्यकता के अनुसार ही निर्धारित की जाती है।

1.3.2 व्यक्तियों की परस्पर संरचना के रूप में संगठन

इस दृष्टिकोण के अनुसार संगठन एक ऐसी संरचना है जो व्यक्तियों के समूह में परस्पर सम्बन्धों, अधिकारों, दायित्वों तथा कर्तव्यों को दर्शाती है। जिसके आधार पर सम्पूर्ण संगठन एक एकीकृत इकाई के रूप में कार्य करता है। इस सम्बन्ध में कुछ प्रमुख विद्वानों के विचार निम्नवत हैं –

किम्बाल एवं किम्बाल के अनुसार, "संगठन के अन्तर्गत उन सभी कर्तव्यों का समावेश किया जाता है जो विभागों तथा उनके कर्मचारियों को तैयार करने, उनके प्रकार्यों की व्यवस्था करने तथा विभाग व व्यक्तियों के बीच सम्बन्धों के निश्चित करने से सम्बन्धित हैं।"

कूष्टज एवं ओडोनेल के अनुसार, "संगठन एक सामिप्राय एवं विधि ासंगत भूमिकाओं अथवा अवस्थितियों की संरचना है।"

हरबर्ट ए. साइमन के अनुसार, "किसी मानव समूह से संचार एवं अन्य सम्बन्धों के जटिल कलेवर को संगठन कहते हैं।"

हॉज व जॉनसन के अनुसार, "संगठन मानवीय एवं भौतिक तंत्र के अन्तर्जाल या ढांचे के रूप में बनाया जाता है।"

थियो हेमन के अनुसार, "संगठन का तात्पर्य व्यक्तियों के कर्तव्यों के निर्धारण, उनके आवंटन एवं वर्गीकृत क्रियाओं के मध्य अधिकार सत्ता सम्बन्ध ों की स्थापना तथा उनके अनुरक्षण से है।"

अतः हम कह सकते हैं कि "संगठन व्यक्तियों के परस्पर सम्बन्धों की एक ऐसी संरचना है जिसके तहत संगठन के सभी व्यक्ति एकीकृत एवं समान्वित रूप से संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं।"

संगठन में व्यक्तियों का एक समूह ही नहीं अपितु व्यक्तियों के बीच संबंधों की एक संरचना पायी जाती है। यदि एक परिवार को ले तो हम पायेंगे कि मॉ के अपने कर्तव्य और दायित्व हैं, पिता के अपने कर्तव्य और दायित्व हैं, बच्चों के अपने कर्तव्य और दायित्व हैं, पति पत्नी के अपने कर्तव्य और दायित्व हैं। इन कर्तव्यों और दायित्वों से परिवार में परस्पर एक संबंध संरचना विकसित हो जाती है। परन्तु सबका एक सर्वमान्य कर्तव्य है कि परिवार के हित के लिये कार्य करें। इसी प्रकार एक संगठन में भी व्यक्तियों के बीच परस्पर सम्बन्ध संरचना पायी जाती है। एक प्रबंधक, सुपरवाइजर, इंजीनियर,

श्रमिक चौकीदार, आदि सभी के अपने कर्तव्य हैं परन्तु सभी का एक सर्वमान्य कर्तव्य संगठन के हित के लिये कार्य करना है। इस सम्बन्ध संरचना में कर्तव्य एवं दायित्वों का स्पष्ट विभाजन होता है। जिससे प्रत्येक व्यक्ति को उसके कार्य के लिये उत्तरदायी ठहराया जा सके। व्यक्तियों के बीच परस्पर सम्बन्ध ा के अभाव में व्यक्तियों का समूह संगठन ही नहीं कहलायेगा। इसे केवल भीड़ ही कहा जा सकता है।

1.3.3 प्रक्रिया के रूप में संगठन

प्रक्रिया के रूप में संगठन से आशय उन समस्त क्रियाओं के निष्पादन से है जिनके द्वारा संगठन का संचालन किया जाता है। इस मत के प्रमुख विचार निम्नवत हैं –

उर्विक के अनुसार, "किसी कार्य को पूरा करने के लिए जिन जिन क्रियाओं को किया जाय, उनका निर्धारण करना एवं उन क्रियाओं को व्यक्तियों के व्यक्तियों के मध्य वितरित करना ही संगठन कहलाता है।

ई.एफ.एल. के अनुसार, "संगठन प्रबन्ध की कार्य संरचना है क्योंकि वह अधिक सार्थक कार्य सम्पादन के लिए कुल दायित्वों को ठीक ठीक विभक्त कर वितरित करता है।

एलेन के अनुसार, "संगठन कार्यों को निश्चित एवं श्रेणीबद्ध करने दायित्वों एवं अधिकारों को परिभाषित एवं प्रत्यायोजित करने तथा उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु व्यक्तियों को श्रेष्ठतम विधि से काम करने के लिए सम्बन्ध स्थापित करने की प्रक्रिया है।

अतः हम कह सकते हैं कि "संगठन एक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत संगठन की सम्पूर्ण क्रियाओं को निश्चित एवं वर्गीकृत किया जाता है, विभिन्न व्यक्तियों के मध्य अधिकारी एवं दायित्वों को आवंटित किया जाता है तथा उनके बीच परस्पर सम्बन्धों की स्थापना की जाती है।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं, कि संगठन मानवीय भौतिक संसाध ानों का समूह है जिसमें सभी परस्पर अर्न्तवैयक्तिक सम्बन्धों द्वारा सम्बन्धित रहते हैं जिसमें सभी के अधिकारों एवं दायित्वों का समुचित निर्धारण होता है एवं पूर्वनिश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु सभी सामूहिक रूप से प्रयासरत रहते हैं।

प्रत्येक संगठन कार्यों की एक निश्चित प्रक्रिया को अपनाता है और प्रत्येक प्रक्रिया के एक निश्चित चरण होते हैं। संगठन का एक प्रक्रिया के रूप में विकास, व्यवसाय में प्रतियोगिता के बढ़ने के साथ साथ अपरिहार्य हो गया है। प्रत्येक प्रक्रिया के, प्रत्येक चरण पूर्ण रूप से परिभाषित होंते हैं और प्रत्येक चरण किसी न किसी निर्णय से संबंधित होता है। प्रत्येक निर्णय किसी न किसी उद्देश्य की पूर्ति करते हैं और उद्देश्यों की पूर्ति हमें लक्ष्यों के नजदीक ले जाती है। इस प्रकार संगठन का विकास एक प्रक्रिया के रूप में भी माना जाता है जिसमें सामूहिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु, सामूहिक प्रयास किये जाते हैं। क्रियाओं की जटिलताओं को कम करने के लिए ही संगठन में विभागों का विकास हुआ और इन विभिन्न विभागों के कार्यों में परस्पर समन्वय के लिए ही एक मुख्य कार्यकारी की व्यवस्था की गई।

1.4 संगठन की विशेषताएँ

संगठन की विभिन्न परिभाषाओं के अध्ययन एवं विश्लेषण से संगठन की निम्नलिखित विशेषतायें दृष्टिगोचर होती हैं –

व्यक्तियों का समूह –

व्यक्ति एक निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही एक दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं और एक संगठन का निर्माण करते हैं। यह उद्देश्य पर निर्भर करता है कि किसे संगठन का सदस्य बनाया जाना चाहिए। और किसे संगठन का सदस्य नहीं बनाया जाना चाहिए। इस प्रकार आवश्यकता ही व्यक्तियों को संगठन निर्माण के लिये प्रेरित करती है।

लक्ष्य का होना

लक्ष्यों को ध्यान में रखकर ही संगठनों का निर्माण किया जाना एवं उसके सदस्य बनाये जाते हैं। लक्ष्य ही संगठनों को एक दिशा देते हैं। लक्ष्य ही कार्य पथ के चयन में सहायता प्रदान करते हैं। इसीलिये प्रत्येक संगठन अपने लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु सदैव प्रयत्नशील रहता है।

संसाधनों में समन्वय

संगठन के संसाधनों में जितना अच्छा समन्वय होगा, संगठन उतने ही सरलता से अपने लक्ष्यों को प्राप्त कर सकेंगे।संगठन के लक्ष्यों के आधार पर

ही, संगठन में संसाधनों की आवश्यकता होती है। किसी भी संगठन में संसाधनों का अच्छा समन्वय तभी माना जायेगा जबकि न्यूनतम संसाधनों से अधिकतम उद्देश्यों की पूर्ति सम्भव हो।

एकीकृत प्रणाली

एकीकृत प्रणाली के अभाव में संगठन छिन्न भिन्न हो जायेगा और निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति असम्भव हो जायेगी। किसी भी संगठन के लिए एकीकृत प्रणाली इसलिये आवश्यक है क्योंकि संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति सामूहिक प्रयास से ही सम्भव है और इस प्रयास के लिये आवश्यक है कि संगठन में एक बेहतर संदेशवाहन तंत्र विकसित स्वरूप में हो और तभी संगठन एकीकृत प्रणाली के रूप में कार्य कर सकेंगे और निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त कर सकेंगें।

साधन

संगठन का एक साधन के रूप में सफल प्रयोग तभी सम्भव होगा जबकि संगठन स्वय में सुव्यवस्थित, सुगठित एवं कार्यक्षम हो क्योंकि जब तक साधन श्रेष्ठ न हो और साधनों का प्रयोग श्रेष्ठतम ढंग से न किया जाय तब तक वांछित लक्ष्यों की प्राप्ति सम्भव नहीं है। संगठन को साधन के रूप में प्रयोग कर ही हम अपने सामाजिक, आर्थिक धार्मिक, राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति क़रते हैं।

प्रबन्धकीय व्यवस्था

संगठन के संसाधनों का समन्वय, संगठन का एक साधन के रूप में प्रयोग या संगठन को एकीकृत प्रणाली के रूप में प्रयोग करना आदि एक कुशल प्रबन्धन द्वारा ही सम्भव है इसीलिए संगठन को एक महत्वपूर्ण प्रबन्धकीय व्यवस्था माना जाता है जो निहित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सतत रूप से कार्यरत रहती है।

प्रक्रिया

संगठन एक प्रक्रिया के रूप में निरन्तर गतिशील रहता है। संगठन एक निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति करता हैं। संगठन के सभी कार्य एक

चरणबद्ध तरीके से तथा सुनियोजित होते हैं। संगठन एक प्रक्रिया के रूप में भी विकसित किये जाते हैं।

1.5 संगठन की प्रक्रिया

संगठन की प्रक्रिया से आशय, संगठन द्वारा उठाये गये उन आवश्यक कदमों से है जिससे संगठन प्रभावशाली ढंग से गतिशील रह सके। इसके लिए निम्नलिखित बिन्दु विचारणीय हैं।

1) **क्रियाओं का वर्गीकरण** – प्रत्येक संगठन से क्रियाओं का उचित वर्गीकरण किया जाना चाहिए। संगठन के प्रत्येक विभाग, विभाग के उपविभागों और उपविभागों से कार्यरत व्यक्तियों में कार्यों का स्पष्ट रूप से वर्गीकरण किया जाना चाहिए। क्रियाओं के वर्गीकरण में यह सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि कार्यभार का वितरण समान रूप से तथा व्यक्ति या विभाग को अतिभार की अनुभूति। इससे संगठन के कार्य संचालन में संतुलन और समता बनी रहती है। संगठन के सफलतापूर्वक कार्य संचालन के लिये यह आवश्यक है कि विभिन्न विभागों के कार्यभार का समय समय पर मूल्यांकन करते रहना चाहिये।

2) **व्यक्तियो में कार्य आवंटन** – कार्मिकों में कार्य आवंटन के समय सतर्कता बरतनी चाहिए। काम का वितरण उचित आधारों पर किया जाना चाहिए। इसके लिए सम्बन्धित कार्मिक की योग्यता, अनुभव, कार्यचातुर्य आदि को ध्यान में रखा जा सकता है। कार्य के उचित आवंटन से व्यक्ति विशेष को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है तथा इससे कार्य के प्रति व्यक्ति पर्याप्त रूप से सजग रहते हैं।

3) **निश्चितता** – एक संगठन का गठन एक निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये किया जाता है, संगठन एक निश्चित क्रियाविधि अपनाते हैं, एक निश्चित पथ का चयन करते हैं, निश्चित संसाधनों का प्रयोग करते हैं एवं एक निश्चित उद्देश्यों को प्राप्त करते हैं,। जब निश्चितता का अभाव हो जाता है तो असमंजस की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और लक्ष्यों को प्राप्त करना दुरूह हो जाता हैं ।

4) सत्ता का हस्तान्तरण – किसी संगठन में कार्यों का आवंटन एवं उत्तरदायित्व के निर्धारण के साथ साथ यह परम आवश्यक है कि सम्बन्धित व्यक्ति को आवश्यक अधिकार दिये जायें जिससे वह निर्दिष्ट कार्य कर सकें। एक व्यक्ति सभी कार्य को सम्पन्न नहीं कर सकता है। करने/कराने हेतु आवश्यक अधिकार भी दिये जायें अर्थात सत्ता का समुचित हस्तान्तरण भी किया जाय।

5) कुशलता – संगठन में उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग कुशलता पूर्वक एवं सर्वोत्तम ढंग से किया जाना चाहिये जिससे संसाधनों की अधिकतम क्षमता का दोहन किया जा सके। इसके लिये उदारवादी कार्मिक नीति होनी चाहिए जिसमें ईर्ष्या, द्वेष संघर्ष, भेद भाव, दबाव एवं शोषणवादी प्रवृत्ति का सर्वथा अभाव होना चाहिए। जिसके परिणाम स्वरूप संगठन के सभी व्यक्ति तन्मय होकर सफलतापूर्वक कार्य करते हैं।

6) समन्वय एवं संतुलन – संगठन के उद्देश्यों एवं कार्यों में समन्वय होना चाहिए। संगठन संरचना का कलेवर सुस्पष्ट होने पर ही बेहतर ढंग से समन्वय किया जा सकता है। संगठन के प्रत्येक कार्य, विभाग, व्यक्तियों में परस्पर समन्वय एवं संतुलन होना चाहिए। जिससे संसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग सम्भव हो सके तथा श्रेष्ठतम परिणाम प्राप्त किये जा सकें।

7) लोचपूर्णता – संगठन के कलेवर का विकास एवं विस्तार सुदृढ़ आधारों पर किया जाना चाहिये जो दीर्घकाल तक गतिशील रह सके परन्तु आज के परिवर्तनशील युग में इस बात की भी आवश्यकता है कि इसके कलेवर में लोचपूर्णता का गुण भी अवश्य होनी चाहिये जिससे आवश्यकता पड़ने पर समुचित परिवर्तन कियेजा सकें। इन परिवर्तनों के कारण संगठन के कार्यों में किसी प्रकार अस्त व्यस्त नहीं होने चाहिए।

1.6 सारांश

संगठन मानव जीवन के विकास ही नहीं अपितु व्यवसाय के विकास के लिए आवश्यक होता है। हम संसाधनों की उपलब्धता एवं लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए संगठन संरचना का चयन करते हैं, जिससे संसाधनों की समुचित दोहन एवं लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सके। संगठन को व्यक्तियों के समूह के

रूप में व्यक्तियों के परस्पर सम्बन्धा का संरचना के रूप में एवं एक प्रक्रिया के रूप में जाना जाता है। इस प्रकार संगठन भौतिक एवं मानवीय संसाधनों का समूह है जो पारम्परिक सम्बन्धों द्वारा सम्बन्धित होते हैं जिसमें अधिकारों एवं उत्तरदायित्वों का समुचित निर्धारण होता है एवं पूर्व निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु लोग सामूहिक रूप से प्रयासरत रहते हैं।संगठन की इस महत्ता को ध्यान में रखते हुये उसके सृजन के समय क्रियाओं का समुचित वर्गीकरण व्यक्तियों में कार्यों का सही सही आवंटन, लक्ष्यों एवं कार्यों की निश्चितता समता का समुचित हस्तान्तरण, कलेवर में लोचपूर्णता तथा समन्वय एवं सन्तुलन के साथ साथ कुशलता आदि को ध्यान में रखा जाना अपरिहार्य होता है।

1.7 बहु विकल्पीय प्रश्न

1. "संगठन एक विधिसंगत एवं सामिप्राय भूमिकाओं अथवा अवस्थितियों की संरचना है । यह कथन है –

1) डर्विक 2) किम्बाल एवं किम्बाल 3) थियोहेमन 4) कुष्टज एवं ओडोनेल

2) संगठन एक आशय है –

1) व्यक्तियों का समूह 2) व्यक्तियों की परस्पर संबंधों की संरचना

3) प्रक्रिया 4) उपर्युक्त सभी।

3) संगठन अंशतः संरचनात्मक सम्बन्धों का प्रश्न है तथा अंशतः मानवीय संबंधों का मामला है। यह कथन है –

1) निओल तथा ब्राण्टन 2) हर्बर्ट साइमन

3) एलेन 4) नार्थ कॉट

4) संगठन से अवश्य होना चाहिए।

1) क्रियाओं का वर्गीकरण 2) लोचपूर्णता

3) सत्ता का हस्तान्तरण 4) उपर्युक्त सभी

1.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. संगठन की परिभाषा दीजिये तथा इसकी विशेषताओं का समझाइये।

2. संगठन के निर्माण के समय क्या आवश्यक कदम उठाये जाने चाहिये।

3. संगठन का आशय स्पष्ट कीजिए।

4. आपके विचार से आज के व्यवसायिक संगठन में क्या विशेषतायें पायी जानी चाहिये।

उत्तर (1) 4 (2) 4 (3) 1 (4) 4

1.9 बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर

1. संगठन का अर्थ परिभाषायें बताते हुये विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

2. संगठन का निर्माण, संगठन निर्माण के उद्देश्य को ध्यान में रखकर किया जाता है। इसलिये किसी भी संगठन के निर्माण से पूर्व कुछ आवश्यक कदम उठाने होते हैं। जिनका वर्णन करना है।

3. संगठन का अर्थ एवं परिभाषायें लिखिये।

4. वर्तमान समय एक व्यावसायिक संगठन में क्या क्या विशेषताएं (गुण) होनी चाहिए उनका वर्णन करना है।

इकाई –2 संगठन संरचना

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 संगठन संरचना का अर्थ एवं परिभाषाएँ

2.4 संगठन संरचना का निर्धारण

2.5 संगठन संरचना को प्रभावित करने वाले घटक

2.6 सारांश

2.7 बहुविकल्पीय प्रश्न

2.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.9 बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर

2.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

- संगठन संरचना के अर्थ की व्याख्या कर पायेंगे,
- संगठन संरचना का निर्धारण करने वाले तत्वों का वर्णन कर सकेंगे,,
- संगठन संरचना को प्रभावित करने वाले घटकों का विश्लेषण कर सकेंगे।

2.2 प्रस्तावना

किसी भी संगठन की संरचना, उसके गठन के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर की जाती है। एक उपयुक्त संगठन संरचना ही, संगठन के संसाधनों में अच्छा समन्वय कर सकती है और अनुकूलतम परिणामों को प्राप्त करने में सहायक होती है। इसीलिये किसी भी संगठन संरचना का निर्माण सावधानी पूर्वक, गठन के लक्ष्यों को ध्यान में रखकर ही किया जाना चाहिए।

परिभाषायें

कूण्टाज एवं ओंडोनेल के अनुसार – "संगठन संरचना के अन्तर्गत

विभिन्न व्यक्तियों की उपक्रम में उद्देश्यपूर्ण भूमिका की स्थापना की जाती है। इसके लिए उपक्रम की समस्त क्रियाओं एवं विभागों के उद्देश्यों के बीच समन्वय स्थापित किया जाता है। निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु, क्रियाओं का वर्गीकरण किया जाता है एवं उनकी प्राप्ति हेतु प्रबंधकों को सुपुर्द कर दिया जाता है। प्रबंधतंत्र अधिकारों का प्रत्यायोजन करके, विभिन्न विभागों की क्रियाओं में समन्वय स्थापित करने के लिए औपचारिक रूप से शीर्ष एवं समतलीय प्रबंध स्तरों की स्थापना करते हैं। इसे संगठन संरचना के अतिरिक्त प्रंबंधकीय अधिकारों का सम्बन्ध भी कहा जाता है।

2.3 संगठन संरचना का अर्थ एवं परिभाषा

संगठन संरचना से आशय सम्पूर्ण संगठन में परस्पर सम्बन्धों एवं कार्यों की व्यवस्था से हैं । संगठन की संरचना के आधार पर ही संगठन की व्यवस्था का समग्र रूप से निर्धारण किया जाता है। किसी संगठन की सम्पूर्ण संगठनात्मक व्यवस्था वे कार्यरत कर्मचारियों के सम्बन्धों को प्रदर्शित करने वाला कलेवर ही संगठन संरचना कहलाता है। संगठन संरचना संस्था का एक ऐसा रूप प्रस्तुत करता है जिसके आधार पर संगठन के प्रशासनिक सम्बन्ध स्थापित एवं विकसित किये जाते हैं। इस सम्बन्ध में विद्वानों द्वारा दिये गये कुछ प्रमुख विचार निम्नलिखित हैं।

विलियम एच. न्यूमैन के अनुसार, "संगठन संरचना किसी प्रतिष्ठान की सम्पूर्ण संगठनात्मक व्यवस्था का वर्णन करती है।

फ्रेड लूथन्स के अनुसार, "संगठन संरचना, संगठनात्मक व्यवहार के लिए कंकाली ढांचे को प्रकट करता है।

हर्ले के अनुसार, "संगठन संरचना एक फर्म की विभिन्न स्थितियों के बीच एवं विभिन्न स्थितियों के बीच एवं विभिन्न स्थितियों को धारित व्यक्तियों के बीच सम्बन्धों का ढांचा है।

एटबर्स हेनरी एच. के अनुसार, "संगठन संरचना वह कलेवर है जिसके अन्तर्गत प्रबन्धकीय एवं कार्यात्मक कार्य सम्पन्न किये जाते हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन एवं विश्लेषण के आधार पर हम कह

सकते हैं कि संगठन संरचना, संगठन की एक सम्पूर्ण व्यवस्था है जो व्यक्तियों के बीच ऐसे सम्बन्धों को व्यक्त करती है। जिसके अन्तर्गत वे संगठन के क्रियाकलापों को करते हैं। वह अधिकार एवं उत्तरदायित्वों के केन्द्रों एवं प्रवाह को भी प्रदर्शित करते हैं। जिसके अनुरूप संस्था में सम्प्रेषण व्यवस्था प्रचलित रहती है एवं विभिन्न कार्यों का निष्पादन किया जाता है।

2.4 संगठन संरचना का निर्धारण

संगठन संरचना का निर्धारण करने से पूर्व प्रबंधकों को उद्देश्यों का निर्धारण करना चाहिए जिसकी पूर्ति संगठन का निर्माण किया जा रहा है क्योयंकि उद्देश्यों के आधार पर ही यह निर्धारित होगा कि कौन सी संरचना अमुक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु उपयुक्त है। संगठन संरचना का सृजन करने के लिए प्रबंधकों को सावधानीपूर्वक प्रयास करना पड़ता है इन प्रयासों को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त किया जा सकता है।

क्रिया विश्लेषण

संगठन के कार्य के आधार पर ही उनकी क्रियाओं का निर्धारण किया जाता है। उत्पादन संगठन, वितरण संगठन, सेवा संगठन, व्यापार संगठन, प्रशासनिक संगठन, अनुसंधान संगठन, आदि संगठनों में किन्हीं सुनिश्चित गतिविधियों को अधिक प्राथमिकता दी जाती है। उत्पादन संगठन में ऐसी संगठन संरचना पर बल दिया जाता है जिससे उत्पादन के साधनों का अनुकूलतम प्रयोग किया जा सके और न्यूनतम लागत पर अधिकतम उत्पान सम्भव हो सके। सेवा संगठन में, संगठन संरचना इस प्रकार व्यवस्थित की जाती है जिससे न्यूनतम लागत पर ग्राहकों को बेहतर सेवा प्रदान की जा सके, यदि ग्राहक हो काई शिकायत हो तो उसका त्वरित निपटान किया जा सके। ग्राहको को जो सेवायें प्रदान की जा रही हैं उससे उन्हें आत्म संतुष्टि पहुॅचनी चाहिए अर्थात् ग्राहक सेवा से पूर्णतः संतुष्ट होना चाहिए।

संगठन संरचना के लिए प्रबंधकों को उद्दश्यों के निर्धारण के पश्चात् क्रियाओं का विश्लेषण करना चाहिए। जिन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु संगठन का निर्माण किया जा रहा है उनमें कौन कौन सी क्रियायें सम्मिलित होंगी, इनका विश्लेषण करना आवश्यक होता है। यदि निर्माणी संगठन है तो उसमें सामग्री

क्रय हेतु स्रोतों का चयन, सामग्री क्रय उत्पादन विधियों का प्रयोग, उत्पादन, विपणन, सेविवर्गीय लेखांकन कर्य, शोध एवं विकास वित्तीय कार्य आदि क्रियाएं करनी पड़ती हैं। इसके लिए सम्पूर्ण क्रियाओं का व्यापक विश्लेषण किया जाता है। इन क्रियाओं की एक सूची तैयार की जाती है। इन क्रियाओं का वर्गीकरण कर समूहीकरण किया जाता है। इसके पश्चात विभागीयकरण के आधार पर कार्य उपयुक्त एवं दक्ष व्यक्तियों को सौंप दिया जाता है। क्रिया विश्लेषण ही विभागीयकरण की आधारशिला है। यह नवीन एवं विद्यमान दोनों प्रकार की संस्थाओं के लिए अपरिहार्य है। इससे भ्रामक स्थितियों का अन्त हो जाता है एवं अपव्यय में कमी आती है।

निर्णय विश्लेषण

क्रियाओं के विश्लेषण के पश्चात अगला चरण निर्णयों के विश्लेषण से सम्बन्धित है। इसमें इस बात का ध्यान रखा जाता है कि संगठन को कौन कौन से निर्णय लेने हैं या संगठन को किस सम्बंध में निर्णय लेने हैं। किसी भी संगठन संरचना के निर्धारण के लिये यह आवश्यक है कि संगठन द्वारा लिये जाने वाले भावी निर्णयों पर भी विचार कर लिया जाय। संगठन के निर्णय उनकी क्रियाओं पर ही आधारित होते हैं अतः निर्णय विश्लेषण में निम्नलिखित बातों पर विचार किया जाता है :–

- संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति सम्बन्धी निर्णय
- निर्णयों की प्रकृति सम्बन्धी निर्णय
- प्रबन्ध के विभिन्न स्तरों से सम्बन्धित निर्णय
- निर्णयों से प्रभावित होने वाली क्रियाओं सम्बन्धी निर्णय
- विभिन्न निर्णयों में प्रबन्धकों की भागीदारी सम्बन्धी निर्णय
- निर्णयों से प्रभावित कार्मिक सम्बन्धी निर्णय
- निर्णय सम्बन्धी सूचनाओं के सम्प्रेषण सम्बन्धी निर्णय आदि।

इस प्रकार निर्णय सम्बन्धी उपर्युक्त तथ्यों पर विचार के पश्चात संगठन संरचना के निर्माण सम्बन्धी निर्णय लेने में सरलता होती है। निर्णयों की प्रकृति एवं आवश्यकता के अनुरूप ही सम्पूर्ण संगठन में अधिकार सत्ता

का केन्द्रीकरण, विकेन्द्रीकरण तथा भारापर्ण एवं उत्तरदायित्वों का भली भॉति निर्धारण किया जा सकता है। अतः संगठन संरचना के निर्माण के समय उसके निर्णय विश्लेषण से प्राप्त परिणाम को ध्यान में रखकर ही निर्माण किया जाना चाहिए।

सम्बन्ध विश्लेषण

इस चरण के अन्तर्गत अन्तर वैयक्तिक सम्बन्धों का विश्लेषण किया जाता है। जिसमें मुख्य रूप से निम्नलिखित बातों पर विचार किया जाता है:–

1) क्रिया विशेष का प्रभारी प्रबन्धक कौन है?

2) क्रिया विशेष के प्रभारी प्रबन्धक किन प्रबन्धकों के अधीनस्थ है?

3) अन्य क्रियाओं के प्रभारी प्रबंधकों से किस प्रकार सहयोग प्रदान किया जाय?

4) प्रबन्ध एक दूसरे तक किस सीमा तक सहयोग दे सकते हैं?

इस प्रकार प्रत्येक प्रबंधकों को एक–दूसरे से सम्बन्ध रखने पड़ते हैं।इसलिए संगठन में ऊर्ध्व, क्षैतिज, उदग्र केन्द्रीय आदि सम्बन्धों को भी निध ार्रित करना पड़ताहै। इन्हीं सम्बन्धों के आधार पर संप्रेषण व्यवस्था का निध ार्रण होता है, संगठन से क्रियाओं को परस्पर समन्वित एवं निर्देशित किया जाता है।

प्रत्येक संगठन में अलग अलग क्रियाओं के लिए अलग अलग विभाग (उत्पादन क्रिया, विपणन क्रिया वित्तीयन क्रिया) बने हुये हैं और प्रत्येक विभाग में एक शीर्ष अधिकारी (प्रबंधक) होता है। इन प्रबंधकों के बीच परस्पर सूचनाओं का आदान प्रदान होता रहता है। सभी प्रबंधकों और शीर्ष प्रबंधकों के बीच संप्रेषण व्यवस्था जितनी अच्छी होगी, विभागों के कार्यो में और समन्वय और नियंत्रण उतना ही अच्छा होगा। कर्ता क्रिया कारण जितने सुपरिभाषित होंगे अर्थात परस्पर सम्बन्ध जितने अधिक स्पष्ट होंगे, लक्ष्यों को प्राप्त करना उतना ही सहज होगा। समय एवं संसाधनों का सदुपयोग होगा और संगठन विकास की राह पर अग्रसर होगा।

2.5 संगठन संरचना को प्रभावित करने वाले घटक

संगठन संरचना का निर्माण करना प्रबन्धकों का महत्वपूर्ण कर्तव्य है। उपयुक्त संगठन संरचना के निर्माण से ही उद्देश्यों की प्राप्ति सम्भव है जो संगठन को लक्ष्य प्राप्ति कराती परन्तु यदि संगठन संरचना दोषपूर्ण हो तो यह संगठन को विनाश की ओर ले जाती है।अतः संगठन संरचना को कई तत्व प्रभावित करते हैं जिनमें से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं :–

संगठन के उद्देश्य – संगठन संरचना के निर्माण से पूर्व यह प्रबंधकों को स्पष्ट होना चाहिए कि किन उद्योगों की प्राप्ति हेतु संगठन का निर्माण किया जा रहा है।वस्तुतः संगठन स्वयं में कोई उद्देश्य नहीं होता, वह तो संस्था के उद्देश्यों को प्राप्त करने का एक साधन मात्र है। इसलिये संगठन संरचना के चयन से पूर्व उद्देश्यों को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

संगठन का आकार – संगठन का आकार भी संरचना को प्रभावित करता है।उद्देश्यों एवं संसाधनों की उपलब्धता के आधार पर संगठन संरचना का आकार निश्चित किया जाता है। छोटा संगठन होने पर विकेन्द्रीकृत व्यवस्था अपनायी जा सकती है। संगठन बड़ा होने पर केन्द्रीयकृत व्यवस्था ही श्रेयस्कर होती है।

संगठन के कार्य – प्रत्येक संगठन की स्थापना किसी विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति के लिए की जाती है। इसके लिए विशिष्ट प्रकार के कार्यों को सम्पन्न किया जाता है। कार्यों की प्रकृति भी संगठन संरचना को प्रभावित करती है। निर्माणी संस्था होने पर संगठन संरचना, एक विनियोग संस्था की संगठन संरचना से सर्वथा भिन्न होगी। सेवा प्रदाता संगठन, तथा वस्तु की संरचनाओं में परस्पर भिन्नता पायी जाती है। इस प्रकार संगठन के कार्य भी संगठन संरचना को प्रभावित करते हैं।

बाजार की दशा – बाजार की दशा भी संगठन संरचना के निर्धारण में सहायक होती है। प्रतिस्पर्धा कितनी है किस दिशा में है उसका वेग कितना है? आदि संगठन संरचना को विस्तृत संकुचित करती है। उपभोक्ता बाजार है या उत्पादक बाजार बाजार किस जगह स्थित है? बाजार की संरचना कैसी है इन पर भी विचार करना पड़ता है। किसी भी व्यावसायिक संगठन को

RIL-080

बाजार की दशा बहुत प्रभावित करती है क्योंकि एक संगठन को बाजार में ही कार्य करना है। बाजार में ही संगठन का विकास होता है और बाजार में ही संगठन का समापन होता है। बाजार की सम्भावनायें ही संगठन को विकास के लिये प्रेरित करती हैं इसीलिये बाजार की दशा संगठन संरचना के निध ारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

प्रबंधकीय व्यूह रचना

संगठन संरचना ऐसी होनी चाहिए जो प्रबंधकीय व्यूह रचना के अनुकूल हो जिससे संगठन सही दिशा में एवं विकास के पथ पर गतिशील हो सके। इसलिए प्रबंधकीय व्यूह रचना संगठन संरचना को प्रभावित करती है। प्रत्येक संगठन की उन्नति या अवनति सकल प्रबंधकीय व्यूह रचना पर आधारित होती है। प्रबंधकीय व्यूह रचना की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि संगठन संरचना, व्यूह रचना में सहायक हो न कि रणनीति के क्रियान्वयन में अवरोध उत्पन्न करें। प्रबंधकीय रणनीति में समय पर परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन भी करना पड़ता है। इन तात्कालिक परिवर्तनों को अपनाने में भी संगठन संरचना सहायक होनी चाहिए।

वातावरण

देश के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, वातावरण भी संगठन को प्रभावित करता है। प्रभावी संगठन संरचना वही होती है जो व्यावसायिक वातावरण के अनुकूल हो एवं विकास के पथ पर बढ़ने में सहायक हो। वातावरण में परिवर्तन के अनुसार ही प्रबंधकीय रणनीतियों में भी परिवर्तन होते रहते हैं । वातावरण ही संगठन की गतिशीलता को एक दिशा देते हैं। अनुकूल वातावरण में संगठन का विकास सहज होता है जबकि प्रतिकूल वातावरण में संगठन की विकास सहज नहीं होता है। इसीलिए संगठन संरचना ऐसी होनी चाहिए कि संगठन प्रतिकूल वातावरण में निर्बाध रूप से गतिशील रह सके।

व्यापारिक क्षेत्र

व्यवसाय का क्षेत्र भी संगठन संरचना को प्रभावित करता है। व्यवसाय स्थानीय

क्षेत्रीय प्रादेशिक, राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का हो सकता है इसलिए यह अति आवश्यक है कि व्यापारिक क्ष्ज्ञेत्र को ध्यान में रखते हुए ही संगठन संरचना को अपनाया जाय।

कर्मचारियों का मनोविज्ञान

कर्मचारियों की मनोदशा की संगठन संरचना को प्रभावित करती है। यदि कर्मचारियों की सामाजिक, आर्थिक, मानवीय आवश्यकताओं की संतुष्टि होती रहती है और उनमें परस्पर आदर, अपनत्व, स्वामिभक्ति तथा सहयोग की भावना जाग्रत रहती है तो यह संगठन के लिए लाभदायक होगी और यदि कर्मचारी असंतुष्ट होंगे तो वह संगठन को भी कुप्रभावित करेंगे।

अन्य घटक

संगठन संरचना को प्रभावित करने वाले अन्य घटकों में बाजार का प्रकार, प्रथाएं, परम्पराएं, संगठन की संचालन क्रियायें, नियंत्रण का विस्तार, पद–समता प्रबंधकों की योग्यता, प्रबंधकीय कार्य, विभागीकरण, विकास की दर आदि प्रमुख हैं।

2.6 सारांश

संगठन संरचना प्रबंध की कार्यकुशलता का मुख्य साधन है। उपयुक्त संगठन संरचना जहॉ संगठन को विकास के पथ पर ले जाती है वहीं अनुप्रयुक्त संगठन संरचना संस्था को विनाश की ओर ले जाती है। इसीलिए किसी भी संगठन की संरचना उसके विकास में महती भूमिका निभाती है। संगठन संरचना संस्था की सम्पूर्ण व्यवस्था है जो व्यक्तियों के मध्य परस्पर सम्बन्धों एवं क्रियाकलापों को व्यक्त करती है, अधिकार एवं दायित्वों के केन्द्रों एवं प्रवाह को प्रदर्शित करती है जिससे संस्था के कार्य कुशलतापूर्वक किये जा सकें। संगठन संरचना के निर्धारण में निर्धारित उद्देश्यों के आधार पर क्रिया विश्लेषण, निर्णय विश्लेषण एवं सम्बन्ध विश्लेषण किया जाता है।संगठन संरचना को अनेकों घटक प्रभावित करते हैं जिनमें प्रमुख हैं – संगठन के उद्देश्य,आकार, प्रकार, कार्य, क्रियाकलाप, व्यूहरचना, नियंत्रण का विस्तार, कार्मिकों की मनोदशा, संचालकीय क्रियाएं, विभागीकरण,

प्रतिस्पर्द्धात्मक स्थिति, व्यापारिक क्षेत्र आदि। ये सभी घटक संगठन संरचना के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

2.7 बहुविकल्पीय प्रश्न

1. संगठन संरचना वह कलेवर है जिसके अन्तर्गत प्रबंधकीय एवं कार्यात्मक कार्य सम्पन्न किये जाते हैं। यह कथन है –

   1) हर्ले 2) एटबर्स हेनरी एच. 3) लूथान्स एंज उर्विक 4) उर्विक

2) संगठन संरचना के निर्धारणमें सहायक है –

   1) क्रिया विश्लेषण 2) निर्णय विश्लेषण

   3) सम्बन्ध विश्लेषण 4) उपरोक्त सभी

3) संगठन संरचना को प्रभावित करते हैं –

   1) संगठन का आकार 2) वातावरण

   3) विकास की दर 4) उपरोक्त सभी

2.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. संगठन संरचना से आप क्या समझते हैं?
2. संगठन को प्रभावित करने वाले घटकों की व्याख्या कीजिए?
3. संगठन संरचना का निर्धारण आप कैसे करेंगे?

उत्तर – 1) 2 2) 4 3) 4

2.9 स्व–परक प्रश्नों के उत्तर

1. संगठन की संरचना के बारे में बताना है अर्थात इसके कौन कौन से अवयव हैं?
2. ऐसे घटकों का उल्लेख करना है जो संगठन को प्रभावित करते हैं।
3. एक संगठन संरचना का निर्धारण किस प्रकार करना है इसके बारे में बताना है।

इकाई –3 विभागीकरण

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 विभागीकरण का अर्थ एवं परिभाषाएं

3.4 आवश्यकता एवं महत्व

3.5 प्रबंध का विस्तार

3.6 प्रबंध के विस्तार के निर्णायक घटक

3.7 सारांश

3.8 बहुविकल्पीय प्रश्न

3.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.10 बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर

3.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

- विभागीकरण का आशय का वर्णन कर पायेंगे,
- विभागीकरण की आवश्यकता एवं महत्व की विवेचना कर पायेंगे,
- प्रबन्ध का विस्तार का अर्थ का वर्णन कर सकेंगे,
- प्रबंध के विस्तार के निर्णायक घटक का वर्णन कर सकेंगे।

3.2 प्रस्तावना

किसी भी व्यवसाय में सफलता के लिये यह आवश्यक है कि वह संगठन द्वारा संचालित हो। संगठन के कई प्रारूप पाये जाते हैं। संगठन के प्रारूप के चयन, व्यवसाय के उद्देश्य, व्यवसाय के उपलब्ध संसाधनों एवं संसाधनों एवं संसाधनों के कुशल उपयोग में सक्षमता के आधार पर संगठन के प्रारूप का चयन किया जाता है। संगठन के प्रारूप से आशय संगठनात्मक कलेवर से है। विभागीकरण संगठन का एक प्रारूप है। किसी भी व्यवसाय के प्रारूप का निर्धारण करने के लिए उसके उद्देश्यों को ध्यान में रखकर

किया जाता है। कार्य को सुनियोजित एवं व्यवस्थित ढंग से करने के लिए संगठन के बिभागीकरण प्रारूप को अपनाया जाता है।

संगठन ने जिस भी व्यवसाय को अपनाया हुआ है उसी के अनुसार उसका विभागीकरण किया जाता है। निर्माणी व्यवसाय है तो निर्माण व्यवसाय के अनुरूप विभागीकरण किया जायगा । यदि सेवा व्यवसाय है तो सेवा व्यवसाय के अनुरूप विभागीकरण किया जाता है। इस प्रकार कार्यों के विभागों एवं उपविभागों में विभाजन से कार्य स्पष्टतः परिभाषित हो जाते हैं, कार्यों का निष्पादन कुशलतापूर्वक होता है तथा कार्य के लिये विभाग, उपविभाग या व्यक्तियों को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

3.3 विभागीकरण का अर्थ एवं परिभाषायें

किसी व्यावसायिक संगठन को विभिन्न विभागों व उप–विभागों में विभक्त करना ही विभागीकरण कहलाता है। किसी निर्माणी संस्था में पाये जाने वाला क्रय विभाग, उत्पादन विभाग, वित्त विभाग, विक्रय विभाग, उत्पादन विभाग, वित्त विभाग, विक्रय विभाग, शोध एवं विकास विभाग, से विवर्गीय विभागीकरण ही है। व्यवसाय की प्रकृति एवं आकार को ध्यान में रखते हुए विभागीय प्रबंधक, विभागों को उप–विभागों में विभक्त कर सकते हैं। विभागों को जो कार्य सौंपे जाते हैं उसके लिए विभागाध्यक्ष ही उत्तरदायी होता है। किसी भी संगठन में विभागीकरण लागू करने का मूल उद्देश्य विशिष्टीकरण के लाभों को प्राप्त करना तथा संगठन की संचालकीय कार्यकुशलता में वृद्धि करना है। किसी भी संगठन के विकास के साथ साथ उसके विभागों और उपविभागों की संख्या भी बढ़ती जाती है। विभागीकरण के सम्बन्ध में विद्वानों द्वारा दिये गये कुछ प्रमुख विचार निम्नलिखित हैं :–

कूष्टज एवं ओडोनेल के अनुसार "विभागीकरण एक विशाल एकात्मक कार्यात्मक संगठन को छोटी छोटी एवं लोचपूर्ण प्रशासकीय इकाइयों में बांटने की एक प्रक्रिया है।"

विलियम एफ. ग्लूक के अनुसार, "सम्पूर्ण उपक्रम के कार्यों को विभाजित करने अथवा कृत्यों के समूह स्थापित करने को ही विभागीकरण कहते हैं। इसका परिणाम उप–इकाइयों का निर्माण करना है जिन्हें सामान्यतः

विभाग कहा जाता है।"

इस प्रकार विभागीकरण से आशय संगठन की सम्पूर्ण क्रियाओं को विभिन्न भागों में विभक्त करना है। जिससे छोटी छोटी प्रशासनिक इकाइयॉ गठित हो जाती हैं। जिससे व्यक्तियों एवं क्रियाओं दोनों का समूहीकरण भी हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप विशिष्टीकरण के लाभ प्राप्त होते हैं जो संचालकीय कार्यकुशलता में वृद्धि कर देते हैं। संसाधनों का कुशलतम प्रयोग होता है। क्रियाओं का अच्छा समन्वय होता है। प्रत्येक विभाग उपविभाग और व्यक्तियों के कार्य स्पष्टतः परिभाषित होने से निष्पादन के स्तर अच्छा रहता है। इस प्रकार विभागीकरण के माध्यम से कार्यों का स्पष्टतः विभाजन एवं क्रियाओं का कुशलतम निष्पादन होता है।

3.4 आवश्यकता एवं महत्व

संगठन में विभागीकरण से विभिन्न स्तरों के निर्माण में समन्वय नियंत्रण, संदेशवाहन, निर्देशन की सम्भावनाएं जटिल हो जाती हैं जिससे संगठन में भ्रान्तियों, सघर्षों एवं कार्य विलम्बों कोबल मिलता है, परन्तु इसके सृजन की निम्नलिखित कारणों से आवश्यकता होती है –

1) **प्रबन्धकों की सीमित कार्यक्षमता** – व्यवसायिक संगठन का कार्य बहुत अधिक होता है और एक प्रबंधक की शारीरिक एवं मानसिक कार्यक्षमता उनकी तुलना में सीमित होती है। इसलिए कार्यों को विभिन्न विभागों में विभाजित करना आवश्यक हो जाता है जिससे प्रत्येक विभागाध्यक्ष अपने विभाग के कार्यों के लिए पर्याप्त समय दे सकें। कार्यों का निरीक्षण कर सके, यदि कोई समस्या या शिकायत हो तो विभागीय स्तर पर ही उनका त्वरित निस्तारण सम्भव हो सके।

2) **विशिष्टीकरण** — विभागीकरण, विशिष्टीकरण के लिए आवश्यक होता है।कार्यों की प्रकृति की समानता के आधार पर क्रियाओं का वर्गीकरण कर उन्हें एक विभाग को सौंप दिया जाता है। इसके पश्चात विभाग की आवश्यकता के अनुरूप विशेषज्ञों की नियुक्ति की जाती है। विशेषज्ञों की देखरेख में ही कार्यों का निष्पादन होता है। विशेषज्ञ विभाग में ही उपलब्ध रहने से कार्यों पर नियंत्रण एवं समन्वय सरल हो जाता है।

RIL-080

3.4 आवश्यकता एवं महत्व

संगठन में विभागीकरण से विभिन्न स्तरों के निर्माण में समन्वय नियंत्रण, संदेशवाहन, निर्देशन की समस्याएं जटिल हो जाती हैं जिससे संगठन में भ्रान्तियॉं, संघर्षों एवं कार्य विलम्बों को बल मिलता है, परन्तु इसके सृजन की निम्नलिखित कारणों से आवश्यकता होती है –

1) **प्रबन्धकों की सीमित कार्य क्षमता** – व्यवसायिक संगठन का कार्य बहुत अधिक होता है और एक प्रबंधक की शारीरिक एवं मानसिक कार्यक्षमता उनकी तुलना में सीमित होती है। इसलिए कार्यों को विभिन्न विभागों में विभाजित करना आवश्यक हो जाता है जिससे प्रत्येक विभागाध्यक्ष अपने विभाग के लिए पर्याप्त समय दे सके। कार्यों का निरीक्षण कर सके, यदि कोई समस्या या शिकायत हो तो विभागी स्तर पर ही उनका त्वरित निस्तारण सम्भव हो सके।

2) **विशिष्टीकरण** – विभागीकरण, विशिष्टीकरण के लिए आवश्यक होता है। कार्यों की प्रकृति की समानता के आधार पर क्रियाओं का वर्गीकरण कर उन्हें एक विभाग को सौंप दिया जाता है। इसके पश्चात विभाग की आवश्यकता के अनुरूप विशेषज्ञों की नियुक्ति की जाती है। विशेषज्ञों की देखरेख में ही कार्यों का निष्पादन होता है। विशेषज्ञ विभाग में ही उपलब्ध रहने से कार्यों पर नियंत्रण एवं समन्वय सरल हो जाता है।

3) **कार्यों का श्रेष्ठ निष्पादन** – विभागों का निर्माण, कार्यों की प्रकृति, समानता, निष्पादन की सुविधा, समन्वय, निर्देशन संदेशवाहन, एवं नियंत्रण की सुविधा को ध्यान में रखकर किया जाता है। इस प्रकार निष्पादन की सुविधा को ध्यान में रखते हुए विभागीकरण किया जाता है जिससे कार्यों का श्रेष्ठ निष्पादन होता है।

4) **प्रभावी नियोजन एवं नियंत्रण** – एक प्रबंधक की सीमित कार्यक्षमता होती है इसलिए उसका कार्यक्षेत्र एक सीमित सीमा तक ही बढ़ाया जा सकता है। यदि कार्यभार सीमा से अधिक होगा तो प्रबंधक ठीक प्रकार नियोजन, निर्देशन,निरीक्षण का कार्य सम्पन्न नहीं कर सकता है। इसीलिए समस्त क्रियाओं को निश्चित वर्गों में विभाजित कर निष्पादन के लिए सुयोग्य

प्रबन्धकों को सौंप दिया जाता है। जिससे प्रभावपूर्ण ढंग से नियोजन एवं नियंत्रण सम्भव हो सके।

5) **अधिकारी प्रतिनिधायन** – अधिकारी के प्रतिनिधायन के लिए यह आवश्यक है कि संगठन का उचित रूप से विभागीकरण किया जाय। यदि क्रियाओं का वर्गीकरण विभिन्न विभागों में स्पष्ट रूप से कर दिया गया है तो अधिकारों का प्रतिनिधायन कार्यों का सौंपना और उत्तरदायित्वों का निर्धारण प्रभावपूर्ण ढंग से सम्भव हो सकेगा। इसके परिणामस्वरूप संगठन में कुशल कार्य निष्पादन, प्रभावी निरीक्षण एवं नियंत्रण तीव्र संदेशवाहन, विशिष्टीकरण, विकेन्द्रीयकरण, उत्तरदायित्वों का सुनियोजित निर्धारण, अधिकारों के प्रतिनिध ायन आदि के लिए विभागीकरण की आवश्यकता होती है।

6) **कार्य मूल्यांकन में सरलता** – विभागीकरण से प्रत्येक व्यक्ति के कार्य सुपरिभाषित होते हैं। व्यक्तियों के उत्तरदायित्व भी निश्चित होते हैं इसीलिए प्रत्येक कार्य के लिए व्यक्ति विशेष को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। इससे प्रत्येक व्यक्ति का कार्य मूल्यांकन सरलतापूर्वक किया जा सकता है और जिम्मेदार व्यक्ति को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

7) **कार्यक्षमता में वृद्धि** – विभागीकरण से कार्यक्षमता में वृद्धि हो जाती है। प्रत्येक व्यक्ति के कार्य एवं दायित्व निश्चित होते हैं। बेहतर संदेशवाहन, नियोजन, नियंत्रण, निर्देशन आदि से संगठन की कार्य प्रणाली में व्यापक सुध ार मिल जाता है जिसके परिणाम स्वरूप प्रत्येक व्यक्ति के कार्यक्षमता में वृद्धि हो जाती है।

3.5 प्रबंध का विस्तार

प्रबंध के विस्तार से आशय अधीनस्थ कर्मचारियों की उस निश्चित संख्या को प्रदर्शित करता है जिन्हें एक वरिष्ठ अधिकारी सफलतापूर्वक निर्देशित कर सकता है। इसे प्रबंधकीय दायित्व का विस्तार, नियंत्रण विस्तार, अधिकार विस्तार, पर्यवेक्षण का विस्तार, आदि भी कहा जाता है। प्रबंध के विस्तार का नियम सम्बन्धों के सिद्धान्त पर आधारित हैं जो एक अधिकारी के प्रति उत्तरदायी अधीनस्थों की संख्या को सीमित रखने के सम्बन्ध में सैद्धान्तिक आधार प्रस्तुत करता है।

मैकफारलैण्ड के शब्दों में, "प्रबंध का विस्तार अधीनस्थों की वह संख्या है जिसका एक अधिकारी निरीक्षण करता है।"

डेविस के अनुसार "प्रबंध के विस्तार से आशय एक प्रबंधक कुशलतापूर्वक कितने व्यक्तियों का प्रबंध कर सकता है।" इस संकल्पना का विकास इस आधार पर हुआ है कि किसी अधिकारी के अधीन उतने ही व्यक्ति कार्य करने चाहिए जिन पर वह समुचित नियंत्रण कर सके तथा कार्यों का श्रेष्ठतम निष्पादन हो सके। उर्विक 6 सहायक कर्मचारियों, ब्रेंच 7 अधीनस्थों, हेमिटटन 3 से 6 मस्तिष्कों, हेनरी फेयोल 5 या 6 अधीनस्थों के पक्षधर हैं। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि एक प्रबंधक अधिक से अधिक 6 अधीनस्थों के कार्यों का नियंत्रण कर सकता है। परन्तु यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि अधीनस्थों की संख्या का निर्धारण संगठन की संरचना, उद्देश्यों लक्ष्यों, संसाधनो की उपलब्धता आदि को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए जिससे संसाधनों का अधिकतम उपयोग किया जा सके।

3.6 प्रबंध विस्तार के निर्णायक घटक

प्रबध/के विस्तार को प्रभावित करने वाले प्रमुख घटक निम्नलिखित हैं:–

1) **कार्य की प्रकृति** – कार्य की प्रकृति,प्रबंध के विस्तार को प्रभावित करती है यदि कार्य नैत्यक प्रकृति का है तो अधीनस्थों की संख्या अधिक होगी। यदि कार्यों में जटिलता व भिन्नता है तो अधीनस्थों की संख्या कम होनी चाहिए।

2) अधीनस्थों की योग्यता – अधीनस्थों की योग्यता एवं क्षमता भी इनकी संख्या के निर्धारण को प्रभावित करती है। यदि अधीनस्थ प्रशिक्षित व अनुभवी है तो सामान्य नियंत्रण ही पर्याप्त होगा जिस कारण विस्तार क्षेत्र अधिक हो सकता है परन्तु यदि अधीनस्थ अशिक्षित, अकुशल है तो विस्तार का क्षेत्र संकुचित ही ठीक होगा।

3) **प्रबंधकों की योग्यता** – प्रबंधक योग्य होने पर अधिक अधीनस्थों पर नियंत्रण रख सकते हैं अर्थात विस्तार अधिक होगा यदि पर्याप्त प्रशिक्षित

नहीं है तो विस्तार कम होगा।

4) **नियंत्रण की पद्धति** – नियंत्रण की पद्धति व्यक्तिगत अवलोकन पर आधारित है तो नियंत्रण का विस्तार कम होना चाहिए। यदि नियन्त्रण की अव्यक्तिगत तकनीक को अपनाया गया है तो विस्तार अधिक हो सकता है।

5) **समय की उपलब्धता** – शीर्ष प्रबंध के पास पर्यवेक्षण के लिये कम समय होता है इसलिए शीर्ष स्तर पर विस्तार कम होना चाहिए जबकि निम्नस्तरीय प्रबन्धन में पर्यवेक्षण का पर्याप्त समय होता है अतः निम्न स्तर पर विस्तार अधिक हो सकता हैं।

6) **विशेषज्ञों की सहायता** – यदि संगठन में प्रबंध के विभिन्न स्तरों पर विशेषज्ञों से परामर्श लिया जाता है तो विस्तार अधिक रखा जा सकता है।

7) **सम्प्रेषण की तकनीक** – कुशल संप्रेषण की दशा में प्रत्यक्ष सम्पर्क की आवश्यकता कम पड़ती है। यदि आधुनिक संप्रेषण साधनों का प्रयोग किया जाता है तो निश्चित रूप से प्रबन्धक का विस्तार अधिक रखा जा सकता है। यदि प्रभावी सम्प्रेषण का अभाव है तो नियंत्रण का विस्तार क्षेत्र सीमित रखना पड़ेगा।

8) **अन्य घटक** – कर्मचारियों में सहयोग की भावना, अधिकारों के प्रत्यायोजन की सीमा, नियोजन बाजार, स्थिति आदि की प्रबंध के विस्तार के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

3.7 सारांश

संगठन के कई प्रारूप पाये जाते हैं उनमें से एक विभागीकरण भी है। विभागीकरण में क्रिया को विभिन्न वर्गों में वर्गीकृत कर दिया जाता है। जिससे विभागों का निर्माण होता है। यही विभाग अपनी सुविधा हेतु उपविभागों में विभाजित हो जाते हैं। प्रबन्धकों की सीमित कार्यक्षमता, श्रेष्ठतम निष्पादन, प्रभावी नियोजन एवं नियंत्रण अधिकार के उचित प्रतिनिधायन, विशिष्टीकरण आदि के लिये विभागीकरण की आवश्यकता पड़ती है । प्रबन्ध के विस्तार से आशय एक अधिकारी के अधीन कार्यरत कर्मचारियों की संख्या से है जिन्हें समुचित रूप से नियंत्रित किया जा सकता हो। कार्य की प्रकृति, समय की उपलब्धता, प्रबंधकों की योग्यता, विशेषज्ञों की सहायता सम्प्रेषण की तकनीक

कर्मचारियों में सहयोग की भावना आदि घटक प्रबंध के विस्तार को निर्धारित करते हैं।

3.8 बहुविकल्पी प्रश्न

1. ग्रेकुनास का सूत्र सम्बन्धित है –

   1) प्रबंध के विस्तार 2) पूर्वानुमान

   3) नियोजन 4) संप्रेषण

2. प्रबंध के विस्तार से आशय अधीनस्थों की अनुकूलतम संख्या से है जिसका प्रबन्धक प्रभावशाली ढंग से प्रबन्ध कर सकें।

   1) नियंत्रण का विस्तार 2) समन्वय

   3) नेतृत्व 4) पर्यवेक्षण

3. प्रश्न 2 में उल्लिखित कथन कहा है।

   1) मैकफारलैण्ड 2) डेविस ने

   3) पीटर ड्रंकर ने 4) ब्रून व कुर्टज

4. हेनरी फेयोल के अनुसार एक प्रबन्धक के अधीन अधीनस्थों की अधिकतम संख्या –

   1) 5 2) 6 3) 7 4) 8

3.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. विभागीकरण से आपका क्या आशय है?
2. विभागीकरण को परिभाषित कीजिए तथा इसकी आवश्यकता एवं महत्व की विवेचना कीजिए।
3. प्रबन्ध के विस्तार से आप क्या समझते हैं?
4. प्रबंध के विस्तार को प्रभावित करने वाले घटकों का उल्लेख कीजिए?

3.10 बहुविकल्पी प्रश्नों के उत्तर

1. विभागीकरण का अर्थ बताना है।

2. विभागीकरण की परिभाषा लिखत हुये उसकी आवश्यकता का वर्णन करना हैं तथा इसके बाद उसके महत्व को भी बताना है।

3. प्रबंध के विस्तार के अर्थ को स्पष्ट करना है।

4. प्रबंध के विस्तार को कौन कौन से घटक प्रभावित करते हैं इसका वर्णन करना है।

इकाई –4 अधिकार सत्ता

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 अधिकार का अर्थ

4.4 अधिकार का महत्व

4.5 अधिकार की सीमाएँ

4.6 अधिकार के केन्द्रीयकरण

4.7 अधिकार का विकेन्द्रीकरण

4.8 सारांश

4.9 बहुविकल्पीय प्रश्न

4.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.11 बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर

4.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

- अधिकार का आशय जान पायेंगे,
- अधिकार का महत्व एवं सीमाओं का वर्णन कर पायेंगे,
- अधिकार का केन्द्रीकरण एवं विकेन्द्रीकरण का विश्लेषण कर सकेंगे,

4.2 प्रस्तावना

सम्पूर्ण प्रबंध प्रक्रिया में अधिकार एवं महत्वपूर्ण घटक है। प्रबन्धक का प्रमुख अधीनस्थों से कार्य कराना है और बिना अधिकार के कार्य निष्पादन की सुनिश्चितता सम्भव नहीं है। जो अधीनस्थ कर्मचारियों की क्रियाओं को संयोजित करके उन्हें गति प्रदान करते हैं प्रबन्धकीय अधिकार के बिना संगठन में अव्यवस्था का ही साम्राज्य होगा। अधिकार एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा क्रियाएं सफलतापूर्वक सम्पन्न होती है और संगठन के पूर्वनिध ार्रित उद्देश्यों की पूर्ति होती है।

अधिकार – अधिकार को शक्ति से भी सम्बोधित किया जाता है। आदेशों का पालन निवेदन करके, अनुनय द्वारा , प्रार्थना द्वारा, स्वीकृति या मंजूरी द्वारा, शक्ति द्वारा, उत्पीड़न द्वारा, प्रतिबन्धों द्वारा, उत्पीड़न द्वारा, आर्थिक व अनार्थिक दण्ड द्वारा आदि विधियों से किया जा सकता है। वर्तमान समय में आदेशों का पालन कराने के लिए निवेदन या प्रार्थना ही अधिक सफल हो रहे हैं। अधिकार से ही अधीनस्थों को प्रभावित किया जा सकता है।

4.3 अधिकार का अर्थ

अधिकार दूसरों को आदेश देने की शक्ति है। यह संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए शक्ति प्राप्तिकर्ता के निर्देशानुसार काम करने अथवा न करने का आदेश है।अधिकार से आशय विशिष्ट स्वत्व, शक्ति अथवा अनुमति से है। प्रबंधकीय आधिकार से तात्पर्य वैधानिक या विधिवत प्राप्त शक्ति या अधिकार से है। यह अधिकार देने या किसी के करने की शक्ति से सम्बन्धित हो सकता है।अधिकार के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने अपने मत व्यक्त किये हैं जिन्हें हम परिभाषायें कह सकते हैं उनमें से कुछ प्रमुख परिभाषायें निम्नलिखित हैं :–

कूण्टज एवं ओडोनेल के अनुसार – अधिकार से तात्पर्य वैधानिक या स्वत्वाधिकार सम्बन्धी शक्ति से होता है।

हेनरी फेयोल के अनुसार, "अधिकार हस्त आदेश देने का अधिकारन है और उसके पालन करवाने की शक्ति है।"

डेविस के अनुसार, "अधिकार सत्ता निर्णय लेने एवं आदेश देने का अधिकार है।"

टेरी के अनुसार, "किसी कार्य को करने , आदेश देने या दूसरों से काम लेने की शक्ति या अधिकार है।"

ऐलन के अनुसार, "भारार्पित कार्यों के निष्पादन को संभव बनाने के लिए सौंपी गई शक्तियों को अधिकार के नाम से सम्बोधित किया जाता है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन एवं विश्लेषण से स्पष्ट है कि अधिकार एक वैधानिक शक्ति है। जिसके बल पर उसे धारण करने वाला

RIL-080

व्यक्ति, अधीनस्थ से कार्य करा सकता ह या उसे कार्य से विरत रख सकता है तथा अनुशासनहीनता की स्थिति उत्पन्न होने पर अधीनस्थ को अपनी अधि ाकार की सीमाओं में दण्डित कर सकता है।

4.4 अधिकार का महत्व

अधिकार प्रबन्ध का एक अस्त्र है जिसके माध्यम से अधीनस्थों से कार्य कराया जाता है। बिना अधिकार के कोई भी व्यक्ति किसी से कार्य नहीं करा सकता है। अधिकारों का महत्व निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट है :–

- प्रत्येक संगठन के संचालन के लिए अधिकार का होना आवश्यक है।
- अधिकार के बल पर ही अधिकारी अधीनस्थ से काम करा सकता है।
- कार्यों के श्रेष्ठतम निष्पादन के लिए अधिकारों का ही भारार्पण किया जाता है।
- अधिकार से निर्णयन कार्य सरल एवं सुगम हो जाता है।
- अधिकारों की प्राप्ति से कार्मिक के मनोबल में वृद्धि होती है।
- अधिकारों की उपस्थिति, उत्तरदायित्व को अपरिहार्य कर देती है।
- अधिकारों से पहलपन की भावना का सृजन होता है।
- अधिकारों के बल पर ही अनुशासनहीनता की स्थिति में अधीनस्थ को दण्डित किया जा सकता है।

4.5 अधिकार की सीमाएँ

संगठन के प्रत्येक स्तर के प्रबंधकों के पास अलग अलग सीमा तक अधिकार होते हैं। शीर्ष प्रबन्ध के पास अधिक तथा मध्य प्रबंधक के पास शीर्ष प्रबन्धक से कम अधिकार होते हैं। इसलिए अधिकारों का प्रयोग करते समय प्रबंधकों द्वारा इसकी सेवाओं को ध्यान में रखना आवश्यक है। अधिकार की कुछ प्रमुख सीमायें निम्नलिखित हैं–

अधिकारी को अपने अधीनस्थ को ऐसा आदेश नहीं देना चाहिए जिसका पालन असम्भव हो जैसे आसमान से तारे तोड़ लाओ।

अधिकार का प्रयोग करते समय सम्बन्धित अन्य व्यक्तियों की प्रक्रियाओं को ध्यान में रखना चाहिए।

प्रबंध को अधीनस्थ को ऐसे आदेश नहीं देना चाहिए जो उसकी सीमा के बाहर हो।

- तकनीकी सीमाओं के परे कार्य हेतु आदेश नहीं देना चाहिए।
- आदेश देते समय आर्थिक सीमाओं को ध्यान में रखना चाहिए।
- प्रबंधकों को आदेश देने से पूर्व पद की सीमाओं को ध्यान में रखना चाहिए।
- कोई भी आदेश संगठन में प्रचलित नियमों के विरूद्ध नहीं होना चाहिए।

प्रबन्धकीय सोपान में ऊपर से नीचे आने पर अधिकारों पर बन्धन बढ़ते जाते हैं।

4.6 अधिकार का केन्द्रीयकरण

अधिकार का भारार्पण न करना केन्द्रीयकरण कहलाता है। केन्द्रीयकरण में कार्य सम्बन्धी समस्त निर्णय सर्वोच्च प्रबन्ध द्वारा लिये जाते हैं अधीनस्थ तो केवल उसका पालन करते हैं। इसमें अधिकार एवं दायित्व शीर्ष प्रबन्धकों के लिए सुरक्षित कर दिये जाते हैं । ऐलन के शब्दों में संगठन के प्रत्येक स्तर पर काम करने वाले व्यक्तियों द्वारा निर्णय न लेकर संगठन में किसी शीर्ष प्रबन्ध द्वारा निर्णय लेना केन्द्रीयकरण कहलाता है।

अधिकार सत्ता के केन्द्रीयकरण पर अधिकार सर्वोच्च प्रशासन के हाथों में केन्द्रित रहती हैं। सभी विषयों पर निर्णय का अधिकार शीर्ष प्रबन्ध का होता है। अधीनस्थों का महत्व कम होता है। अधीनस्थ, उच्च प्रशासन द्वारा लिये गये निर्णयों को क्रियान्वित करते हैं केन्द्रीयकरण के कुछ प्रमुख महत्व निम्नलिखित हैं –

- केन्द्रीयकरण व्यक्तिगत नेतृत्व को सुविधाजनक बनाता है।
- कार्य की एकरूपता को प्रोत्साहन देता है।
- आकस्मिक दशाओं में सफलता से कार्य करना सम्भव बनाता है।

- केन्द्रीयकरण से संगठन पर प्रभावशाली नियंत्रण संभव है।
- यह स्थायी व्ययों में कमी लाता है
- यह एकता को बढ़ावा देता है।
- संगठन के संसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग सम्भव होता है।

4.7 अधिकार का विकेन्द्रीकरण

विकेन्द्रीकरण भारार्पण का विकसित रूप है। अधिकारों के विकेन्द्रीकरण में अधीनस्थ कर्मचारियों को अधिकारों का व्यवस्थित रूप से हस्तान्तरण किया जाता है। इससे अधीनस्थ कर्मचारियों की भूमिका में वृद्धि हो जाती है। हेनरी फेयोल के शब्दों में वह प्रत्येक कार्य जिससे अधीनस्थ की भूमिका के महत्व में वृद्धि होती है। विकेन्द्रीकरण कहलाता है और जिससे उसकी भूमिका के महत्व में कमी होती है केन्द्रीयकरण के नाम से जाना जाता है। कीथ डेविस के शब्दों में संगठन की छोटी से छोटी इकाई तक जहॉ तक व्यावहारिक हो, सत्ता एवं दायित्व का वितरण विकेन्द्रीकरण कहलाता हे। विकेन्द्रीकरण में ऊपर से नीचे तक लागू होने वाली प्रक्रिया होती है। अधि ाकारों के विकेन्द्रीकरण को निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट किया जा सकता है –

- इससे अधीनस्थों की प्रबन्धकीय क्षमता का विकास होता है।
- प्रभावशाली निरीक्षण सम्भव होता है।
- इससे श्रेष्ठ निर्णय लेने की प्रेरणा मिलती है।
- शीर्षस्थ अधिकारियों के कार्य सार में कमी आने से वह अपना ध्यान व्यवसाय से सम्बन्धित अन्य महत्वपूर्ण पहलुओं पर ध्यान देते हैं।
- प्रबन्धकों के प्रशिक्षण एवं विकास में सहायता मिलती है।
- अधीनस्थों का मनोबल ऊॅचा उठता है।
- नवीन विचारों, पद्धतियों एवं सुझावों की सरलतापूर्वक कार्यान्वित किया जा सकता है।
- उद्देश्यानुसार प्रबंध प्रणाली को आसानी से लागू किया जा सकता है।

4.8 सारांश

किसी भी संगठन में अधिकार एक महत्वपूर्ण अस्त्र है। अधिकार वह वैधानिक शक्ति है जिसके बल पर अधिकार धारण करने वाला व्यक्ति, अधीनस्थ से काम कराता है। बिना अधिकार के कोई भी संगठन संचालित नहीं हो सकता है। अधिकारों से श्रेष्ठतम कार्य निष्पादन सम्भव होता है। अधिकारों को अपनी सीमा के अन्दर ही अधीनस्थ को आदेश देना चाहिए। कोई भी आदेश विधि विरूद्ध या असम्भव कार्य के लिए नहीं देना चाहिए। जब अधिकार का भारार्पण अधीनस्थ को नहीं होता तो इसे अधिकार का केन्द्रीयकरण तथा जब अधिकार का भारार्पण अधीनस्थों को किया जाता है किया जाता है तो इसे अधिकारों का विकेन्द्रीयकरण कहते हैं।

4.9 बहुविकल्पीय प्रश्न

1. दूसरों को आदेश देने की शक्ति है –

   1. अधिकार 2. उत्तरदायित्व 3. जवाबदेयता 4. इनमें से कोई नहीं।

2. अधिकार सत्ता निर्णय लेने एवं आदेश देने का अधिकार है। यह कथन है।

   1. डेविस 2. साइमन 3. उर्विक 4. हेनरी फेयोल

3. अधिकार एवं भारार्पण होते है।

   1. अनुगामी 2. प्रतिगामी 3. सहगामी 4. इनमें से कोई नहीं

4. अधीनस्थों को अधिकारों का भारार्पण कहलाता है।

   1. केन्द्रीयकरण 2. विकेन्द्रीयकरण 3. जवाबदेयता 4. इनमें से कोई नहीं

4.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. अधिकार से आप क्या समझते हैं?
2. अधिकार के महत्व एवं सीमाओं को समझाइये।
3. अधिकारों के केन्द्रीयकरण से क्या समझते हो।

4. अधिकारों के केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर–1) 1 2) 1 3) 3 4) 2

4.11 बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर

1. अधिकार का अर्थ स्पष्ट करना है।
2. अधिकार का महत्व बताना है और इसकी सीमाओं का वर्णन करना है।
3. अधिकार के केन्द्रीयकरण के बारे में बताना है।
4. अधिकार के केन्द्रीयकरण एवं विकेन्द्रीयकरण के अन्तर को बताना है।

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
प्रयागराज

M.Com - 202
प्रबन्ध सिद्धान्त एवं पर्यावरण

खण्ड
4
निर्देशन एवं समन्वय

इकाई-1 5
निर्देशन

इकाई-2 13
समन्वय

इकाई-3 24
नियंत्रण

परामर्श-समिति

प्रो० नागेश्वर राव	कुलपति - अध्यक्ष
डॉ० हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
श्री एम० एल० कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

संरचनात्मक सम्पादन

डॉ० मंजूलिका श्रीवास्तव	निदेशक, दूरस्थ शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली

विषयगत सम्पादन

प्रो० मूल मोतिहार	प्रोफेसर, मोनिरबा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ० डी० जी० बेडिया	रीडर, पं० जवाहर लाल नेहरू इन्स्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेन्ट, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

प्रस्तुत पाठ्य सामग्री में विषय से सम्बन्धित सभी तथ्य एवं विचार मौलिक रूप से लेखक के स्वयं के हैं।

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

RIL-080

खण्ड-4 परिचय

प्रबन्ध सिद्धान्त एवं पर्यावरण खण्ड में निर्देशन एवं समन्वय की तीन इकाईयों में प्रस्तुत किया गया है-

इकाई - 1 में निर्देशन को, इकाई - 2 में समन्वय व ईकाई - 3 में नियन्त्रण की व्याख्या की गयी है।

RIL-080

RIL-080

इकाई –1 निर्देशन (Direction)

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 निर्देशन

- 1.3.1 निर्देशन का अर्थ
- 1.3.2 परिभाषायें
- 1.3.3 निर्देशन की प्रकृति

1.4 निर्देशन की तकनीकियॉ

1.5 सारांश

1.6 शब्दावली

1.7 स्व–परक प्रश्न

1.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप जान सकेंगे –

- निर्देशन का अर्थ,
- निर्देशन के विभिन्न सिद्धान्त,
- निर्देशन की तकनीकियों की जानकारी एक निश्चित प्रारूप,
- निर्देशन के सिद्धान्तों एवं तकनीकियों का महत्व।

1.2 प्रस्तावना (Introduction)

प्रस्तुत इकाई में निर्देशन को प्रबन्ध का महत्वपूर्ण हिस्सा माना गया है इसलिए इस इकाई में निर्देशन के सिद्धान्तों को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है जिससे निर्देशन की महती भूमिका प्रबन्ध में निश्चित तौर पर उभर सके। निर्देशन की तकनीकियों के माध्यम से व्यक्तियों से कार्य करवाने की कला को भी दर्शाया गया है। इस प्रकार इस इकाई में क्रमानुसार अध्ययन करेंगे। प्रबन्ध का पॉचवां महत्वपूर्ण कार्य संगठन को संचालन प्रदान करना है। प्रबन्ध मूलतः व्यक्तियों द्वारा काम करवानें एवं उसके साथ काम करने की कला है। दूसरे व्यक्तियों से कार्य कराने के लिए यह आवश्यक है कि उनके कार्य को निर्धारित उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु निर्धारित दिशाओं में प्रशस्त एवं निर्देशित किया जाय। निर्देशन का शाब्दिक अर्थ संस्था के विभिन्न नियुक्त व्यक्तियों को यह बताना कि उन्हें क्या करना है? कैसे करना है? कब करना है? तथा यह देखना कि वे व्यक्ति अपना कार्य उसी भांति कर रहे हैं या नहीं।

निर्देशन प्रबन्ध का वह महत्वपूर्ण कार्य है जो संगठित प्रयत्नों को प्रारम्भ करता है, प्रबन्धकीय निर्णय को वास्तविकता का चोला पहनाता है और व्यवसाय अथवा उद्योग को अपने उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर करता है। प्रत्येक प्रबन्धक को, चाहे वह प्रबन्ध के किसी स्तर पर कार्य क्यों न करता हो, अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के कार्यों को सही दिशा में प्रशस्त करने के लिए उनका निर्देशन करता है। एक प्रबन्धक का व्यवसाय एवं उद्योगों में वही महत्व है जो कि एक रेलगाड़ी में उसके गार्ड का, खेल में रेफरी का एवं संगीत में संगीत निर्देशक का है।

1.3 निर्देशन (Direction)

प्रबन्ध अधिकारियों का कार्य संस्था के विभिन्न नियुक्त व्यक्तियों को यह बताना कि उन्हें क्या करना है? कैसे करना है? कब करना है? तथा यह देखना कि वे व्यक्ति अपना कार्य उसी भॉति कर रहे हैं या नहीं । जैसा जैसा निर्देश दिया गया है। निर्देशन का सामान्य अर्थ संचालन से है। संगठन के प्रत्येक स्तर पर कार्य करने वाले कर्मचारियों का मार्गदर्शन करना, उनको परामर्श देना, प्रोत्साहन करना तथा उनके कार्यों का निरीक्षण करना निर्देशन कहलाता है।

1.3.1 निर्देशन का अर्थ (Meaning of Direction) –

निर्देशक कम्पनी के कार्यों को करने वाले व्यक्ति है, जिन्हें हम संचालक कहते हैं। इनके द्वारा जो कार्य किया जाता है उसे कार्य निर्देशन (Direction) कहते हैं। संचालकों से आशय ऐसे व्यक्तियों से होता है जो कंपनी के प्रबंध का कार्य करते हैं।

कार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिये यह आवश्यक है कि व्यक्तियों के एक समूह को एक ही व्यक्ति से तथा एक ही प्रकार के निर्देशन प्राप्त होते हैं। यह पथ प्रदर्शन एवं पर्यवेक्षण की वह प्रक्रिया है जो अधीनस्थों को इस प्रकार कार्य करने के लिए प्रेरित करती है जिससे समाज एवं व्यवसाय दोनों लाभान्वित हों। प्रबंध विज्ञान में संचालन को ही निर्देशन कहा जाता है। प्रबंध विज्ञान के कई विद्वानों ने संचालन को प्रबंध के प्रकार्यों में सम्मिलित किया है इनमें बेशलर (Washler) तथा मसारिट (Massarit) एवं कुटन्ड्ज व ओडोनेल (Kooniz and O'Donnel) प्रमुख हैं। इसके विपरीत हेनरी फेयोल (H. Fayol) ने निर्देशन के स्थान पर आदेश, (Command), मेरी कुशिंग नाइल्स (Mary Cushing Nilces) ने नेतृत्व (Leadership) तथा ई. एफ. एल. ब्रेच (E.F.L.Brech) ने अभिप्रेरण (Motivation) शब्द का प्रयोग किया है। आदेश नेतृत्व, अथवा अभिप्रेरण शब्दों का प्रयोग संचालन में की जाने वाली क्रियाओं के संबंध में ही किया गया है। परन्तु इन शब्दों के शाब्दिक अर्थों में अन्तर होने के कारण निर्देशन का अलग से अध्ययन किया जाता है।

निर्देशन का तात्पर्य संचालन से है। संगठन के विभिन्न स्तर पर कार्य करने वाले कर्मचारियों का मार्गदर्शन करना, उनको परामर्श देना तथा उनके कार्य का

निरीक्षण करना, प्रबंध अधिकारियों का कार्य होता है। अतः निर्देशन से आशय, "प्रबंधकों द्वारा अपने अधीनस्थ कर्मचरियों को संगठन रचना करना एवं कर्मचारियों के अन्तर्विभागों संबंधी क्रियाओं का निरूपण करना तथा अधिकार एवं कर्तव्यों से भली भॉति परिचित कराना है। इसके अतिरिक्त अधीनस्थों में ऐसी निष्ठा भावना का बीजारोपण एवं विकास करना है, जिससे वे संस्था की उच्च परम्पराओं, उद्देश्यों एवं नीतियों को न केवल हृदयंगम कर ले अपितु उनकी सराहना भी करें। साथ ही अधीनस्थों के कार्यों का सतत् रूप से परीक्षण, अधिकार सत्ता का समुचित भारार्पण तथा आवश्यक निर्देशन द्वारा उनको कार्य में पूर्ण उत्साह एवं विश्वास के साथ प्रवृत्त करना और संगठनात्मक लक्ष्यों को प्राप्त करवाना भी निर्देशन की क्रियायें ही हैं।"

निर्देशन का वैज्ञानिक आधार "व्यवहार विज्ञान है।" संकीर्ण अर्थ में, निर्देशन अधीनस्थों के विकास और मार्ग दर्शन तक ही सीमित है किन्तु व्यापक अर्थ में निर्देशन में नेतृत्व, पर्यवेक्षण, संचालन, नियंत्रण एवं अभिप्रेरण संबंधी क्रियायें सम्मिलित होती हैं।

1.3.2 परिभाषाएँ (Definitions)

प्रो. कुण्ट्ज ओडोनेल के अनुसार, "निर्देशन किसी कार्य को पूरा करवाने की क्रिया से आत्मीय रूप से संबंधित है। एक व्यक्ति नियोजन, संगठन एवं कर्मचारी प्रबंध कर सकता है किन्तु यह किसी कार्य को उस समय तक पूरा नही करवा सकता है जब तक कि वह अधीनस्थों को यह नहीं सिखा देता कि उनको क्या करना है। अन्य सभी अधिशासी कार्यों का निर्देशन में वही अंतर है जो निष्क्रिय इंजिन वाले किसी वाहन में बैठने तथा चालू इंजिन को गेयर में डालने से होता है।"

उन्होंने आगे लिखा है कि "अधीनस्थो का मार्गदर्शन तथा उनके पर्यवेक्षण का प्रबन्धकीय कार्य ही संचालन की एक अच्छी परिभाषा है।"

एम.ई.डीकॉकं के शब्दों में, "निर्देशन कार्य प्रशासन का हृदय होता है। इसमें क्षेत्र निर्धारण, आदेशन, निर्देशन तथा गतिमान नेतृत्व प्रदान करना अन्तस्थ होता है।"

जोसेफ एल. मैसी के अनुसार, "निदेशन प्रबंधकीय प्रक्रिया का हृदय है क्योंकि वह कार्य प्रारंभन से संबंधित है। इसके मूल में समूह के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु पहले लिये गये निर्णयों तथा पहले तैयार किये गये कार्यक्रमों एवं योजनाओं को प्रभावी बनाने का विचार निहित हैं।"

हेनरी एच. एलबर्स के अनुसार, "निर्देशन नियोजन के परिणामस्वरूप प्राप्त नीतियों को कायान्वित करने से संबंधित हैं। इस संबंध में अधिकार सत्ता–संबंध, संचार प्रक्रिया एवं अभिप्रेरण समस्या महत्वपूर्ण है।"

इस प्रकार उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि निदर्शन का तात्पर्य अधीनस्थों द्वारा कार्य संपादन करवाने के लिए उनका निर्देशन, मार्गदर्शन तथा उनके कार्य का निरीक्षण करना है। इसके अन्तर्गत कार्य निष्पादन के दौरान उत्पन्न होने वाली समस्याओं को निपटाना भी आता है।इसके चार मूल तत्व होते

हैं। प्रथम उपक्रम के कर्मचारियों को आदेश देना, द्वितीय कर्मचारियों का मार्गदर्शन करना या नेतृत्व करना, तृतीय कर्मचारियों का निरीक्षण या पर्यवेक्षण करना और चतुर्थ कर्मचारियों को अभिप्रेरित करना।

1.3.3 निर्देशन की प्रकृति (Nature of Direction)

निर्देशन की प्रकृति को निम्न बिन्दुओं को आधार पर समझाया जा सकता है–

i) भारार्पण (Delegation) – भारार्पण क्रिया में निर्देशन महत्वपूर्ण होता है। भारार्पण का आशय ही होता है अधिकारों को सौंपना। अधिकार इसलिए सौंपे जाते हैं क्योंकि अधीनस्थों से कार्य करवाना पड़ता है। भारार्पण के अंतर्गत इसकी सीमा का निर्धारण उच्च अधिकारियों के द्वारा ही होता है। अतः आदेश एवं निर्देशन की तुलना में अधिकारों का सौंपना निर्देशन प्रक्रिया का सामान्य स्वरूप कहा जाता है।

ii) उच्च प्रबंधकीय प्रक्रिया (Top Management activity) – प्रबंधकों के कार्य निर्देशन के कार्य कहे जाते हैं जो कि हमेशा उच्च अधिकारियों द्वारा किये जाते हैं। निर्देश हमेशा ऊपर से नीचे की ओर दिये जाते हैं। उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थों का मार्गदर्शन ही नहीं करते वरन उपयुक्त आदेश भी देते हैं। इसलिए प्रबन्ध प्रक्रिया में निर्देशन को प्रबंध का केन्द्र माना गया है।जिसके चारों ओर सभी मानवीय क्रियाएं विचरण करती रहती हैं।

iii) अभिस्थापना (Orientation) –कार्य करने हेतु आवश्यक सामग्री व सूचनाएँ प्रदान करना, अभिस्थापना है। इसके अन्तर्गत कर्मचारियों को अधिक से अधिक सूचनायें प्रदान करने की कोशिश की जाती हैं। ऐसा करने से अधीनस्थ अपने से संबंधित पर्यावरण एवं कार्य को अच्छी तरह से समझ जाते हैं। कार्य को अच्छी तरह से समझने के कारण वे उस कार्य को मन लगाकर होशियारी से करते हैं।

iv) निर्देशन (Direction) – उच्चाधिकारी अधीनस्थों को निर्देशन के द्वारा आवश्यक आदेश प्रदान करते हैं। इससे वे अपने कार्यों को सही प्रकार से निष्पादित कर पाते हैं। आदेश एवं निर्देश इसलिए आवश्यक होते हैं कि उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थों से अपनी इच्छा और संस्था की नीति के अनुसार कार्य करवाते हैं। ये आदेश सामान्य अथवा विशिष्ट हो सकते हैं। ये अधीनस्थों की योग्यता के अनुसार ही हुआ करते हैं। निर्देशन में उच्चाधिकारी अपने अधीनस्थों की क्षमताओं के आधार पर उनसे कार्य करवाने के लिए निर्देश देते हैं। जो अनुशासित एवं संस्था की क्रियान्वयन प्रक्रिया के अनुसार होते हैं साथ ही साथ संस्था के विकास के लिए अपरिहार्य है।

v) अनुशासन एवं पुरस्कार (Discipline and Reward) – निर्देशन की क्रियाओं में अनुशासन भी एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया होती है। इसीलिए इस कार्य पर अधिक बल दिया जाता है। अधीनस्थ जो अपने कार्य को समय में पूरा करते हैं या अनुशासंन को मानते हैं उन्हें पुरस्कार भी दिया जाता है। इससे निर्देशन की क्रिया अधिक प्रभावशाली बन जाती है। निर्देशन प्रक्रिया में अनुशासन एवं पुरस्कार एक दूसरे के पूरक है। संगठन में अनुशासन स्थापित करने में पुरस्कार अपनरी महती भूमिका निभाते हैं जिससे संस्था में अनुशासन के साथ साथ एक प्रतियोगी वातावरण निर्मित

होता है और अंततः संस्था की कार्य संस्कृति का विकास होता है।

1.4 निर्देशन के सिद्धान्त (Principles of Direction)

निर्देशन के कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए प्रबन्धकों को इसके सिद्धान्तों का पालन करना पड़ता है। उन्हें इन सिद्धान्तों का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। वे सिद्धान्त निम्न प्रकार हैं –

i) नेतृत्व का सिद्धान्त (The Principle of leadership) – इसका तात्पर्य है निर्देशक या उच्च अधिकारी को प्रभावी नेता भी होना चाहिए क्योंकि अधीनस्थ उसी अधिकारी के आदेशों का पालन करते हैं जो उनके व्यक्तिगत हितों एवं लक्ष्यों की पूर्ति में पूर्ण रूचि का प्रदर्शन एवं सक्रिय भूमिका का निर्वाह करते हैं। आधुनिक नेतृत्व सिद्धान्त की अवधारणा है कि एक प्रभावी नेता ऐसा होना चाहिए जो अपने अधीनस्थों में एक पारिवारिक संस्कृतिक का निर्माण कर सके एवं उनमें स्वप्रेरणा जागृत कर सके जिसके आधार पर अधीनस्थों में यह भाव उत्पन्न हो कि, कार्यों का समपादन सुचारू रूप से चल सके।

ii) आदेश की एकता (Unity of Command)

इसका तात्पर्य यह है कि कर्मचारी को एक ही प्रबन्ध अधिकारी द्वारा आदेश दिये जाने चाहिए। आदेश का स्रोत एक ही होना चाहिए। कर्मचारी को जब आदेश एक ही स्रोत से प्राप्त होंगे तो वह अपने कार्य के लिए उत्तरदायी भी सिर्फ एक ही व्यक्ति के प्रति होगा। ऐसा होने पर आदेशों में विरोध एवं संघर्ष नहीं होगा। परिणामों के प्रति व्यक्तिगत उत्तरदायित्वों की भावना में वृद्धि होगी। इस सिद्धान्त के परिणामस्वरूप निर्देशों की प्राथमिकता के निर्धारण, उच्चाधिकारियों के प्रति निष्ठा आदि के कारण उत्पन्न समस्यायें न्यूनतम हो जाती हैं और अधीनस्थ अधिक अच्छे ढंग से कार्य करते हैं।

iii) अभिप्रेरणा का सिद्धान्त (Principle of motivation)

यह सिद्धान्त इस बात को दर्शाता है कि कर्मचारियों को अभिप्रेरित करना आवश्यक है। परन्तु इसे मानवीय व्यवहार के रूप में देखना चाहिए और इसके अनुसार कार्य करने में व्यक्तियों का व्यवहार, उनके व्यक्तित्व, कार्यों एवं पुरस्कार की प्रत्याशा, संगठनात्मक जलवायु तथा अन्य अनेक परिस्थितिजन्य घटकों को ध्यान में रखना चाहिये।

iv) अच्छे मानवीय सम्बन्धों का सिद्धान्त (Principle of good human relation)

व्यक्तियों के बीच जितना अधिक सदविश्वास, सहयोग और मित्रतापूर्ण वातावरण होगा, निर्देशन का कार्य उतना ही अधिक सरल होगा। संघर्ष, अविश्वास, अनुपस्थिति आदि कार्य निष्पादन को सीमित एवं विलम्बित करते हैं। इससे निर्देशन प्रभावहीन हो

जाता है। अतः अच्छे मानवीय सम्बन्धों के आधार पर ही निर्देशन कुशल कहा जा सकता है। एक अच्छे निर्देशक में सामाजिक सरोकार उसकी मानवीय सम्बन्धों को मजबूत करते हैं जिससे निर्देशन करना आसान होता है।

v) प्रत्यक्ष निरीक्षण (Direct Supervision)

प्रबंधकों को स्वतः अपने अधीनस्थों का प्रत्यक्ष निरीक्षण करना चाहिए। विभागाध्यक्ष को कर्मचारियों के प्रत्यक्ष सम्पर्क में रहना चाहिए। कर्मचारियों पर व्यक्तिगत संपर्क का अच्छा प्रभाव पड़ता है। इसके कारण उनमें अनुशासन की भावना जागृत होती है और कार्य के प्रति रूझान में वृद्धि होती है।

vi) उद्देश्य निर्देशन का सिद्धान्त (Principle of directing objective)

इसका तात्पर्य है कि निर्देशन प्रभावशाली होना चाहिए। निर्देशन जितना अधिक प्रभावशाली होगा अधीनस्थ उतने ही प्रभावी रूप से कार्य करेंगे। अधीनस्थों को अपने लक्ष्यों एवं भूमिका का पूरा ज्ञान होना चाहिए। इसी के परिणामस्वरूप संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति में उनका योगदान सक्रिय हो सकेगा।

vii) निर्देशन तकनीक की उपयुक्तता (Appropriateness of Direction techniques)

संगठन के सफल संचालन के लिए यह आवश्यक है कि प्रबन्धक निर्देशन की उपयुक्त तकनीक की व्यवस्था करें। ये तकनीकें हैं – परामर्शात्मक, निरंकुश तथा तटस्थवादी तकनीक। प्रबन्धक को इनमें से कर्मचारियों की प्रकृति व परिस्थितियों के अनुकूल उचित तकनीक का चुनाव करना चाहिए।

viii) सूचना प्रवाह (Flow of Information)

वर्तमान परिदृश्य में सूचनाओं का प्रवाह एवं प्रबन्ध, निर्देशन सिद्धान्तों के लिए महत्वपूर्ण है। इसका तात्पर्य है कि संगठन व्यवस्था में सही सही सूचना का संवहन न्यूनतम समय में किया जाना चाहिए। इसके लिए औपचारिक और अनौपचारिक दोनों प्रकार की व्यवस्था को अपनाया जाना चाहिए। निर्देशन उतना ही प्रभावी होगा, जितना कि सूचना प्रवाह तीव्र है एवं सूचना तकनीकियों का प्रयोग किया गया है। आधुनिक सूचना क्रान्ति का प्रयोग कर्मचारियों को निर्देशित करने के लिए महत्वपूर्ण हो गया है क्योंकि सूचना तकनीकियों का प्रयोग अधिकाधिक तीव्र गति से बढ़ रहा है।

ix) निरंतर जागरूक निर्देशन (Always conscious direction)

निर्देशन का यह प्रमुख कार्य होता है कि वह अपने कर्मचारियों को आदेश देकर और आवश्यकतानुसार परामर्श देकर उनका पथ प्रदर्शन करे। यह देखना भी आवश्यक है कि सारा कार्य निर्धारित नीतियों के अनुसार चल रहा है या नहीं। यदि निर्धारित नीतियों के अनुसार कार्य न चल रहा हो तो आवश्यक निर्देशन देने चाहिए। अर्थात निर्देशक को निरंतर जागरूक रहकर आदेश देने के उपरांत भी कर्मचारियों के कार्य का निरीक्षण करना चाहिए। वे इस कार्य हेतु पर्यवेक्षक और फोरमैन की सहायता ले सकते हैं।

x) प्रबंधकीय संवादवाहन (Managerial Communication)

निर्देशन का यह भी एक आवश्यक सिद्धान्त है कि प्रबन्ध तथा अन्य कर्मचारियों के बीच संवादवाहन की व्यवस्था अच्छी होनी चाहिए। संगठन चार्ट में प्रत्येक प्रबन्धकीय एवं संवादवाहन के माध्यम का काम करते हैं। इस कार्य के लिए प्रबंध को द्विगामी संवादवाहन तथा प्रति पुष्टि के सिद्धान्त को काम में लाना चाहिए। वर्तमान प्रबन्धकीय परिवेश में संवादवाहन एक महत्वपूर्ण तकनीक के रूप में उभर रही है। जिसके आधार पर संगठन में कर्मचारियों एवं अधिकारियों के बीच में एक स्वस्थ संवादवाहन व्यवस्था का निर्माण होता है और उसके मध्य में एक संवाद स्थापित हो जाता है। परिणामस्वरूप संस्था में इस व्यवस्था के माध्यम से निर्देशन करना सुविधाजनक हो जाता है।

1.5 निर्देशन की तकनीकियाँ (Techniques of Direction)

निर्देशन की तकनीकियों की व्याख्या इस प्रकार है –

i) अधिकारों का प्रत्यायोजन करना (Delegation of power) – निर्देशन की तकनीकों के अन्तर्गत जहॉ कर्मचारियों से कार्य कराना पड़ता है वहॉ यह आवश्यक है कि कार्य पर उपयुक्त अधिकारी की नियुक्ति करके उसके अधिकारों का प्रत्यायोजन किया जाये। उसे उसके अधिकार एवं कर्तव्य स्पष्ट रूप से बता दिये जाने चाहिए। इससे सम्बन्धित अधिकारी कार्य में अपने दायित्व को महसूस करेगा और रूचि पूर्वक कार्य करेगा। कार्य का दायित्व प्रभारित करने से कर्मचारी अपनी जिम्मेदारी महसूस करता है जिससे कार्य निष्पादन प्रभावशाली तरीके से सम्भव होती है।

ii) आदेश एवं निर्देश देना (Orders and Instructions) – प्रबन्धक को अधीनस्थ कर्मचारियों को संदेशवाहन के द्वारा आदेश एवं निर्देश देने चाहिए। इससे वे अपने कार्य को प्रारम्भ कर सकेंगे। उच्च अधिकारी को अपने अधीनस्थ अधिकारी के माध्यम से विभिन्न कर्मचारियों को आदेश देना चाहिए। निर्देशों के द्वारा उनका समयानुसार मार्गदर्शन भी करना चाहिए। सूचना तकनीकी के प्रभावी उपयोग से आदेश एवं निर्देश देने में आसानी हो गई है साथ ही साथ समय की भी बचत हो जाती है।

iii) संदेशवाहन (Communication) – आदेश व निर्देशों को कर्मचारियों तक पहुँचाने के लिए संदेशवाहन की व्यवस्था भी प्रभावशील होनी चाहिए। इससे उन्हें उचित समय पर आदेश निर्देश प्राप्त होंगे एवं प्रतिपुष्टि के माध्यम से संदेशवाहन निर्देशन में सुधारात्मक कदम उठाने में सहायक होगा।

iv) अनुशासन (Discipline) – प्रबन्ध के कुछ विद्वान अनुशासन को भी निर्देशन की प्रभावी तकनीक मानते हैं । इसके द्वारा निर्देशन कुशल और प्रभावशाली बनता है। अनुशासन मानवीय संगठन का अपरिहार्य अंग है जिससे संगठन के अधिकारी एवं कर्मचारी स्वप्रेरित होकर कार्य करते हैं।

v) पुरस्कार (Reward) – अनुशासन की भॉति ही उचित पुरस्कार की तकनीक भी निर्देशन को सफलता प्रदान करती है। इसके अंतर्गत अच्छा कार्य करने वालें व लक्ष्य को पूरा करने वाले व्यक्तियों को पुरस्कृत किया जाता है एवं अकर्मण्य

कर्मचारियों को दण्ड के माध्यम से सुधारा जाता है और उनको प्रशिक्षण सुविधा प्रदान कर पुरस्कृत कर्मचारियों की श्रेणी में लाया जाता है। इससे निर्देशन करना सुविधाजनक हो जाता है।

1.6 सारांश (Summary)

निर्देशन प्रबंधक के लिए महत्वपूर्ण क्रिया है। इसके लिए एक प्रबन्धक को पिता तुल्य, संगठनकर्ता, नियंत्रक, कूटनीतिज्ञ, मित्र तथा मानवीय दर्शन एवं मनोविज्ञान का छात्र होना चाहिए। निर्देशन का सारांश अधीनस्थों द्वारा कार्य संपादन करवाने के लिए उनका निर्देशन, मार्गदर्शन, तथा उनके कार्य का निरीक्षण करना है। इसके अन्तर्गत कार्यनिष्पादन के दौरान उत्पन्न होने वाली समस्याओं को निपटाना भी आता है। इसके चार मूल तत्व होते है। प्रथम उपक्रम के कर्मचारियों को आदेश देना, द्वितीय कर्मचारियों को मार्गदर्शन करना या नेतृत्व करना, तृतीय कर्मचारियों का निरीक्षण या पर्यवेक्षण करना और चतुर्थ कर्मचारियों को अभिप्रेरित करना। व्यापार में निर्देशन, युद्ध में दॉवपेच के समान है। इस प्रकार्य का सम्बन्ध साधनों के उपयोग, विशेष प्रयत्न को केन्द्रित करने के बिन्दुओं तथा व्यवसाय के आर्थिक जीवन में कठिनाइयों एवं विषमताओं के मध्य जीवित रहने से। किसी एक उद्देश्य की पूर्ति हेतु क्रियाओं के एक समूह का संचालन केलव एक ही व्यक्ति द्वारा किया जाना चाहिये और उनकी एक ही योजना होना चाहिये।

1.7 शब्दावली

- **सिद्धान्त (Principle)** – निर्देशन के कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए प्रबन्धकों को इसके सिद्धान्तों का पालन करना पड़ता है।
- **निर्देशन (Direction)** – निर्देशन के द्वारा उच्चाधिकारी अधीनस्थों को आवश्यक आदेश प्रदान करते हैं।
- **भारार्पण (Delegation)** – भारार्पण का आशय होता है 'अधिकारों को सौंपना'।

1.8 स्व–परक प्रश्न

1. निर्देशन से आप क्या समझते हैं? इसकी व्याख्या कीजिए।
2. निर्देशन को समझाते हुये इसके प्रमुख सिद्धान्तों का सविस्तार वर्णन कीजिए।
3. "प्रशासन का हृदय निर्देशन है जिसमें क्षेत्र निर्धारण, आदेशन निदेशन तथा गतिमान नेतृत्व प्रदान करना समाहित है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।
4. निर्देशन को परिभाषित करते हुए इसकी प्रमुख तकनीकियों का वर्णन कीजिए।
5. वर्तमान प्रतिस्पर्धात्मक परिस्थितियों में एक अच्छे निर्देशक के योगदान एवं तकनीकी दृष्टिकोण की व्याख्या कीजिए।

इकाई –2 समन्वय

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 समन्वय

- 2.3.1 समन्वय का अर्थ
- 2.3.2 समन्वय का महत्व
- 2.3.3 समन्वय का सिद्धान्त
- 2.3.4 प्रबन्ध की आत्मा/सारांश के रूप में समन्वय

2.4 सारांश

2.5 शब्दावली

2.6 स्व–परक प्रश्न

2.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

- समन्वय का अर्थ बता सकेंगे,
- समन्वय का महत्व बता सकेंगे,
- समन्वय के विभिन्न सिद्धान्तों की व्याख्या कर सकेंगे,
- समन्वय को प्रबन्ध के सार के रूप में बता सकेंगे।

2.2 प्रस्तावना (Introduction)

किसी भी संगठन में समन्वय एक महत्वपूर्ण प्रकार्य है जो संगन के सभी अंगों को आपस में जोड़कर रखता है। प्रस्तुत इकाई में समन्वय का अर्थ, महत्व, सिद्धान्त एवं समन्वय को प्रबन्ध के सार के रूप में प्रस्तुत किया गया है। समन्वय को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रबन्ध का केन्द्र बिन्दु माना गया है। समन्वय की प्रारम्भिक विचारधारा जो इसे प्रबन्ध का एक प्रकार्य मात्र मानकर चलती है वर्तमान में कोई महत्व नहीं रखती। आधुनिक विचारधारा के अनुसार यह प्रबन्ध का एक प्रकार्य मात्र ही नहीं है अपितु "प्रबन्ध–प्रक्रिया का सार है।" किसी भी उपक्रम के निर्वाध संचालन के लिए यह आवश्यक है कि उसके समस्त विभागों में की जाने वाली क्रियाओं मे तालमेल बना रहे। समन्वय इस उद्देश्य की पूर्ति करता है।

2.3 समन्वय (Coordination)

समन्वय प्रबन्ध का सार है जो उपक्रम की विभिन्न क्रियाओं में तालमेल बनाए रखता है। जब तक उपक्रम में की जाने वाली विभिन्न क्रियाओं के मध्य प्रभावी समन्वय की स्थापना नही हो जाती तब तक उपक्रम द्वारा निर्धारित लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की प्राप्ति की कामना करना व्यर्थ होगा। मूने एवं रेले के अनुसार "समन्वय उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कार्यों मे एकता स्थापित करने हेतु सामूहिक प्रयासों की क्रमानुसार व्यवस्था करना है।" यह एक सिद्धान्त है कि संसार के समस्त कार्य उसी समय सरलता एवं शीघ्रता से सम्पन्न किये जा सकते हैं जब कि सभी व्यक्ति स्वेच्छिक सहयोग प्रदान करें।इस प्रकार यह स्पष्ट है कि निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु सूहिक–प्रयासों में सामंजस्य अति आवश्यक है ।बिना समन्वय के निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करना कठिन है।

2.3.1 समन्वय का अर्थ (Meaning of Coordination)

साधारण शब्दों में समन्वय का अर्थ सामान्य लक्ष्यों की पूर्ति हेतु किये जाने वाले सामूहिक प्रयासों में तालमेल बनाये रखना है।समन्वय एक विस्तृत अर्थ वाला शब्द है जिसे विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न ढंग से स्पष्ट किया है। समन्वय की कुछ प्रमुख विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएं निम्न हैं :–

- **कुन्ट्ज तथा ओ डोनेल (Koontz and O'Donell)** के अनुसार, "समन्वय समूह लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु व्यक्तिगत प्रयत्नों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए प्रबन्ध का सार है।"

- **मूने तथा रेले (Mooney and Reiley)** के अनुसार, "किसी सामान्य उद्देश्य की पूर्ति हेतु की जाने वाली क्रियाओं में एकता बनाये रखने के लिए सामूहिक प्रयासों की सुव्यवस्था को समन्वय कहते हैं।"

- **टीड (Tead)** के अनुसार, "समन्वय किसी संगठन के समस्त विभिन्न साध ाक अंगों के कार्यों एवं शक्तियों के सुचारू रूप से संचालन हेतु प्रयास है जिसका उद्देश्य यह होगा कि लक्ष्यों की पूर्ति न्यूनतम फूट और अधिकतम सहयोगात्मक प्रभाव पूर्णता के साथ हो सके।"

- **हेनरी फेयोल (Henri Fayol)** के अनुसार, "किसी प्रतिष्ठान के कार्य संचालन को सुविधाजक एवं सफल बनाने के लिए उसकी समस्त क्रियाओं में सामंजस्य स्थापित करना ही समन्वय है।"

- **मेक फारलैण्ड (Mc Farland)** के अनुसार "समन्वय एक वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से एक कार्यकारी (Executive) अपने अधीनस्थों के सामूहिक प्रयासों में एक सुव्यवस्थित स्वरूप का विकास करता है और सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु क्रियाओं में एक रूपता लाता है।"

हैमेन (Haimann) के अनुसार, "समन्वय किसी क्रिया को उचित राशि, समय एवं निष्पादन की किस्म प्रदान करने हेतु अधीनस्थों के प्रयासों की क्रमानुसार संयोजन (Orderly Synchronizing) है ताकि उनके संयुक्त निर्धारित उद्देश्य अर्थात् उपक्रम के सामान्य लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सके।"

ब्रेच (Brech) के अनुसार, "समन्वय से आशय विभिन्न सदस्यों में क्रियाशील क्रियाओं (Working activities) का उपयुक्त आवंटन करके तथा यह निश्चय करके कि सदस्य उन क्रियाओं को सदभावनापूर्वक कर रहे हैं संगठन में सन्तुलन एवं समूह भावना बनाये रखना है।"

जार्ज आर. टेरी (George R. Terry) के अनुसार, "समन्वय निर्धारित लक्ष्य की पूर्ति हेतु प्रयासों का क्रमानुसार संयोजन (Synchronization) है जिससे निष्पादन की उपयुक्त मात्रा, समय और निर्देशन से क्रियाओं में सामंजस्य एवं एकता स्थापित हो जाय।"

समन्वय की उपर्युक्त परिभाषाओं का अध्ययन करने के पश्चात हम कह सकते हैं कि समन्वय प्रबन्ध का एक प्रकार्य मात्र ही नहीं है अपितु सार भी है। यह एक सतत प्रक्रिया है जिसके माध्यम से निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु किये जाने वाले विभिन्न प्रयासों में एकता एवं सामन्जस्य स्थापित किया जाता है।

समन्वय के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों ने निम्न विचार प्रस्तुत किये हैं –

कून्ट्ज एवं ओ'डोनेल, समन्वय निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए व्यक्तिगत प्रयासों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए प्रबन्ध का सार है।

जेम्स डी. मूने, समन्वय प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण कार्य है तथा संगठन का एक प्रथम सिद्धान्त है। लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि अन्य कोई सहायक सिद्धान्त नहीं है। इसका तो साधारण अर्थ यह है कि शेष सभी सिद्धान्त समन्वय में शामिल हैं।

थियो हेमेन, समन्वयक प्रबन्ध की पृथक और भिन्न क्रिया नहीं है। यह तो अन्य सभी प्रबन्धकीय कार्यों जैसे नियोजन, संगठन, कर्मचारियों की नियुक्ति, निर्देशन ओर नियंत्रण का एक अंग है।

न्युमेन, समन्वय प्रबन्ध की एक पृथक और अविच्छिन्न क्रिया नहीं है क्योंकि यह प्रशासन के विभिन्न स्वरूपों का एक अंग है।

आर.सी.डेविस, समन्वय नियंत्रण का एक व्यापक साधन या रूप है।

पीटरसन एवं प्लोमेन, समन्वय उच्च प्रबन्ध का एक अविच्छिन्न कार्य (Distinctive task) है।

हेनरी फियोल, समन्वय प्रबन्ध का एक कार्य है।

जार्ज आर. टेरी, समन्वय को प्रबन्ध का आधारभूत कार्य मानना भूल होगी।

इस दृष्टि से समन्वय का सम्बन्ध नियोजन, संगठन, निर्देशन और नियंत्रण के साधनों से है। अतः इन चारों कार्यों का उचित क्रियान्वयन समन्वय की प्राप्ति के लिए आवश्यक है।

2.3.2 समन्वय का महत्व (Importance of Coordination)

यद्यपि कुछ विद्वान समन्वय को प्रबन्ध के आधारभूत कार्यों की सूची में सम्मिलित नहीं करते फिर भी इसका महत्व अन्य प्रबन्धकीय कार्यों से किसी भी दशा में कम नहीं है।इसी तथ्य से प्रभावित होकर कून्ट्ज एवं ओडोनेल ने कहा है, "समन्वय प्रबन्ध का एक प्रकार्य मात्र ही नही है अपितु प्रबन्ध का सार भी है।" समन्वय के अभाव में प्रबन्ध के अन्य सभी कार्य उसी प्रकार निष्क्रिय हो जाते हैं जिस प्रकार बिना रक्त संचार के शरीर। वर्तमान में जब उत्पादन का पैमाना काफी विस्तृत हो गया, स्वचालन एवं कम्प्यूटर यन्त्रों का प्रादुर्भाव हो गया, व्यापार स्थानीय सीमाओं को लांघकर अन्तर्राष्ट्रीय हो गया तो समन्वय का महत्व निश्चित ही अधिक हो गया है। मूने तथा रेले के अनुसार "समन्वय संगठन की सम्पूर्ण योजना का सारतत्व है। "इन्हीं के अनुसार समन्वय ही संगठन का एक मुख्य सिद्धान्त है लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि संगठन के अन्य कोई सिद्धान्त प्रभावी नहीं हैं। वास्तविकता यह है कि अन्य सभी सिद्धान्त समन्वय को और अधिक प्रभावी बना देते हैं। एल.एफ. उर्विक के अनुसार, "सभी रचनात्मक सामाजिक सम्बन्धों की जड़ एकता है।" किसी भी सफलता उसकी संगठन संरचना पर निर्भर होती है। और संगठन की सफलता समन्वय की किस्म एवं मात्रा पर निर्भर होती है। अतः इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि समन्वय प्रबन्ध का सार है। समन्वय की महत्ता न केवल व्यावसायिक जगत में ही सर्वाधिक है बल्कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सर्वाधिक है। एक परिवार समाज में अपना अस्तित्व उसी समय तक बनाये रख सकता है जबकि उसके सदस्यों की क्रियाओं में तालमेल हो, खेल के मैदान में एक टीम उसी समय विजय हासिल कर सकती है जबकि उसके खिलाड़ियों में समन्वय हो, युद्ध के मैदान में सैनिक अपनी जीत का डंका बजा सकते हैं जबकि उनमें आपस में समन्वय हो। समन्वय की महत्ता निम्न संक्षिप्त कहानी द्वारा और अधिक स्पष्ट हो जाती है –

"एक बार एक बालक को प्रातः रेल से कहीं जाना था। उसने रात को सोने से पूर्व कहीं उठने में देर न हो जाय और रेल छूट न जाय, घड़ी को आधे धण्टे आगे कर दिया और सुबह उठने के लिए वह जल्दी ही सो गया। कुछ समय बाद उसके पिताजी यह जानते हुए कि लड़के को सुबह जाना है उसे उठने में देर न हो जाय घड़ी को आधे घण्टे और आगे कर दिया और सो गये। कुछ समय बाद उसकी माताजी पूर्व दोनों क्रियाओं की जानकारी के बिना घड़ी को एक घण्टे और आगे कर दिया ताकि लड़के को सुबह जाने के लिए तैयार होने में पर्याप्त समय मिल जाय। इन सभी क्रियाओं का परिणाम यह हुआ कि पुत्र को निर्धारित समय से आधे घण्टे पूर्व उठने की बजाय दो घण्टे पूर्व उठना पड़ा और अपने माता पिता के मध्य समन्वय के अभाव से

डेढ़ घण्टे की नीद से हाथ धोना पड़ा।"

समन्वय की आवश्यकता एवं महत्व को निम्न शीर्षकों द्वारा और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है :–

i) अनेकता में एकता (Unity in Diversity)

यद्यपि किसी उपक्रम में कार्य करने वाले व्यक्तियों का लक्ष्य समान होता है फिर भी उनकी योग्यता एवं कार्य करने के तरीकों में पर्याप्त भिन्नता पाई जाती है। यह भिन्नता प्राकृतिक है। संसार में कोई ऐसे दो व्यक्ति देखने को नहीं मिलते जो हर तरह से एक समान हो। ऐसी स्थिति में निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति के लिए उनकी क्रियाओं में सामन्जस्य स्थापित करना अत्यन्त आवश्यक है।अतः यह स्पष्ट है कि विभिन्न व्यक्तियों की क्रियाओं में सामन्जस्य स्थापित करके ही उपक्रम का सुचारू रूप से संचालन किया जा सकता है। अतः कुन्ट्ज एवं ओ'डोनेल ने ठीक ही लिखा है कि "प्रबन्धक का केन्द्रीय कार्य विचारधारा के मध्य अन्तरों को समाप्त करना और व्यक्तिगत लक्ष्यों एवं क्रियाओं के मध्य सामंजस्य स्थापित करना है ताकि समूह उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सके।"

ii) विभिन्न कार्यों की कुन्जी (Key to various functions)

समन्वय प्रबन्ध के अन्य सभी कार्यों की कुन्जी है। यह एक ऐसा शब्द है जिसमें प्रबन्ध के अन्य सभी कार्यों का निचोड़ सम्मिलित है। यह प्रबन्ध प्रक्रिया का अन्तिम परिणाम है। अतः इसे प्रबन्ध के अन्य कार्यों यथा नियोजन, संगठन, निर्देशन और नियंत्रण आदि की कुन्जी माना जाता है। एक उपक्रम की सफलता के लिए एक नियोजन के विभिन्न तत्वों, एक संगठन के विभिन्न अंगों और नियंत्रण के विभिन्न स्तरों के समन्वय स्थापित करना अत्यन्त आवश्यक है। समन्वय ही प्रबन्ध का एक ऐसा कार्य है जो नियोजन को अधिक उद्देश्यपूर्ण, संगठन को अधिक सुदृढ़ और नियंत्रण को अधिक नियमित बनाता है। जार्ज सी. होमेन्स के अनुसार, "समन्वय में एक से अधिक व्यक्ति की क्रियायें सम्मिलित होती हैं और वास्तव में जहॉ व्यक्ति अनेक जटिल तकनीकों का प्रयोग करते हैं वहॉ पर उत्पादन कार्य को समन्वित करने के लिए, कच्चे माल को प्राप्त करने के लिए और उत्पादित वस्तुओं के विक्रय के लिए अनेक सह–विस्तृत अन्तःक्रियाएं जन्म लेती हैं।"

iii) निर्देश की एकता (Unity of direction)

निर्देश की एकता प्रबन्ध का एक आधारभूत सिद्धान्त है। इसका पालन एक उपक्रम में उसी समय सम्भव है जबकि उपक्रम की विभिन्न क्रियाओं में पर्याप्त समन्वय है। समन्वय प्रबन्धकों को इस योग्य बनाता है कि वे विभिन्न दृष्टिकोणों से समग्र रूप में उपक्रम की समस्त क्रियाओं की देखरेख करें। यह निर्देश की एकता बनाये रखता है। वास्तव में देखा जाय तो किसी संगठन के अन्तर्गत विभिन्न प्रयासों को एक दिशा में निर्देशित करना कोई आसान कार्य नहीं होता। यह तो समन्वय ही प्रबन्ध का ऐसा

RIL-080

कार्य है जो इसे सम्भव बनाता है।

iv) सकल उपलब्धियॉ (Total Accomplishments)

यदि यह मान भी लिया जाय कि एक समूह में समानता की पर्याप्त मात्रा है और इसके विभिन्न सदस्य सामान्य लक्ष्य की पूर्ति के लिए भरसक प्रयत्न करते हैं। फिर भी सामूहिक प्रयासों की प्राप्ति के लिए समन्वय की नितान्त आवश्यकता होती है क्योंकि सामूहिक प्रयासों की उपलब्धियॉ व्यक्तिग प्रयत्नों की उपलब्धियों से कहीं अधिक होती हैं। अतः समूह प्रयासों में सामंजस्य अत्यन्त आवश्यक है। समूह प्रयासों में सामंजस्य स्थापित करने से कुल उपलब्धि में वृद्धि होती है और उपक्रम का चहुमुखी विकास होता है। जार्ज आर. टेरी के शब्दों में "किसी समूह के अन्तर्गत समन्वय कुल प्राप्ति में व्यक्तिगत प्रयासों की कुल उपलब्धि में वृद्धि सम्भव करता है। दस कर्मचारी जो व्यक्तिगत रूप में कार्य करते हैं की तुलना में विभाग ए के दस कर्मचारी जो आपस में समन्वित हैं, की कुल उपलब्धि अधिक होगी।"

v) उच्च मनोबल (High Morale)

जिन साधनों द्वारा कर्मचारियों की कार्य–कुशलता में वृद्धि की जाती है उनमें समन्वय भी एक प्रमुख साधन है। यह कर्मचारियों को कार्य सन्तुष्टि प्रदान करता है और उनके मनोबल के सामान्य स्तर को ऊँचा उठाता है।कुशल नेतृत्व और समृद्ध भावना के कारण की जाने वाली क्रमबद्ध क्रियाएं कर्मचारियों को कार्य से जहॉ एक ओर व्यक्ति गत सन्तुष्टि प्रदान करती है वहीं दूसरी ओर सामाजिक सन्तुष्टि भी प्रदान करती है। फलतः उनका मनोबल उच्च होता है।

vi) सन्तुलन (Balance)

यह सर्वविदित सत्य है कि एक सा कार्य या उसी तरह का कार्य करने वाले व्यक्तियों की क्षमताओं में पर्याप्त भिन्नता होती है। कुछ व्यक्ति अधिक योग्य होते हैं तो कुछ कम। कुछ व्यक्ति तीव्र गति से कार्य करते हैं तो कुछ मन्द गति से। ईश्वर प्रदत्त मनुष्यों में किसी कार्य को करने की भिन्नता स्वाभाविक है पर उसमें सन्तुलन स्थापित किया जा सकता है। संतुलन ही समन्वय का दूसरा रूप है।

vii) न्यूनतम लागत पर अधिकतम परिणामों की प्राप्ति

समन्वय एवं विभिन्न व्यक्तियों की क्रियाओं में सन्तुलन स्थापित करता है। और न्यूनतम लागत पर अधिकतम परिणामों की प्राप्ति सम्भव बनाता है। यह ही प्रबन्ध का एक ऐसा कार्य है जो अधिक शीघ्र कार्य करने वाले व्यक्ति सामान्य गति से और धीमी गति से कार्य करने वाले को तीव्र गति से कार्य करने योग्य बनाता है ताकि समग्र रूप में सम्पूर्ण उपक्रम का कार्य सुचारू रूप से चलता रहे। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि असमानताओं में सन्तुलन स्थापित करने के लिए समन्वय की नितान्त आवश्यकता है।

viii) अन्य (Others)

1. समन्वय एक रचनात्मक शक्ति है जो वैयक्तिक एवं समूह प्रयासों को गति

प्रदान करती है और नवीनतम वस्तुओं का उत्पादन सम्भव बनाती है।

2. टैरी के अनुसार अच्छा समन्वय संस्था में अच्छे कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि करता है और उन्हें संस्था में बनाये रखता है।

3. समन्वय संस्था के प्रसाधनों के दुरूपयोग को रोकता है।

4. समन्वय विभिन्न व्यक्तियों को एक सूत्र में पिरोकर किसी कार्य को अच्छे ढंग से सम्पन्न कराता है और सौहार्दपूर्ण मानवीय सम्बन्धों की स्थापना करता है।

5. समन्वय से एक उपक्रम को विशिष्टीकरण के लाभों की प्राप्ति होती है।

6. समन्वय निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु विभिन्न क्रियाओं को व्यवस्थित क्रम करता है।

7. समन्वय के माध्यम से प्रबन्धक अपने सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वाह ठीक ढंग से करने में समर्थ होते हैं।

2.3.3 समन्वय के सिद्धान्त (Principle of Coordination)

समन्वय की विचारधारा के सम्बन्ध में सबसे अधिक मौलिक और रचनात्मक धारणा मेरी पार्कर फोलेट की है। इन्होंने समन्वय के कुछ निम्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है–

i) प्रत्यक्ष सम्पर्क (Direct Contact)

समन्वय का यह सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि एक उपक्रम में समन्वय की स्थापना व्यक्तियों में व्यक्तिगत और समतल सम्बन्धों द्वारा ही होनी चाहिए। व्यक्तियों के मध्य विचारों, आदर्शों एवं लक्ष्यों का प्रत्यक्ष व्यक्तिगत सम्प्रेषण द्वारा आसानी से आदान प्रदान किया जा सकता है। और सामान्य एवं व्यक्तिगत लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सकती है। प्रत्यक्ष सम्पर्क द्वारा जहॉ एक ओर उपक्रम के उद्देश्य एवं कार्य विधियों को आसानी से स्पष्ट किया जा सकता है वहॉ दूसरी ओर भ्रम एवं अस्पष्टता का तुरन्त निवारण भी किया जा सकता है। प्रत्यक्ष सम्पर्क के अभाव में लिखित सम्प्रेषण से सन्देश का गलत अर्थ लगाया जा सकता है और व्यक्तियों में विपरीत विचारधारा उत्पन्न हो सकती है।

ii) प्रारम्भिक स्थिति में समन्वय (Coordination in Early Stages)

समन्वय का यह सिद्धान्त स्पष्ट करता है कि समन्वय की स्थापना नियोजन तथा नीति निर्धारण की प्रारम्भिक स्थिति में ही होनी चाहिए। जैसा कि हमें विदित है कि प्रबन्ध के सोचने के कार्य के पश्चात करने का कार्य प्रारम्भ होता है। अतः समन्वय की स्थापना का कार्य प्रारम्भिक स्तर (नियोजन एवं नीति निर्धारण) पर ही किया जाना चाहिए, अन्यथा क्रियान्वयन कार्य की विभिन्न क्रियाओं में समन्वय स्थापित करना एक दुष्कर कार्य हो जाता है। उदाहरण के लिए विभागीय योजनाओं के निर्माण के समय उनकी क्रियाओं में समन्वय सहज ही स्थापित किया जा सकता है किन्तु इन्हें

कार्यान्वित करने के प्रयासों को प्रारम्भ करने के पश्चात उनमें समन्वय स्थापित करना बहुत ही कठिन हो जाता है। अतः समन्वय की स्थापना का कार्य प्रारम्भिक स्थिति में ही किया जाना चाहिए।

iii) पारस्परिक सम्बन्ध (Reciprocal relationship)

समन्वय के सिद्धान्त के अनुसार किसी स्थिति विशेष में सभी घटक एक दूसरे से सम्बन्धित होते है। उदाहरण के लिए, 'अ' और 'ब' एक साथ कार्य करते हैं तो ऐसी स्थिति में दोनों एक दूसरे से प्रभावित होते हैं।अन्य शब्दों में 'अ' 'ब' से प्रभावित होता है। और 'ब' 'अ' से प्रभावित होता है। इसी प्रकार संमस्त उपक्रमों में कार्य करने वाले एक व्यक्ति स्वयं दूसरों से प्रभावित होते हैं और दूसरों को स्वयं भी प्रभावित करते हैं। अतः स्पष्ट है कि एक उपक्रम के सभी घटकों में पारस्परिक सम्बन्ध होते हैं जो एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

iv) निरन्तरता (Continuity)

मेरी पार्कर फोलेट ने ठीक ही कहा है कि, समन्वय एक निरन्तर प्रक्रिया है। अतः उपक्रम की विभिन्न क्रियाओं में समन्व्य स्थापित करने के लिए उच्च अधिकारियों को सदैव प्रयास करते रहना चाहिए। समन्वय की स्थापना न तो एक दो दिन में ही हो जाती है और न ही अवसरों पर छोड़ी जा सकती है। यह तो प्रबन्ध का एक ऐसा कार्य है जिसे प्रबन्धक को निरन्तर करते रहना चाहिए। यद्यपि कभी कभी विशेष परिस्थितियों का सामना करने के लिए समन्वय स्थापित करने वाली समितियों की स्थापना की जाती है। लेकिन वे निरन्तर प्रयत्न का स्थान ग्रहण नहीं कर सकती। अन्य शब्दों में इन समितियों की स्थापना समन्वय के लिए किये जाने वाले प्रयासों की इतिश्री नही हो जाती।

मेरी पार्कर फोलेट द्वारा प्रतिपादित उपर्युक्त सिद्धान्तों के अतिरिक्त समन्वय की स्थापना के समय निम्न सिद्धान्तों को भी ध्यान में रखना चाहिए।

v) गतिशीलता (Dynamism)

प्रबन्ध के अन्य कार्यों की भॉति समन्वय में भी कठोरता न होकर गतिशीलता होनी चाहिए। समन्वय के इस सिद्धान्त के अनुसार बाहरी वातावरण और आन्तरिक क्रियाओं एवं निर्णयों में परिवर्तन होने के कारण व्यावसायिक परिस्थितियों में भी यदा कदा परिवर्तन होता रहता है। अतः समन्वय की तकनीकों में भी परिवर्तन करते रहना चाहिए। कूट्ज एवं बो'डोनेल के अनुसार "अच्छा समन्वय भयंकर बिन्दुओं को उनके उदगम स्थान पर समाप्त कर देगा। सर्वोत्तम समन्वय इन बिन्दुओं का पहले से अनुमान लगा लेगा और उनकी उत्पत्ति को रोक देगा।"

vi) आत्म समन्वय (Self Co-ordination)

आत्म समन्वय प्रत्येक उपक्रम के विभिन्न विभागों के मध्य पाये जाने वाले पारस्परिक सम्बन्धों का परिणाम है। किसी भी उपक्रम में प्रत्येक विभाग की सफलता

अन्य अनेक विभागों की सफलता पर निर्भर होती है। उदाहरण के लिए निर्माण विभाग की सफलता अन्य अनेक विभागों जैसे श्रम विभाग श्रम सम्बन्ध, विज्ञापन विभाग प्रेषण विभाग आदि पर निर्भर है। फिर भी निर्माण विभाग का इन अन्य विभागों पर कोई प्रत्यक्ष अधिकार नहीं होता। इन सभी विभागों में आपस में पारस्परिक सम्बन्ध होते हुए भी किसी को एक दूसरे को निर्देश देने का अधिकार नहीं होता। ऐसी स्थिति में आत्म समन्वय की आवश्यकता उत्पन्न होती है।आत्म समन्वय से आशय है प्रत्येक विभागाध्यक्ष/अधिकारी द्वारा अपने निर्धारित उत्तरदायित्व का इस ढंग से निर्वाह करना है कि अन्य विभागीय क्रियाओं पर कोई विपरीत प्रभाव न पड़े। आत्म समन्वय के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने प्रयासों को अन्य कार्य करने वाले व्यक्तियों की सुविधा को ध्यान में रखते हुए समायोजित करें।

आत्म समन्वय के अन्तर्गत उपक्रम के अधिकारियों के मध्य जहॉ एक ओर पारस्परिक सम्प्रेषण की मात्रा काफी हो जाती है वहॉ दूसरी ओर प्रत्येक अधिकारी अन्य अधिकारियों की सुविधानुसार अपनी योजना, कार्य पद्धतियॉ आदि में परिवर्तन करने का किसी न किसी रूप में विरोध करता है। अतः योग्य नेतृत्व द्वारा आत्म समन्वय की स्थापना की जानी चाहिए।

vii) समय सिद्धान्त (Principle of Timing)

समन्वय का यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि प्रत्येक कार्य सही समय पर किया जाना चाहिए। अतः समन्वय की स्थापना यथा समय कर लेनी चाहिए। यदि निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु किये जाने वाले प्रयासों में यथा समय समन्वय स्थापित नहीं किया गया तो प्रयासों का दुरूपयोग होता ओर असफलता का सामना करना पड़ता। यथा समय स्थापित किया गया समन्वय जहॉ एक ओर प्रयासों की सफलता में वृद्धि करता है वहॉ दूसरी ओर निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति भी करता है। कहा गया है कि, समस्या का सही समय निवारण या रोकथाम उसके उपचार से ज्यादा महत्वपूर्ण है इसलिए समय रहते समन्वय बड़ी असफलता को रोक सकता है। अर्थात भविष्य में होने वाली असफलताओं को उचित समन्वय के द्वारा वर्तमान में ही सुधारा जा सकता है।

2.3.4 प्रबन्ध की स्थापना/सार के रूप में समन्वय (Essence of Management)

'समन्वय समूह लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु व्यक्तिगत प्रयत्नों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए प्रबन्ध का सार है।

"Coordination is the essence of management for the achievement of hormony of individual efforts towards the accomplishment of group goals."

समन्वय प्रबन्ध का एक प्रकार्य मात्र ही नहीं है अपितु सार भी है । यह एक सतत प्रक्रिया है जिसके माध्यम से निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु किये जाने वाले विभिन्न प्रयासों में एकता एवं सामंजस्य स्थापित किया जाता है।

समन्वय को प्रबन्ध की आत्मा कहने के महत्वपूर्ण बिन्दु निम्न हैं –

1. यह प्रबन्ध का प्रकार्य मात्र ही नहीं, अपितु सार भी है।
2. यह एक सतत् प्रक्रिया है।
3. यह सामान्य उद्देश्य की पूर्ति को सरल एवं सुविधाजनक बनाता है।
4. यह समूह प्रयासों का क्रमानुसार संयोजन है।
5. यह निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु की जाने वाली क्रियाओं में एक रूपता लाता है।
6. यह समूह प्रयासों का क्रमानुसार संयोजन है।
7. यह सहकारिता से भिन्न है।
8. यद्यपि यह उच्च अधिकारियों के उत्तरदायित्व में सम्मिलित किया जाता है लेकिन अधीनस्थ अपने उत्तरदायित्व से वंचित नहीं हो सकते।
9. न्यूमेन (Newman) के अनुसार यह कोई प्रबन्ध की पृथक क्रिया नहीं है, यह तो प्रशासन के विभिन्न स्तरों का अंग है।

2.4 सारांश (Summary)

समन्वय वास्तव में स्वैच्छिक कार्यों के द्वारा सामान्य उद्देश्यों के लिए आपस में मिलकर एक साथ कार्य करना है। इसके लिए मीटिंग, समिति निर्माण तथा अच्छे सम्प्रेषण का प्रयोग किया जा सकता है। समन्वय क्रियाओं द्वारा कर्मचारी अधिकारी संस्था के सदस्यों के कार्यों को इस प्रकार निर्देशित करते हैं कि अंतिम परिणाम पूर्ण समन्वित हो सके। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सारांश के रूप में, समन्वय के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों द्वारा विभिन्न विचार प्रस्तुत किये गये हैं जो सार रूप में निम्नलिखित है –

- यह एक सतत् प्रक्रिया है।
- यह प्रबन्ध का एक कार्य है।
- यह अधिशासी कार्य है।
- यह नियन्त्रण का एक व्यापक रूप है।
- यह क्रियाओं में एकरूपता लाता है।

2.5 शब्दावली

- **निर्देशन की एकता (Unity of Command)**– निर्देशन की एकता प्रबन्ध का एक आधारभूत सिद्धान्त है।
- **पर्यवेक्षक द्वारा समन्वय (Coordination by Supervision)** – पर्यवेक्षक का मुख्य कर्तव्य अपने अधीनस्थों की क्रियाओं का पर्यवेक्षण करके उनकी क्रियाओं में समन्वय स्थापित करना होता है।
- **आदेश श्रृंखला द्वारा समन्वय (Coordination by Chain of Command)** – अधिकारियों को अपने अधीनस्थों को आदेश देने का अधिकार।

2.6 स्व–परक प्रश्न

1. प्रबन्ध प्रक्रिया में समन्वय के अर्थ एवं महत्व को समझाइये।
2. समन्वय क्या है? समन्वय के आधारभूत सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
3. "समन्वय प्रबन्ध का सार है किन्तु इसकी सफलता संगठन के प्रत्येक सदस्यों के प्रयत्नों पर निर्भर करती है"। समझाइये।
4. समन्वय को समझाते हुए समन्वय के महत्व का सविस्तार वर्णन कीजिएं।

इकाई –3 नियंत्रण

इकाई कीं रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 नियंत्रण

3.4 नियंत्रण का अर्थ

3.5 नियंत्रण की विशेषताएँ

3.5.1 एक उपक्रम के लिए नियंत्रण की आवश्यकता एवं महत्व

3.5.2 नियंत्रण व्यवस्था की आवश्यकताएं अथवा उ

3.6 नियंत्रण की तकनीकियाँ

3.6.1 नियंत्रण के स्वरूप

3.6.2 नियंत्रण का मानवीय पक्ष

3.7 सारांश

3.8 शब्दावली

3.9 स्व–परक प्रश्न

3.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- नियंत्रण का अर्थ बता सकें।
- नियंत्रण की विभिन्न विशेषताओं का वर्णन कर सकें।
- नियंत्रण की तकनीकियों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकें।
- नियंत्रण में उठाये जाने वाले कदमों को समझ सकें।

3.2 प्रस्तावना (Introduction)

किसी भी उपक्रम की सफलता उसके प्रभावशाली नियंत्रण पर निर्भर करती है। इसलिए नियंत्रण को क्रमानुसार इस इकाई में प्रस्तुत किया गया है। जिसमें नियंत्रण का अर्थ, नियंत्रण की विशेषताएं, नियंत्रण की विभिन्न तकनीकियॉ एवं नियंत्रण में उठाए जाने वाले विभिन्न कदमों को बताया गया है। नियंत्रण की सम्पूर्ण प्रक्रिया को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाय कि उपक्रम की सफलता निश्चित हो सके।

3.3 नियंत्रण (Control)

प्रबन्ध में नियंत्रण का अर्थ परीक्षण से होता है। इससे यह ज्ञात होता है कि, उपक्रम का कार्य योजनानुरूप चल रहा है।इसका तात्पर्य सूचनाओं या जानकारी के आधार पर कार्यवाही करने से है। नियंत्रण में यह निश्चित किया जाता है कि हम क्या करना चाहते हैं और फिर देखना चाहिए कि क्या किया जा रहा है?

जो दूसरे के कार्यों की जांच पड़ताल कर उनमें संशोधन करता है। ये कुछ ध ारणाएं हैं जो सामान्यतः नियंत्रण के सम्बन्ध में देखी और पाई जाती हैं। लेकिन प्रस्तुत नियंत्रण , प्रबन्ध न होकर प्रयत्न का एक अंश मात्र है अथवा इसे प्रबन्ध के विभिन्न कार्यों में से मुख्य कार्य रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

बहुत से व्यक्ति नियंत्रण को प्रबन्ध का पर्यायवाची मानते हैं। जब प्रबन्ध नियंत्रण का कार्य कर रहा होता है तो लगता है मानो वह उपक्रम के प्रबंध में संलग्न है। उस व्यक्ति को हम आसानी से प्रबन्ध बल का सदस्य स्वीकार कर लेते हैं।

3.4 नियंत्रण का अर्थ (Meaning of Control)

प्रतिमान स्थापित करना एवं पड़ताल करना कि निष्पादित कार्य स्थापित प्रतिमानों के अनुसार निष्पादित किये गये हैं या नहीं। यदि नहीं किये गए तो सही समय पर सही कदम उठाना नियंत्रण है। टैरी के अनुसार नियंत्रण, यह निर्धारित करने का है कि क्या निष्पादित किया जाता है अर्थात प्रतिमानों की स्थापना, क्या निष्पादित किया जा रहा है अर्थात सम्पादन यानि सम्पादन का मूल्यांकन तथा आवश्यकता होने पर संशोधनात्मक उपाय करने जिससे कि सम्पादन योजना के अनुसार अर्थात प्रतिमानों के अनुरूप हो, का एक प्रक्रम है।

मेरी कुशिगनाइल्स के अनुसार, "नियंत्रण , लक्ष्य की प्राप्ति के लिए की जाने वाली क्रियाओं के बीच सन्तुलन की स्थापना है।"

मैसी, नियन्त्रण को एक प्रक्रम मानते हैं जिसके द्वारा वर्तमान निष्पादन की नापतौल की जाती है तथा पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए मार्ग दर्शन प्राप्त किया जाता है।

फिलिप कोटलर अपनी पुस्तक (Marketing Management) में नियन्त्रण को एक प्रक्रम बताते हैं। जिसके अन्तर्गत ऐसे कदम उठाये जाते हैं जिससे वास्तविक परिणामों को अपेक्षित परिणामों के अधिकाधिक नजदीक लाया जा सके।

रॉबर्ट एन्बीनो के अनुसार प्रबन्ध नियंत्रण एक ऐसा प्रक्रम है जो प्रबन्धकों को इस बात का आश्वासन दिलाता है कि संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए साधनों की

RIL-080

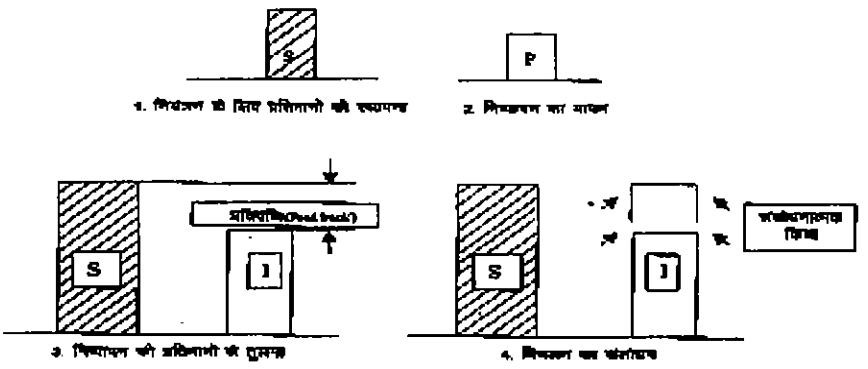
उपलब्धि एवं प्रयोग प्रभावशाली रूप में तथा कुशलता से किया जा सके।

इस प्रकार हम नियंत्रण को एक प्रक्रम के रूप में परिभाषित कर सकते हैं। जो यह निश्चित करता है कि निष्पादन, योजना के अनुसार हो रहा है। इस प्रकार पीटर ड्रकर के शब्दों में नियन्त्रण साधनों एवं परिणामों तथा निक्ज (आउटपुट) एवं प्रयत्नों के मध्य सन्तुलन की स्थापना करता है। नियंन्त्रण को अधीनस्थों पर आधिपत्य स्थापित करने का साधन नहीं माना जाना चाहिए। यह तो उनको मार्ग दर्शन प्रदान करने अथवा निवेशित करने का एक ऐसा साधन है जिससे कि पूर्व निर्धारित लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके। नियंत्रण की प्रकृति के सम्बन्ध में सामान्यतः यह भ्रान्ति पाई जाती है कि नियंत्रण नकारात्मक होता है अर्थात् दूसरों के कार्यों पर रोक लगाना, उनकी क्रियाओं कों प्रतिबन्धित करना तथा अधिकारों पर रोक लगाना, नियन्त्रण के अन्तर्गत आता है। लेकिन यह विचारधारा भ्रामक है। नियन्त्रण, बड़े एवं जटिल संस्थानों के प्रबन्ध को सम्भव बनाता है, निष्पादन को अपेक्षाओं के अनुरूप करता है तथा लक्ष्यों की प्राप्ति को निश्चित करता है। सत्ता का प्रत्यायोजन एवं विकेन्द्रीकरण नियन्त्रण की संकल्पना के कारण ही सम्भव हो पाता है।

नियंत्रण की प्रक्रिया (Process of Control) – नियंत्रण की प्रक्रिया में मुख्यतः चार निम्नांकित कदम उठाने की आवश्यकता होती है । वे कदम हैं –

1. प्रतिमान की स्थापना । यह नियन्त्रण का आधार माना जाता है।
2. निष्पादन की नापतौल ।
3. निष्पादन की प्रतिमानों से तुलना तथा दोनों के मध्य अन्तर को ज्ञात करना।
4. प्रतिकारी क्रिया द्वारा विचलन का संशोधन करना।

नियंत्रण के लिए उठाये जाने वाले इन कदमों को आसानी से निम्नानुसार समझा जा सकता है।



चित्र – नियंत्रण की प्रक्रिया

चित्र – नियंत्रण की प्रक्रिया

चित्र का प्रथम भाग यह दर्शाता है कि क्या किया जाना चाहिए अथवा अपेक्षाएं क्या हैं? दूसरा भाग क्या किया जा रहा है, को दर्शाता है। चित्र के तीसरे भाग में परिणामों की अपेक्षाओं के साथ तुलना की जा रही है तथा चित्र का अन्तिम भाग निष्पादन की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति को दर्शाता है। अस्वीकृत की स्थिति में संशोधनात्मक क्रियाओं की आवश्यकता उत्पन्न होती है। संशोधनात्मक कदम उठाने में यह भी सम्भव है कि प्रतिमानों पर पुनर्विचार किया जाय। नियंत्रण प्रबन्ध का अंतिम घटक कहा जाता है और प्रबन्धकों की सफलता में नियंत्रण महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। नियंत्रण सतत् चलने वाली प्रक्रिया है।

3.5 नियंत्रण की विशेषताएँ (Characteristics of Control)

नियंत्रण के प्रमुख लक्षणों का वर्णन इस प्रकार से किया जा सकता है–

i) यह एक प्रबन्ध एवं प्रबंधक का कार्य है। नियंत्रण करने का कार्य लेखा अधिकारी का होता है। लेखा अधिकारी अपने इस कार्य में 'कर्मचारी अर्थात विशेषज्ञों की सहायता एवं सलाह ले सकता है, जैसे प्रतिमानों की स्थापना करना एवं संशोधनात्मक क्रियाओं का सुझाव आदि।

ii) नियंत्रण की गति वृत्तीय होती है। नियंत्रण का आधार योजनाएं एवं संगठन के लक्ष्य होते हैं जैसा कि हम नियंत्रण की परिभाषा एवं अर्थ में देख चुके हैं, नियन्त्रण कार्य लक्ष्यों की प्राप्ति तथा निर्धारित योजनाओं को क्रियान्वित करने से सम्बन्धित होता है। प्रबन्ध कार्य आयोजन से आरम्भ होते हैं, तथा इस क्रम में नियंत्रण अन्तिम कार्य होता है। नियन्त्रण का आयोजन से सम्बन्ध होने के कारण इसकी गति वृत्तीय हो जाती है। चित्र की सहायता से इस बात को सुगमता से समझा जा सकता है।

iii) नियंत्रण भविष्यात्मक होता है नियन्त्रण की सार्थकता इसी में है कि प्रतिकारी कदम उठाये जाये जिससे त्रुटियों की सम्भावना कम से कम रह जाये, भूत का अध्ययन एवं विश्लेषण उन्हीं परिस्थितियों में उपयोगी माना जा सकता है जबकि वह भविष्य का मार्गदर्शन कर, उस प्रकार की त्रुटियों की पुनरावृत्ति पर रोक लगाए।

iv) नियन्त्रण की आवश्यकता प्रबन्ध के सभी स्तरों पर होती है। प्रत्येक प्रवराधिकारी को अपने अधीनस्थों की क्रियाओं को नियन्त्रित करने का अधिकार स्वाभाविक रूप में प्राप्त होता है। जिस प्रकार प्रबन्ध का अन्तिम दायित्व शीर्ष प्रबन्धकों का होता है उसी प्रकार नियन्त्रण का अन्तिम अधिकार भी शीर्ष प्रबन्धधिकारियों में निहित होता है।

v) नियन्त्रण एक सतत चलने वाली प्रक्रिया होती है। नियन्त्रण के माध्यम से, उद्देश्यों, प्रतिमानों, योजनाओं, कार्यक्रमों नीतियों, कार्य विधियों आदि का निरन्तर रूप

से निगाह रखने उनका विश्लेषण करने तथा आवश्यकतानुसार प्रतिकार एवं संशोधन करने की आवश्यकता होती है। जिस प्रकार जहाज का कप्तान, बराबर इस बात को निगाह रखता है कि जहाज निर्दिष्ट दिशा में अग्रसर हो रहा है या नहीं, उसी प्रकार प्रबन्धक नियंत्रण के माध्यम से योजनाओं की सही ढंग से क्रियास्थिति के प्रति आश्वासित होना चाहता है।

vi) नियंत्रण की प्रकृति स्वीकार्य योग्य कार्यों एवं क्रियाओं को प्रोत्साहन तथा अस्वीकार्य योग्य कार्यों एवं क्रियाओं को प्रतिबन्धित करना, नियंत्रण का कार्य होता है।

vii) नियंत्रण आन्तरिक एवं बाह्य तथा प्रत्यक्ष एवं परोक्ष हो सकता है।

3.5.1 एक उपक्रम के लिए नियंत्रण की आवश्यकता एवं महत्व (Need and Importance of Control in an Enterprise) –

नियंत्रण की आवश्यकता एवं महत्व को सभी स्वीकार करते हैं। विद्वान लिखते हैं कि यदि प्रबन्ध के सभी मौलिक कार्यों, जैसे आयोजन, संगठन, समन्वय अभिप्रेरण आदि को त्रुटिहीन रूप में निष्पादित किया जा सके, तो नियन्त्रण की कोई आवश्यकता नहीं होगी। लेकिन ऐसा हो पाना सम्भव नहीं है। गलतियों का होना, प्रयत्नों का अपनिर्देशन परिस्थितियों एवं वातावरण में परिवर्तन आदि कुछ ऐसे कारण है जिसकी वजह से लक्ष्यों एवं निष्पादन में विचलन होना स्वाभाविक एवं प्राकृतिक है। योजनाएं अधूरी रह जाती हैं, संगठन अपर्याप्त रह जाता है तथा अभिप्रेरणा असंवेदनशील हो जाती है इन्हीं कारणों की वजह से नियन्त्रण को प्रबन्ध का एक अपरिहार्य कार्य माना जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ और विशेष कारण हैं जो नियंत्रण की आवश्यकता एवं महत्व को उजागर करते हैं।

- व्यवसाय का बढ़ता हुआ आकार एवं जटिलताएं, नियंत्रण के महत्व को और अधिक बढ़ाता है उद्योग एवं व्यवसाय की पूँजी प्रधान प्रकृति तथा उसमें निहित जोखिम नियंत्रण को अपरिहार्य बनाती है। आधुनिक उद्योग एवं व्यवसाय की असफलता केवल कुछ ही व्यक्तियों को प्रभावित नहीं करती बल्कि इसका सारी अर्थ व्यवस्था एवं समाज पर दूरभाषी एवं व्यापक रूप से घातक प्रभाव पड़ता है। इसलिए यह आवश्यक है कि ऐसी व्यवस्था की जाय जिससे असफलताओं का पूर्व संकेत मिल सके तथा समय रहते उनसे बचने का भरसक प्रयत्न किया जा सके। नियंत्रण की आवश्यकता एवं महत्व इन्हीं कारणों से प्रकट होती हैं

- व्यवसाय का विज्ञापन द्रुत गति से अप्रचलित होना, प्रतिस्पर्द्धा की तीव्रता,

सरकारी हस्तक्षेप में निरन्तर वृद्धि तथा श्रम संगठनों का शक्तिशाली होना, कुछ अतिरिक्त कारण है जिनकी वजह से प्रभावशाली एवं कार्यक्षम नियन्त्रण की आवश्यकता का अनुभव किया जाता है।

- वातावरण में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। प्रबन्ध का प्रणाली के रूप में अध्ययन करते समय यह स्पष्ट किया जा चुका है कि व्यवसाय, वृहत सामाजिक, आर्थिक, आद्योगिक, राजनैतिक जैसी विभिन्न प्रणालियों की एक उप प्रणाली के रूप में होता है। वे सभी प्रणालियां प्रबन्ध को उसके कार्य क्षेत्र एवं परिणामों को प्रभावित करती रहती हैं। वे प्रणालियॉं मिलकर वातावरण का निर्माण करती हैं। और वातावरण में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। इन परिस्थितियों में नियंत्रण की आवश्यकता एवं महत्व का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

- सत्ता का विकेन्द्रीयकरण अधिकारों का प्रत्यायोजन एवं प्रबन्ध में सहभागिता, जैसी संकल्पनाओं का आजकल प्रचलन है। इन संकल्पनाओं को साकार रूप देने के लिए नियन्त्रण व्यवस्था को सुदृढ़ बनाना अत्यन्त आवश्यक होता है। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि प्रभावी एवं कार्यश्रम नियन्त्रण की विद्यमानता के फलस्वरूप ही इन संकल्पनाओं को अपनाया जा सकता है।

- नियंत्रण के फलस्वरूप कार्यकुशलता में वृद्धि तथा लागत में कमी की जा सकती है।कर्मचारियों के मनोबल को बनाये रखा जा सकता है तथा अनुशासन का पालन कराया जा सकता है। नियन्त्रण, निर्णयन में सहायक तथा लक्ष्यों की प्राप्ति को सम्भव बनाता है।

- नियंत्रण प्रबन्ध में सहायता प्रदान करता है, कर्मचारियों को अच्छा और अधिक कार्य करने के लिए प्रेरित करता है, नेतृत्व को सफल बनाता है, संचार व्यवस्था खुली रखता है तथा अपनिर्देशन की प्रवृत्ति पर रोक लगाता है। इस प्रकार नियन्त्रण प्रबन्धकों का सहायक एवं कर्मचारियों का मार्गदर्शक सिद्ध होता है जिससे कार्य निष्पादन सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

3.5.2 नियंत्रण व्यवस्था की आवश्यकताएं अथवा अपेक्षाएं (Expectations and needs of Control system) –

कुन्ट्ज तथा ओ'डोनेल ने नियन्त्रण व्यवस्था की निम्नांकित दस आवश्यकताएं बतलाई है। वे आवश्यकताएं हैं –

RIL-08

i) **नियन्त्रण को क्रियाओं की प्रकृति एवं आवश्यकताओं को प्रतिबिम्बित**

करना चाहिए– एक विभाग अथवा उपक्रम की आवश्यकताओं के अनुसार तैयार की गई नियन्त्रण की व्यवस्था में यह आवश्यक नहीं है कि यह दूसरे विभागों अथवा अन्य उपक्रमों के लिए भी उतनी उपयुक्त सिद्ध हो। उदाहरण के लिए उत्पादन विभाग की नियन्त्रण व्यवस्था, विपणन विभाग के लिए उपयुक्त नहीं होगी।

नियन्त्रण की कुछ तकनीकी जैसे बजट, वित्तीय अनुपात, मानक लागत लेखा पद्धति आदि को सामान्यतः विभिन्न परिस्थितियों में अपनाया जा सकता है। इस प्रकार की सामान्य तकनीकों को अपनाने से पूर्व उपक्रम की अपनी योजनाओं में सामरिक महत्व के तत्वों को पहचानना चाहिए और उन्हीं के अनुसार नियन्त्रण व्यवस्था को लागू करना चाहिए।

ii) विचलन की तत्परता से सूचना – नियन्त्रण व्यवस्था का कार्य यह है कि विचलन का पता लगाए और उसकी प्रबन्धकों को शीघ्रताशीघ्र सूचना दे। लेकिन एक आदर्श नियंन्त्रण व्यवस्था वह होगी जो सम्मानित भावी विचलन के प्रति प्रबन्धकों को सजग कर सके। विचलन की शुद्धता के स्थान पर उनकी समयोचितता अधिक महत्वपूर्ण है इस दृष्टि से यदि प्रबन्धकों को अनुमानित आंकड़े भी दिये जा सकें तो ठीक रहेगा। विचलन की त्वरित सूचना से नियंत्रण का प्रयोग प्रभावशाली ढंग से किया जा सकेगा।

iii) नियंत्रण व्यवस्था भविष्योन्मुखी होनी चाहिए – नियंत्रण का सम्बन्ध भूतकाल से न होकर भविष्य से होना चाहिए। स्व परीक्षा के स्थान पर गलतियों को रोकना अथवा उनका समयोचित संशोधन करना नियन्त्रण का उद्देश्य होता है। नियंत्रण एक ऐसी युक्ति है जिससे भविष्य की अनिश्चितताओं एवं भविष्य मे होने वाली समस्याओं को रोका जा सकता है।

iv) नियंत्रण करते समय अपवादों पर विशेष ध्यान – नियंत्रण व्यवस्था को क्रान्तिक बिन्दुओं पर होने वाले अपवाद की ओर प्रबन्धकों का ध्यान आकर्षित करना चाहिए। प्रबन्ध एवं नियन्त्रण में अपवाद के सिद्धान्त का अत्यधिक महत्व है। प्रबन्धक को नियन्त्रण करते समय अपना स्थान अपवादों पर ही केन्द्रित करना चाहिए। लेकिन सभी अपवाद समान महत्व नहीं रखते। कुछ अपवाद अधिक महत्वपूर्ण होते हैं तो कुछ कम महत्व वाले। कच्चे माल की लागत में पॉच प्रतिशत का विचलन काफी महत्वपूर्ण हो सकता है। जबकि टेलीफोन के खर्च में बीस प्रतिशत का विचलन भी उतना महत्व नहीं रखता। अतः नियंत्रण व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जो क्रान्तिक महत्व के अपवादों

की ओर ध्यान आकर्षित कर सके।

v) नियन्त्रण उद्देश्यात्मक होने चाहिए – जहाँ तक सम्भव हो सके नियंत्रण परिमाणात्मक हो। यदि परिस्थितिवश नियन्त्रण परिमाणात्मक न हो सके तो भी वे निश्चयात्मक, निर्धारण योग्य एवं उद्देश्यात्मक होने चाहिए। संक्षेप में, नियंत्रण व्यवस्था की दृष्टि से स्थापित किये गये प्रतिमान शुद्ध उपयुक्त एवं उद्देश्यात्मक होने चाहिए।

vi) नियंत्रण लोचपूर्ण होने चाहिए – योजनाओं तथा वातावरण में समय समय पर परिवर्तन होना स्वाभाविक है। नियन्त्रण की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जिसे परिवर्तित परिस्थितियों में भी प्रभावी ढंग से अपनाया जा सके। उदाहरण के लिए हम बजट को नियन्त्रण की एक तकनीक के रूप में प्रयोग करते हैं। यदि वास्तविक बिक्री बजट द्वारा अनुमानित बिक्री से काफी अधिक है तो, बजट को हम नियन्त्रण के लिए प्रयोग में नहीं ला सकते। इसीलिए व्यावसायिक प्रतिष्ठानों में परिवर्ती बजट का प्रयोग किया जाता है। लोच की दृष्टि से यह आवश्यक है कि वैकल्पिक योजनाएं तैयार की जाए। इससे नियन्त्रण को भी लोचपूर्ण बनाया जा सकता है।

vii) नियन्त्रण व्यवस्था संगठन के प्रतिरूप को प्रतिबिम्बित करनी चाहिये– नियन्त्रण की व्यवस्था संगठन के प्रतिरूप को प्रतिबिम्बित करने वाली होनी चाहिए। इस दिशा में दायित्व केन्द्रों की स्थापना एक महत्वपूर्ण कदम माना जा सकता है। नियंत्रण व्यवस्था में संगठन की झलक प्रतिबिम्बित होने के साथ सुधारात्मक कदमों पर भी ध्यान देना चाहिये।

viii) नियंत्रण व्यवस्था मितव्ययी होनी चाहिए – साथ ही नियन्त्रण व्यवस्था सुगम एवं व्यावहारिक होनी चाहिए। नियन्त्रण व्यवस्था से उत्पन्न होने वाले लाभ, नियन्त्रण व्यवस्था पर किये जाने वाले व्यय से अधिक होने चाहिये। व्यवहार में नियन्त्रण व्यवस्था से उत्पन्न होने वाले लाभों की गणना कर पाना एक कठिन कार्य होता है। ऐसी स्थिति में हमें यह सोचना चाहिए कि नियन्त्रण व्यवस्था के प्रभाव में क्या स्थिति हुई होती। इस प्रकार एक छोटी कम्पनी, व्यापक नियन्त्रण व्यवस्था को नहीं अपना सकती। ऐसी व्यवस्था केवल बड़ी कम्पनियों के लिए ही उपयुक्त सिद्ध हो सकती है।

ix) नियन्त्रण व्यवस्था सरल होनी चाहिए – नियंत्रण व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जो आसानी से समझ में आ सके तथा सरल हों।

RIL-080

x) नियन्त्रण व्यवस्था केन्द्रीकृत होनी चाहिए – नियंत्रण व्यवस्था के फलस्वरूप संकोचनात्मक क्रियाएं की जानी चाहिए।

टैरी के अनुसार किसी नियन्त्रण व्यवस्था को लागू करने के लिए निम्नांकित तीन पूर्वावश्यकताओं की पूर्ति की जानी चाहिए। ये पूर्वावश्यकताएं हैं –

1. **आयोजन** – नियंत्रण का उद्देश्य निष्पादन की योजनानुसार करना होता है। बिना योजना के नियन्त्रण की व्यवस्था की संकल्पना नहीं की जा सकती।

2. **सूचना** – यह सूचना संगठन के उद्देश्यों, नियन्त्रण व्यवस्था के उद्देश्य, प्रतिमानों एवं निष्पादन में सम्बन्धित होनी चाहिए। सूचना शुद्ध एवं तत्परता से उपलब्ध होनी चाहिए।

3. नियंत्रण कर्ता को पर्याप्त अधिकार प्रदान किये जाने चाहिए जिससे कि वह क्रियाओं में आवश्यकतानुसार संशोधन कर सके।

3.6 नियंत्रण की तकनीकियाँ (Techniques of Control)

नियंत्रण को कार्यान्विति के लिए अनेकों प्राविधियों अथवा पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है। परिस्थितियों के अनुसार निम्न वर्णित पद्धतियों में से किसी भी एक या अधिक पद्धतियों का प्रयोग किया जा सकता है ये पद्धतियॉ निम्नानुसार हैं :–

i) अवलोकन (Observation) – प्रत्यक्ष अवलोकन एवं व्यक्तिगत सम्पर्क नियंत्रण की बहुत विश्वसनीय एवं प्रभावशाली तकनीक है। इन्हें और भी अधिक प्रभावी बनाने के लिए नियोजित ढंग से इनका प्रयोग किया जाना चाहिये। फौज, पुलिस और इसी प्रकार के सैनिक एवं अर्धसैनिक संगठनों में इस पद्धति का बड़े व्यापक रूप में प्रयोग किया जाता है। सरकारी कार्यालयों में किये जाने वाले निरीक्षण (Inspection) इसी तकनीक का दूसरा नाम है। व्यावसायिक प्रतिष्ठानों में भी केन्द्रीय कार्यालय के अधिकारियों द्वारा शाखा कार्यालयों का संदर्शन (Visit) भी तो यही पद्धति है। बिक्री संवर्धन, विज्ञापन अथवा बिक्री कर्ताओं (Salesmen) के प्रभाव की जानकारी प्राप्त करने के लिए, शहर के कुछ व्यावसायिक भवनों से मुलाकाल करने के अतिरिक्त अन्य कोई प्रभावी माध्यम नहीं है। व्यवसायिक प्रतिष्ठानों का आंतरिक निरीक्षण अवलोकन पद्धति का प्रतिरूप है।

अवलोकन विधि का दोष यह है कि इसमें समय बहुत अधिक लगता है। प्रबन्धक के लिए यह सम्भव भी नहीं हो पाता कि वह सभी स्थानों पर जा सके। इन दोषों

के रहते हुए भी यह तो स्वीकार करना पड़ेगा कि इस पद्धति की स्थानापन्न विधि उपलब्ध नहीं है।

ii) नीतियॉ (Policies) – पुनरावृत्तिपूर्ण समस्याओं से निपटने के उद्देश्यों से नीतियों का निर्धारण किया जाता है। नीतियों के स्पष्ट होने की दशा में निर्णयों में एकरूपता आती है तथा भेदभाव की सम्भावनाएं लगभग समाप्त हो जाती हैं। नीतियॉ निर्णयन में सहायक होने के साथ साथ प्रबन्धकों के कार्यों पर नियन्त्रण रखने में सहायक सिद्ध होती है। नीतियॉ निर्धारित होने से नियंत्रण करना आसान होता है। जिससे उठाए हुए कदमों एवं निर्धारित मापदण्डों में विचलन कम हो।

iii) उदाहरण (Example) – एक पुरानी कहावत है "उपदेश से उदाहरण श्रेयकर होता है"। प्रबन्धकों को चाहिए कि वे अपने आचरण एवं व्यवहार का कर्मचारियों एवं अधीनस्थों के समक्ष एक उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करे। प्रबन्धक अपने काम पर ठीक समय में पहुॅचकर दूसरे के समक्ष 'समय की पाबन्दी'का उदाहरण प्रस्तुत कर सकते हैं।कर्मचारी गण, प्रवर अधिकारियों के आचरण को एक मानक अथवा आदर्श के रूप में लेते हैं। जैसा कहा गया है कि प्रबन्धकों का आचरण उनके अधीनस्थों के कार्य को प्रभावित करता है।

iv) अभिलेख एवं प्रतिवेदन (Records and Reports) – कार्य का लेखा जोखा तथा महत्वपूर्ण विषयों से सम्बन्धित प्रतिवेदनों को नियमित रूप से भेजना, नियन्त्रण की दिशा में उठाया गया एक औपचारिक कदम है। सरकारी कार्यालयों में प्रतिवेदनों का नियन्त्रण विधि के रूप में काफी प्रयोग किया जाता है। प्रतिवेदनों का प्रारूप सरल होना चाहिए तथा उसमें अनावश्यक सामग्री का समावेश नहीं किया जाना चाहिए। प्रतिवेदनों की उपयोगिता का निश्चित अवधि के अन्तराल के पश्चात नियमित रूप से पुनरावलोकन किया जाना चाहिए अन्यथा अधीनस्थ कर्मचारियों में शिथिलता का आ जाना बड़ा स्वाभाविक होगा और इस प्रकार प्रतिवेदनों का नियन्त्रण एक तकनीक के रूप में प्रयोग बेकार सिद्ध होगा।

v) लिखित निर्देश (Written Instructions) – यथा सम्भव आदेश एवं निर्देश लिखित में दिये जाने चाहिए।इसमें स्पष्टता एवं निश्चियात्मकता आती है तथा साथ ही सम्भ्रान्ति की संभावनाएं समाप्त होती हैं। लिखित निर्देश तथा आदेशों का प्रयोग नियन्त्रण को सुलभ बनाता है।

vi) चार्ट एवं नियम पुस्तिका (Charts and Manuals) – संगठन चार्ट,

प्रगति चार्ट तथा इसी प्रकार अन्य चार्ट, चित्र, ग्राफ आदि का प्रयोग नियन्त्रण कार्य को सुलभ बनाता है। संगठन चार्ट से अधिकारियों की पारस्परिक सम्बन्ध स्थिति, उनके अधिकार क्षेत्र तथा दायित्वों का सुगमता से पता लग जाता है। नियम पुस्तक कार्यविधि का एक विस्तृत वर्णन होता है। इन सभी को एक प्रभावी नियन्त्रण व्यवस्था का आवश्यक अंग माना जाना चाहिए।

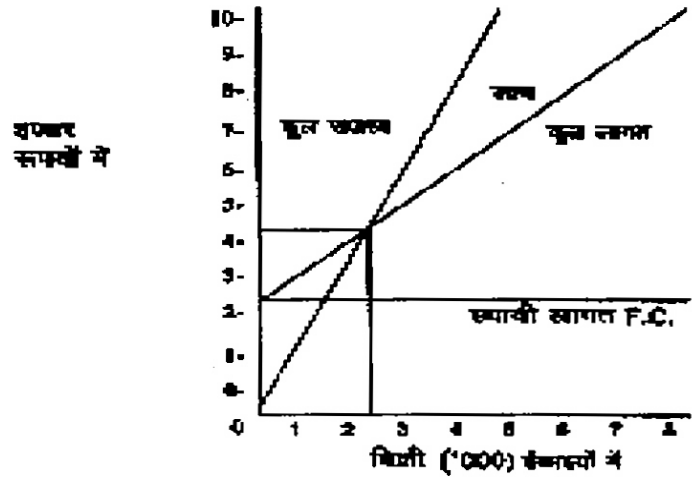
vii) बजट (Budget) – बजट के माध्यम से अनेक प्रयोजन सिद्ध होते हैं। यह आय व्यय का एक अनुमान है, समन्वय का साधन है, अभिप्रेरणा का माध्यम नियंत्रण तकनीक के रूप में किया जाने लगा है। बजटीय नियंत्रण (Budgetary control) विधि को प्रबंधक के शस्त्रागार में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण हथियार माना जाने लगा है। नियंत्रण तकनीक बजट का एक महत्वपूर्ण कार्य करता है जो स्वाभाविक नियंत्रण प्रक्रिया का अहम हिस्सा है।

viii) लेखांकन (Accounting) – सामान्य लेखांकन अथवा वित्तीय लेखांकन का व्यावसायिक प्रतिष्ठानों में एक महत्वपूर्ण नियंत्रण विधि के रूप में प्रयोग किया जाता है। मुद्रा की अप्राप्ति, भुगतान तथा अभिरक्षा, बिना लेखॉकन के सम्भव नहीं है। इस प्रकार मुद्रा, वित्तीय व्यवहार तथा स्थायी सम्पत्ति के नियन्त्रण में लेखांकन का बड़ा योगदान है। वित्तीय लेखांकन के अतिरिक्त, लेखांकन की दो और भी शाखाएँ हैं ये हैं लागत लेखांकन (Cost-Accounting) एवं प्रबन्धकीय लेखांकन (Management Accounting)। लेखांकन की ये दोनों शाखाएं प्रबन्धक के नियन्त्रण कार्य में काफी सहायता करती हैं। अनुपात विशलेषण (Ratio Analysis), मानक लागत लेखांकन (Standard Costing), सीमान्त लागत लेखांकन (Marginal Costing), आदि तकनीकों का प्रयोग नियन्त्रण के लिए किया जाता है।

ix) सम–विच्छेद बिन्दु विश्लेषण (Break-even point Analysis)– समविच्छेद बिन्दु को निर्लाभ बिन्दु या खण्ड विच्छेद बिन्दु भी कहा जाता है। समविच्छेद बिन्दु एक ऐसा बिन्दु है जहॉ पर उद्योग की कुल लागत एवं कुल आय समान होती है। इस बिन्दु से कम उत्पादन किया जाए तो व्यवसाय को हानि होने लगती हैं। तथा यदि अधिक उत्पादन किया जाय तो लाभ होता है। यह बिन्दु ऐसी स्थिति को प्रदर्शित करता है। जहॉ व्यवसाय को न तो लाभ होता है और न हानि। समविच्छेद बिन्दु को ध्यान में रखकर ही विक्रय बढ़ाया जाता है। नियंत्रण प्रक्रिया में समविच्छेद बिन्दु की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विभिन्न उत्पादन स्तरों की लागत, बिक्री से प्राप्त राजस्व, लाभ तथा हानियों के सम्बन्धों को दर्शाने के लिए इस प्रकार के चार्टस का प्रयोग किया

जाता है।यह विश्लेषण न लाभ न हानि की स्थिति को भी दर्शाता है। इस प्रकार के विश्लेषण की दृष्टि से कुल लागत को स्थायी (Fixed) एवं परिवर्ती (Variable) दो भागों में बॉटा जाता है।जैसा कि आगे दिये चार्ट को देखने से स्पष्ट होगा कि माल की दो हजार इकाइयों अथवा बिक्री राजस्व के चार हजार रूपये होने की दशा में न लाभ न हानि की स्थिति होगी।

इस चार्ट के माध्यम से अपेक्षित लाभों के लिए बिक्री का परिणाम ज्ञात किया जा सकता है। तथा विभिन्न बिक्री स्तरों पर प्राप्त होने वाले लाभ एवं हानियों की राशि को भी ज्ञात किया जा सकता है। जिस प्रकार यह चार्ट योजना का एक उपकरण है उसी प्रकार इसका प्रयोग नियन्त्रण के लिए भी किया जाता है, योजना एवं नियन्त्रण का तो चोली–दामन का साथ होता है।



चित्र –बिक्री ('000)

x) अंकेक्षण (Audit) – अंकेक्षण आन्तरिक (Internal) एवं बाह्य (External) दो प्रकार का होता है। अंकेक्षण लेखांकन विशेषज्ञों के द्वारा किया जाता है, जो निष्पक्ष एवं प्रबन्धकों के प्रभाव क्षेत्र से परे होते हैं। अंकेक्षण में वित्तीय लेखांकन की शुद्धता की जांच की जाती है तथा उसकी प्रमाणिकता भी परखी जाती है अंकेक्षण एक प्रभावपूर्ण नियन्त्रण विधि है। आजकल प्रबन्ध अंकेक्षण (Management Audit) का भी प्रयोग होने लगा है। नियंत्रण प्रक्रिया में अंकेक्षण एक ऐसी नियंत्रण तकनीक है जो सामान्य समस्या को स्वतः ही समाप्त कर देती है।

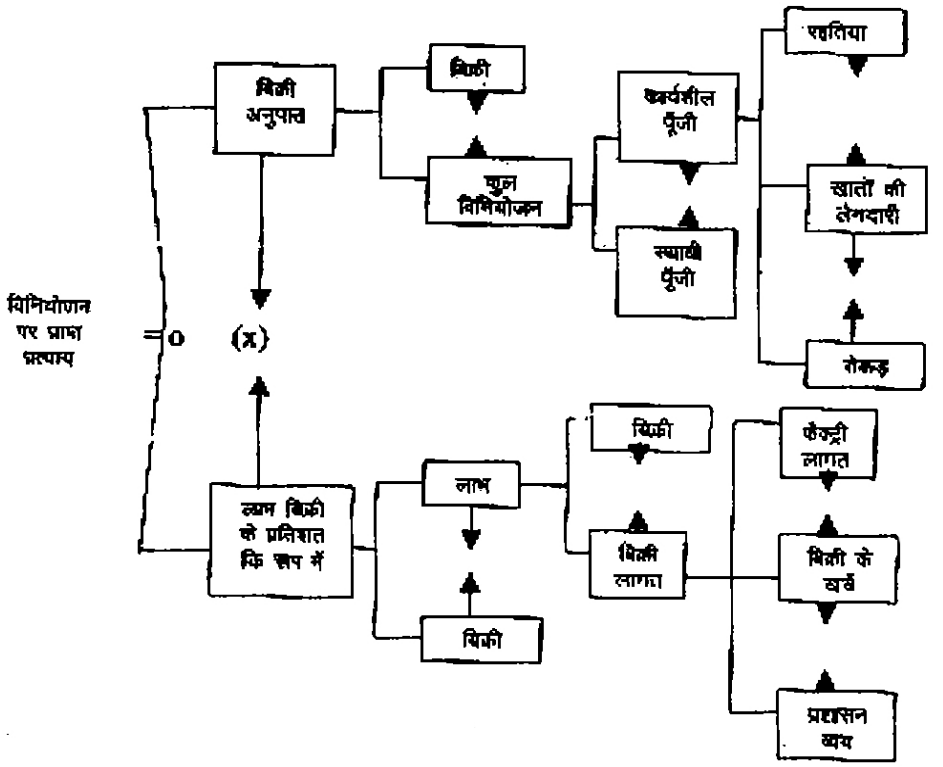
xi) प्रबंधन सूचना प्रणाली (Management Information System) – संगठन में सूचना प्रणाली की व्यवस्था की जानी चाहिए, जिससे प्रबन्धकों को आवश्यक सूचना नियमित रूप से एवं तीव्र गति से प्राप्त होती रहे। सामरिक महत्व की सूचनाओं की प्राप्ति पर प्रबन्धक नियन्त्रण प्रणाली को प्रभावशाली बना सकती है। नियंत्रण तकनीक में सूचना प्रबन्धन का बहुत महत्वपूर्ण योगदान है। जिसके माध्यम से सम्पूर्ण

तंत्र में निर्णय प्रक्रिया एवं अन्य कार्य तेजी से किये जाते हैं और इसका प्रभाव उपक्रम के नियंत्रण में सहायक होता है।

xii) प्रचालन नियन्त्रण प्रणाली (Operations control system) – PERT तथा CPM विधियों का प्रयोग नियन्त्रण की तकनीक के रूप में किया जाता है। गणित के प्रयोग ने नियन्त्रण की बहुत सी विधियों का आविष्कार हुआ है तथा प्रबन्ध कार्य में सहायता प्रदान की है। PRRT तथा CPM विधियां नियंत्रण तकनीक में अवधि एवं लागत के माध्यम से नियंत्रण करती है। वर्तमान कम्प्युटरीकृत युग में PERT तथा CPM विधियॉ परियोजना कार्य में नियंत्रण करने के लिए अपरिहार्य तकनीकियॉ हैं।

xiii) नियंत्रण विभाग (Control Department) – नियंत्रण करने के उद्देश्य से अलग विभाग की भी रचना की जा सकती है। यह विभाग सूचनाओं का संकलन तथा आंकडों का विश्लेषण करने के उपरान्त, प्रबन्ध को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है जिसके आधार पर वह अन्तिम नियन्त्रण सम्बन्धी निर्णय लेता है।

xiv) अर्न्तकम्पनी तुलना (Intercompany Comparison) – समग्र नियंत्रण की दृष्टि से अर्न्तकम्पनी तुलना की जा सकती है। सामान्यतः तुलना का आधार विभिन्न प्रकार के अनुपात (Ratio) होते हैं। ये अनुपात ऐसे होने चाहिए जो कम्पनी के समग्र निष्पादन की जॉच पड़ताल या नाप तौल कर सके। उदाहरण के लिए विनियोजन पर प्राप्त प्रत्याय (Return on Investment)। नीचे हम विनियोजन पर प्राप्त प्रत्याय का परिकलन (calculation) समझा रहे हैं जिससे कि इस प्रत्याय को प्रभावित करने वाले तत्वों और उनके पारस्परिक सम्बन्धों को समझा जा सके।



चित्र – विनियोजन पर प्राप्त प्रत्याय

यदि अन्य कम्पनियों से सम्बन्धित अनुपात उपलब्ध न हो सके तो समग्र से सम्बन्धित अनुपातों को तुलना का आधार बनाया जा सकता है। व्यापार एवं उद्योग संगठन इस प्रकार के आँकड़ों का प्रयोग किया जा सकता है। भारतीय सार्वजनिक उद्योग से सम्बन्धित ऑकड़े, वार्षिक प्रतिवेदन में नियमित रूप से प्रकाशित किए जाते हैं।

3.6.1 नियंत्रण के स्वरूप

मोटे तौर पर नियंत्रण प्रक्रम को दो भागों में बाँटा जा सकता है, अप्रत्यक्ष नियंत्रण तथा प्रत्यक्ष नियंत्रण। अप्रत्यक्ष नियंत्रण के अन्तर्गत त्रुटियों एवं विचलनों को ज्ञात कर, उसके कारणों की छानबीन की जाती है तथा उन त्रुटियों, विचलनों एवं कमियों के लिए उत्तरदायी व्यक्तियों, कार्यप्रणालियों, नीतियों, निवेशों, तथा संगठनात्मक ढांचे आदि में आवश्यक परिवर्तन किया जाता है। अप्रत्यक्ष नियंत्रण का उद्देश्य संशोधनात्मक होता है अर्थात् गलती होने पर उसे सुधारा जाता है तथा इस प्रकार के कदम उठाये जाते हैं कि भविष्य में उन गलतियों की पुनरावृत्ति न हो। जिन नियंत्रण विधियों का अभी हमने अध्ययन किया है उन्हें अप्रत्यक्ष नियंत्रण के शीर्षक के अन्तर्गत रखा जाता है। प्रत्यक्ष नियंत्रण निरोधक प्रकृति का होता है तथा इस मान्यता पर आधारित होता है कि योग प्रबन्धक, अधीनस्थ एवं कर्मचारी कम गलतियां करते हैं। अतः कर्मचारियों, अधीनस्थों एवं प्रबन्धकों में गुणात्मक सुधार किये जाने चाहिए। प्रत्यक्ष नियंत्रण योग्य कर्मचारियों के चयन, प्रशिक्षण एवं विकास को महत्व प्रदान करता है। जिससे कि अप्रत्यक्ष नियंत्रण की कम से कम आवश्यकता पड़े।

नियंत्रण सामान्यतः क्रियात्मक प्रकृति के होते हैं। उदाहरण के लिए, रहतिया नियंत्रण, उत्पादन नियंत्रण, रखरखाव नियंत्रण, गुणवत्ता नियंत्रण, वेतन नियंत्रण, बिक्री नियंत्रण, विज्ञापन नियंत्रण तथा लागत नियंत्रण आदि। नियंत्रण का दूसरा पक्ष यह हो सकता है कि, प्रत्येक क्रिया की निम्नांकित आधार पर जांच पड़ताल की जाय। इस दृष्टि से नियंत्रण के आधार निम्नलिखित हैं –

- परिणाम
- गुणावस्था
- प्रयुक्त लागत
- लागत।

RIL080

नियंत्रण के इन चारों स्वरूपों को मिला लिया जाना चाहिए, जिससे– बिक्री नियंत्रण करते समय आधारों का प्रयोग किया जा सकें।

3.6.2 नियन्त्रण का मानवीय पक्ष (Human aspect of Control)

सामान्यतः नियंत्रण के तकनीकी पक्ष पर ही सारा ध्यान केन्द्रित कर लिया जाता है और परिणामस्वरूप मानवीय पक्ष की बलि चढ़ जाती है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि नियन्त्रण मूलतः मानवीय क्रियाओं पर किया जाता है। जिससे उन्हें और अधिक प्रभावी बनाया जा सके। "नियंत्रण व्यवस्था को व्यक्ति अपने दृष्टिकोण के अनुसार क्या अर्थ प्रदान करते हैं, यह उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि नियंत्रण प्रणाली की प्रणाली तकनीकी अभिकल्पना। अतः नियंत्रण के सम्बन्ध में मानवीय दृष्टिकोण को समझना अत्यन्त महत्वपूर्ण है।" एक उपक्रम में नियत्रण तभी प्रभावी होती है जब मानवीय पहलू पर ध्यान दिया जाता है।

प्रायः नियन्त्रण अरूचिकर होते हैं। नियन्त्रण मानव प्रकृति के विपरीत होने के अतिरिक्त संगठन के उद्देश्यों को स्वीकार न करने, प्रतिमानों के अव्यावहारिक होने, निष्पादन की नापतौल के अनुपयुक्त, होने तथा अवैधानिक माध्यम द्वारा लागू किये जाने जैसे कारणों की वजह से इनका विरोध किया जाता है। कर्मचारी बहुत से नियन्त्रणों को अनावश्यक मानते हैं तथा सामाजिक दबाव (विशेषकर अनौपचारिक संगठन का दबाव) भी नियंत्रण के लिए निर्धारित प्रतिमानों के प्रतिकूल दिशा में रहता है। प्रतिकूल तथ्यों को छिपाने की चेष्टा की जाती है तथा इस बात का प्रयत्न किया जाता है कि स्थिति को वास्तविकता से बड़ा चढ़ाकर श्रेयष्कर दिखाया जाए। इस प्रवृत्ति को 'प्रदर्शन कला नाम से जाना जाता है। इसके अतिरिक्त यदि किसी समय में निष्पादन बहुत अच्छा होता है तो उसकी सही सही और पूरी जानकारी प्रवराधिकारियों को नहीं दी जाती है, जिससे कि यदि किसी समय विशेष में निष्पादन में गिरावट आ जाए तो उस पिछले छिपाये निष्पादन की सहायता से समय की कमी को पूरा किया जा सके। वे कुछ कठिनाइयां हैं जो नियन्त्रण में निहित मानवीय पक्ष के महत्व को दर्शाती है।

इन मानवीय कठिनाइयों को दूर करने अथवा इनसे उत्पन्न होने वाले सम्भावित दूषित परिणामों से बचने के लिए, कुछ कदम उठाये जाने आवश्यक है, जिनका उल्लेख इस प्रकार से किया जा सकता हैं ।

नियंत्रण के प्रति मानवीय अनुक्रिया के महत्व को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि सर्वोत्तम नियंत्रण प्रणाली वह होगी जिसकी स्थापना कर्मचारियों की मांग पर की जाय। प्रबन्धक नियंत्रण व्यवस्था के परिणामों का प्रयोग किस प्रकार से करते

हैं, इस पर काफी सीमा तक कर्मचारियों को अनुक्रिया निर्भर करती है। इस दृष्टि से धनात्मक अथवा निश्चयात्मक नियंत्रण श्रेयस्कर रहती है।

कर्मचारियों को यह समझाने की चेष्टा की जानी चाहिए कि नियंत्रण व्यवस्था उनके स्वयं के हित में हैं। इससे उनकी क्रियाओं में सुधार होता है, वेतन में वृद्धि होती है, विकास के अवसर बढ़ते हैं पदोन्नति की सम्भावनाएं अधिक होती हैं तथा उनका मान सम्मान ऊँचा उठता है। यदि नियंत्रण के फलस्वरूप यदा कदा कुछ अरूचिकर तथ्य सामने आते हैं तो उन्हें एक चुनौती के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए न कि आलोचना के रूप में । मानवीय क्रियाओं के नियंत्रण में मानवीय विकास का प्रतिबिम्ब परिलक्षित होता है जिसका सीधा सम्बन्ध उपक्रम के अनुशासन एव प्रगति से है।

कर्मचारियों के सहयोग से प्रतिमानों को स्थापित किया जाना चाहिए।

प्रतिपुष्टि आँकड़ों को सबसे पहले उन प्रबन्धकों एवं कर्मचारियों को देना चाहिए जो निम्न स्तर पर कार्यरत होते हैं जिससे कि वे उनका उपयोग कर अपनी क्रियाओं मे संशोधन कर सके। यह आवश्यक नहीं है कि सभी सूचनाएं उच्चाधिकारियों को दी जाए। इस प्रकार की व्यवस्था को (द बाटम ऑफ द प्रिन्सीपल एप्रोच) के नाम से जाना जाता है। नियंत्रण की ऐसी व्यवस्था आत्म नियंत्रण (कन्ट्रोल बाय सेल्फ कन्ट्रोल) की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करती है।

स्थानीय घटकों पर विचार करते हुए नियन्त्रण प्रणाली को स्थापित करना चाहिये।

अनौपचारिक नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

एकत्रित की गई सूचनाओं एवं प्रतिवेदनों से कर्मचारियों को अवगत कराना चाहिये।

नियन्त्रण व्यवस्था एवं विशेषकर प्रतिमानों में कम से कम परिवर्तन किये जाने चाहिए। परिवर्तन करने से पूर्व कर्मचारियों का विश्वास प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

नियंत्रण करते समय केवल रेखा प्रवराधिकारी ही कर्मचारियों के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आये उससे आवश्यक पूछताछ तथा जांच पड़ताल करें।कर्मचारी इस बात को पसन्द नहीं करते कि (ए) समान स्तरीय कर्मचारी अधिकारी अथवा (बी) कर्मचारी अधिकारी अथवा (सी) प्रत्यक्ष रेखाधिकारी के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति उन पर नियन्त्रण करें। हम अपने परिवार में भी नित्य प्रति देखते हैं कि यदि बच्चे की प्राप्तांक तालिका पर माता पिता डाट डपट करते हैं तो बच्चे बुरा नहीं मानते, लेकिन यदि भांई या बहन (चाहे वे आयु में उस बच्चे से बड़े ही क्यों न हों?) डॉट डपट करने लगें तो बच्चा उसे बिल्कुल पसन्द नहीं करता। यह एक सामाजिक सम्बन्धों एवं प्रतिष्ठा का प्रश्न है। नियन्त्रण में इस मानवीय दृष्टिकोण को ध्यान में रखना आवश्यक है।

RIL-080

3.7 सारांश (Summary)

प्रबंध नियंत्रण का एक ऐसा प्रक्रम है जो प्रबन्धकों को इस बात का आश्वासन दिलाता है कि संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए साधनों की उपलब्धि एवं प्रयोग प्रभावशाली रूप में तथा कुशलता से किया जा सकता है। नियंत्रण प्रबन्ध का वह महत्वपूर्ण कार्य है जो इस बात को निर्धारण से सम्बन्ध रखता है कि कार्ययोजनाओं लक्ष्यों तथा नीतियों के अनुसार हो रहा है या नहीं और यदि नहीं हो रहा है तो उसके क्या कारण हैं? तथा उसे दूर करने हेतु क्या कदम उठाए जाने चाहिए? उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर तलाशने के लिए नियंत्रण विधि के द्वारा उक्त प्रश्नों के उत्तर दिये जा सकते हैं । नियंत्रण प्रबन्ध का अपरिहार्य एवं अंतिम कार्य है जिसके द्वारा एक उपक्रम अपने स्थापित लक्ष्यों को प्राप्त करता है।

3.8 शब्दावली

नियंत्रण (Control) –प्रतिमान स्थापित कर कार्य मापना और सुधारात्मक कदम नियंत्रण है।

सम–विच्छेद बिन्दु (Break-even point) – जहॉ आय एवं व्यय दोनों रेखाएं आपस में एक दूसरे को काटती है वह बिन्दु समविच्छेद बिन्दु कहलाता है।

प्रतिमान (Standard) – मापदण्ड निर्धारित करना प्रतिमान कहलाता है।

3.9 स्व–परक प्रश्न

1. प्रबन्ध में नियंत्रण के महत्व की विवेचना कीजिए। किसी औद्योगिक इकाई में प्राप्त नियंत्रण तकनीकी के विभिन्न प्रकारों को संक्षेप में समझाइये।

2. व्यवसाय संगठन में नियंत्रण की महत्ता का उल्लेख कीजिए। उन कारणों की चर्चा कीजिए जिससे नियंत्रण का विरोध किया जाता है।

3. नियंत्रण के सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए।

4. एक उत्तम नियंत्रण व्यवस्था की पूर्व आवश्यकताओं की चर्चा कीजिए।

कुछ उपयोगी पुस्तकें –

– आर. सी.अग्रवाल : व्यवसाय प्रशासन एवं प्रबन्ध

– जी. डी. शर्मा एवं जी. सी. सुराना : प्रबन्ध के सिद्धांत और व्यवहार (रमेश बुक डिपो, जयपुर)

– डॉ. प्रेमचन्द जैन : प्रबन्ध के तत्व (कैलाश पुस्तक सदन)

उत्तर प्रदेश
राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
प्रयागराज

M.Com - 202
प्रबन्ध सिद्धान्त एवं पर्यावरण

खण्ड
5
प्रबन्धन की संकल्पना एवं संरचना

इकाई-1 5
अभिप्रेरण

इकाई-2 28
नेतृत्व

इकाई-3 47
परिवर्तन का प्रबन्ध

इकाई-4 57
संघर्ष प्रबन्धन

इकाई-5 82
उदयीमान प्रबन्धकीय मुद्दे

परामर्श-समिति

प्रो० नागेश्वर राव	कुलपति - अध्यक्ष
डॉ० हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
श्री एम० एल० कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

संरचनात्मक सम्पादन

डॉ० मंजूलिका श्रीवास्तव	निदेशक, दूरस्थ शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली

विषयगत सम्पादन

प्रो० मूल मोतिहार	प्रोफेसर, मोनिरबा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ० देवेश रंजन त्रिपाठी	असिस्टेन्ट प्रोफेसर, उ० प्र० राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रस्तुत पाठ्य सामग्री में विषय से सम्बन्धित सभी तथ्य एवं विचार मौलिक रूप से लेखक के स्वयं के हैं।

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

RIL-080

खण्ड-5 परिचय

इस खण्ड में प्रबन्ध सिद्धान्त एवं पर्यावरण के अन्तर्गत प्रबन्धन की संकल्पना व सरंचना को निम्नलिखित 5 इकाईयों में प्रस्तुत किया गया है।

प्रथम इकाई में अभिप्रेरणा, इकाई - 2 में नेतृत्व, इकाई - 3 में परिवर्तन का प्रबन्धन, इकाई - 4 में संघर्ष प्रबन्धन एवं इकाई - 5 में उदयीमान प्रबन्धकीय मुद्दे की व्याख्या की गई है।

RIL-080

इकाई –1 अभिप्रेरण

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 अवधारणा, तत्व तथा विशेषताएँ

1.4 उद्देश्य, आवश्यकता तथा महत्व

1.5 प्रमुख प्रकार तथा प्रक्रिया

1.6 प्रभावित करने वाले कारक

1.7 प्रमुख सिद्धान्त

1.8 सारांश

1.9 उपयोगी शब्दकोश

1.10 महत्वपूर्ण प्रश्नावली

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- अभिप्रेरणा की आवश्यकता, तत्व तथा उसकी विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे,
- अभिप्रेरणा के उद्देश्य आवश्यकता तथा महत्व की विवेचना कर सकेंगे,
- अभिप्रेरणा के विभिन्न रूपों को निरूपित कर इसकी प्रक्रिया को समझ सकेंगे,
- अभिप्रेरणा को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों का वर्गीकरण कर विवेचन कर सकेंगे, तथा
- इसके कुछ प्रमुख सिद्धान्तों का विश्लेषण कर सकेंगे।

1.2 प्रस्तावना

आप पिछली इकाइयो में पढ़ चुके हैं कि निर्देशन के कार्यों के अन्तर्गत एक उपकार्य अभिप्रेरण होता है। किसी भी संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु नेतृत्व को समस्त सदस्यों का सहयोग चाहिए होता है किन्तु सभी समान कार्यक्षमता से अपना कार्य पूर्ण नहीं कर पाते हैं। अतः एक कुशल प्रबन्धक का प्रमुख कार्य व्यक्तियों को उचित ढंग से अभिप्रेरित कर संस्थागत विभिन्न कार्यों को पूरा कराना होता है।

RIL-080

कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने के लिए प्रबन्धक के पास उनकी आवश्यकताओं को निर्धारित करना और एक ऐसा वातावरण प्रदान करना आवश्यक हो जाता है, जिसमें उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उचित मात्रा में अनुप्रेरणाएं मौजूद हैं। यदि प्रबन्धक इस काम को सफलता पूर्वक करने की क्षमता रखता है तो वो अवश्य ही व्यक्तियों में कार्य के प्रति इच्छा शक्ति को जागृत कर सकता है जिससे संगठन की कार्य निस्पादन क्षमता और प्रभावशीलता में वृद्धि होगी तथा संसाधनों और व्यक्तियों में बेहतर समन्वय द्वारा अधिक लाभ की आशा की जा सकती है। इस इकाई में हम अभिप्रेरण की अवधारणा, तत्व, विशेषताए, उद्देश्य आवश्यकता, महत्व, प्रकार, प्रक्रिया, प्रभावित करने वाले कारक तथा प्रमुख सिद्धान्तों का विवेचन करेंगे।

1.3 अवधारणा, तत्व तथा विशेषताएं

अभिप्रेरणा मानव की वह अन्तः प्रेरणा है जिससे प्रेरित होकर व्यक्ति स्वयं कार्य करने के लिए प्रेरित हो जाता है । किसी भी व्यक्ति में कार्य करने की योग्यता तो हो सकती है परन्तु वह यह कार्य अपनी सम्पूर्ण योग्यता से तब ही पूर्ण करेगा जब कि उसे कार्य करने के लिए प्रेरित किया जाये। अतः किसी भी व्यक्ति से कार्य को पूर्ण कराने हेतु उसे अभिप्रेरणा प्रदान करना परम् आवश्यक है। इस प्रकार अभिप्रेरणा स्वयं को अथवा किसी अन्य व्यक्ति को वांछित कार्य करने हेतु प्रोत्साहित करने की प्रक्रिया है अर्थात वांछित प्रतिक्रिया प्राप्त करने के लिए सही उपाय है। ये मनोवैज्ञानिक अवधारणा है जो कि कार्यकारी शक्तियों से सम्बन्धित है जो व्यक्तिगत रूप से कर्मचारी तथा उससे सम्बन्धित अधीनस्थों को निश्चित दिशा में कार्य करने अथवा न करने के लिए प्रेरित करती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अभिप्रेरणा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्तियों को अभिप्रेरित किया जा सकता है, जिससे वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति, कुशलता, क्षमता एवं ज्ञान को पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उपयोग कर सकें। संक्षेप में अभिप्रेरणा व्यक्ति की अन्तः प्रेरणा है जो उसे स्वयं करने के लिए प्रेरित करती रहती हैं।

उपरोक्त विवेचन के पश्चात यह कह सकते हैं कि अभिप्रेरणा में चार प्रमुख तत्वों का होना परम आवश्यक है। आइये इन्हें क्रमवार समझाने का प्रयास करें –

(क) अन्तः प्रक्रिया :– यह एक अनन्त प्रक्रिया है जो कभी भी समाप्त नहीं हो सकती अर्थात व्यक्ति सदैव ही कार्य करने के लिए प्रेरित होता रहता है।

(ख) मनोवैज्ञानिक अवधारणा :– यह एक मनोवैज्ञानिक अवधारणा है। यह व्यक्ति की मानसिक शक्ति एवं ज्ञान को विकसित करके उसे अधिक कार्य करने के

लिए प्रेरित करती है जिससे उसकी उत्पादकता में वृद्धि होती है।

(ग) कार्य करने की शक्ति :– अभिप्रेरणा व्यक्ति को कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करती है, यह कार्य करने की प्रयांप्त शक्ति प्रदान करती है जिससे व्यक्ति अपनी क्षमता का अधिक से अधिक प्रयोग कर सके। इसलिए व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यक्तित्व प्रभावित होता है, उसका कोई उमंग विशेष नहीं क्योंकि व्यक्ति एक अविभाज्य इकाई है, वह सदैव ही पूर्ण रूप से ही अभिप्रेरित होता है।

(5) कार्य क्षमता में वृद्धि :– अभिप्रेरणा व्यक्ति की कार्यक्षमता में वृद्धि करती है। इससे व्यक्ति अपनी योग्यता एवं क्षमता का अधिक से अधिक उपयोग करता है और इसके परिणाम स्वरूप उसकी गुणवत्ता में सुधार होता है तथा वह क्षमतानुसार उत्पादन करने में सक्षम हो जाता है।

(6) मनोबल में वृद्धि :– मनोबल एक समेकित अन्तः भावना है।अभिप्रेरणा में सदैव ही व्यक्तियों को सहयोग से कार्य करने के लिए प्रेरित करने का गुण छुपा होता है इस प्रकार ये व्यक्तियों के मनोबल में वृद्धि करने में सहायक होता है। उपरोक्त तत्वों के विस्तार से हम कह सकते हैं कि अभिप्रेरणा की अग्रलिखित विशेषताएं निरूपित की जा सकती हैं :–

1. यह एक नितान्त प्रबन्धकीय कार्य है जिसे सुव्यवस्थित प्रक्रिया द्वारा ही सम्पन्न किया जा सकता है।
2. यह सहयोग प्राप्त करने का साधन है साध्य नहीं।
3. यह एक कार्य पद्धति है जिसका प्रभाव व्यक्ति के आचरण पर पड़ता है।
4. व्यक्ति की आवश्यकताओं तथा अभिप्रेरणाओं में सीधा सम्बन्ध होता है।
5. यह उत्पादकता, गुणवत्ता, मनोबल को बढ़ाती है घटाती नहीं।
6. यह एक नितान्त मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है।
7. इसके अनेक स्त्रोत हो सकते हैं तथा यह एक निरन्तर चलने वाले सुव्यवस्थित प्रक्रिया है।

1.4 उद्देश्य, आवश्यकता तथा महत्व

जैसा कि हम जान चुके हैं कि अभिप्रेरणा से तात्पर्य उस मनोवैज्ञानिक उत्तेजना से है जो व्यक्तियों को कार्य के प्रति प्रोत्साहित करती है, कार्य पर बनाये रखती है तथा अधिक से अधिक कार्यात्मक संतोष प्रदान करती है अतः हम अभिप्रेरणा के अग्रलिखित उद्देश्य निरूपित कर सकते हैं :–

(क) अधिनस्थों को पूर्व निर्धारित उद्देश्यों के प्रति कार्य करने हेतु प्रेरित करना।

(ख) अधीनस्थों की सामाजिक आर्थिक तथा मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को पहचान कर पूरा करना।

(ग) संगठन के अन्दर तथा बाहर आपसी मानवीय सम्बन्धों को बढ़ावा देना।

(घ) कार्य की दशाओं में सुधार करते हुए कर्मचारियों के मनोबल में अभिवृद्धि करना तथा उनसे अधिकतम सहयोग प्राप्त करना।

(च) श्रम और पूँजी के मध्य मधुर सम्बन्धों की स्थापना करना।

(ज) मानवीय साधनों का सुव्यवस्थित उपयोग करते हुए उपक्रम के लक्ष्यों की प्राप्ति सुनिश्चित करना।

इस प्रकार नेतृत्व तथा प्रबन्धन का प्रमुख कार्य दूसरे व्यक्तियों से कार्य करना होता है। किसी भी संगठन की स्थापना कुछ पूर्व निर्धारित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए की जाती है इन उद्देश्यों की प्राप्ति संगठन से जुड़े व्यक्तियों को कार्य के प्रति प्रोत्साहित करके ही सम्भव हो सकती है।किसी भी व्यक्ति में कार्य करने हेतु मानसिक व शारीरिक क्षमताएं तो हो सकती है किन्तु यह सम्भव नहीं कि वह इन इनका सुव्यवस्थित उपयोग कर सके। किसी भी कार्य के श्रेष्ठ व सुव्यवस्थित निस्पादन हेतु यह परमावश्यक है कि उस व्यक्ति को कार्य करने के लिए प्रर्याप्त अभिप्रेरणा दी जाये।

कई महत्वपूर्ण अध्ययनों ने यह सिद्ध किया है कि यदि किसी अधीनस्थ को उचित प्रेरणा प्राप्त नहीं होती है तो वह निश्चय ही अपनी क्षमता का केवल 50 प्रतिशत से 75 प्रतिशत तक ही उपयोग करता है। इसके विपरीत यदि उचित प्रेरणा प्रदान की जाती है तो वह अपनी क्षमता के उपयोग का 90 प्रतिशत से 100 प्रतिशत तक कर सकता है और अपने कार्य से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करता है। अतः किसी भी संगठन में कार्य के उचित मात्रा में निस्पादन हेतु कर्मचारियों को पर्याप्त अभिप्रेरणा देना आवश्यक हो जाता है।

अभिप्रेरणा किसी भी संगठन में लगे कर्मचारियों को सर्वाधिक श्रेष्ठ गुणवत्ता का कार्य निस्पादन करने के लिए प्रेरित करता है। यह संगठन में कर्मचारियों के बीच आपसी सहयोग की भावना को बढ़ाता है। यदि संगठन में श्रेष्ठ माल एवं मशीन का प्रयोग होता है किन्तु वहॉ के कर्मचारियों का लगाव कार्य निष्पादन के प्रति नहीं है तब वह उपक्रम निश्चित ही अपने पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं कर पायेगा।

अतः संगठन में माल, मशीन, पूंजी के सुव्यवस्थित प्रयोग हेतु यह आवश्यक है कि संगठन से जुड़े समस्त कर्मचारियों को अभिप्रेरित कर आपसी सहयोग की भावना बढ़ाई जाये जिससे उनकी कार्य क्षमता में आशातीत वृद्धि होती है तथा वे संस्था के प्रति

सदैव निष्ठावान बने रहते हैं। इस प्रकार जब संगठन के कर्मचारियों में असन्तोष हो तब वे संगठन में लगन से कार्य नहीं करते हैं तथा संगठन में नैराश्यता की स्थिति फैल जाती है तथा ऐसा संगठन पतन की ओर अग्रसर हो जाता है।अतः संगठन की सफलता के लिए आवश्यक है कि उसमें लगे कर्मचारियों को पर्याप्त अभिप्रेरणा दी जाय।

1.5 प्रमुख प्रकार तथा प्रक्रिया

अभिप्रेरणा के क्षेत्र में अत्यधिक विशालतः के कारण इसके कई प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष तरीके हैं जिससे कर्मचारियों को अभिप्रेरित किया जा सकता है। इन्हें अध्ययन की सुविधा हेतु तीन प्रमुख भागों में विभक्त किया जा सकता है।

1) धनात्मक तथा ऋणात्मक प्रेरणायें – धनात्मक प्रेरणाओं से तात्पर्य उन प्रेरणाओं से जिनसे व्यक्तियों के स्वेच्छा के कार्य के प्रति रूचि जागृत होती है जो कि अधिक उत्पादन में सहायक होता है, जिससे लाभों में अधिक से अधिक वृद्धि की जा सकती है। इस प्रकार इन लाभों में से अधिक मजदूरी एवं प्रेरणात्मक आनुषांगिक लाभ प्रदान किये जाते हैं। ये श्रमिकों की कार्य क्षमता में वृद्धि करते हैं तथा अधिक प्रेरणा देते हैं। धनात्मक प्रेरणाओं में प्रेरणात्मक मजदूरी पद्धति,बोनस, लाभ सहभागिता, सहभागिता, पुरस्कार आदि को सम्मिलित किया जाता है।

इसी प्रकार ऋणात्मक प्रेरणाओं से तात्पर्य उन प्रेरणाओं से है जिनके अन्तर्गत श्रमिक को अधिक उत्पादन करने के लिए कुछ डर दिखाया जाता है जिससे भयाक्रान्त होकर श्रमिक अधिक उत्पादन करते हैं। इनके अन्तर्गत दण्ड व्यवस्था, जुर्माना नौकरी से बर्खास्तगी, प्रताड़ना आदि को शामिल किया जाता है। ऋणात्मक प्रेरणाओं की तुलना में धनात्मक प्रेरणाओं ने सदैव अच्छे परिणाम दिये हैं क्योंकि ये प्रेरणाएं श्रमिकों के मनोबल, कार्यक्षमता एवं उत्पादनकर्ता में वृद्धि करने में सहायक होते हैं जिससे संगठन में प्रबन्ध मजदूर सम्बन्ध स्वस्थ बने रहते हैं जबकि ऋणात्मक प्रेरणाएं वैमनस्य की भावना की ओर मार्ग दिखाती है।श्रमिक स्वेच्छा से नहीं बल्कि डर से कार्य को करते हैं जिसके परिणाम स्वरूप पर्यवेक्षण पर अधिक अपव्यय करना पड़ता है।उत्पादन के क्षेत्र में भी सन्तोषजनक परिणामों की प्राप्ति नहीं हो पाती। इस प्रकार स्पष्ट है कि संगठन में श्रमिकों को अधिक से अधिक मात्रा में धनात्मक प्रेरणाएं प्रदान की जाती रहनी चाहिए।

2) व्यक्तिगत एवं सामूहिक प्रेरणाएं – व्यक्तिगत प्रेरणाओं से तात्पर्य उन प्रेरणाओं से है जो श्रमिक को व्यक्तिगत रूप से निरन्तर कार्य करने के लिए प्रेरित

करती रहती है। ऐसी प्रेरणाओं का मुख्य उद्देश्य अधिक कार्य करने वाले श्रमिक को अधिक लाभ पहुंचाना होता है। इस प्रकार की प्रेरणाओं से मौद्रिक तथा अमौद्रिक दोनों प्रकार के लाभ मिलते हैं। मौद्रिक रूप में व्यक्तिगत प्रेरणाओं के अन्तर्गत वेतन, वृद्धि पदोन्नति आदि को सम्मिलित किया जाता है जबकि अमौद्रिक रूप में प्रशंसा पत्र कुशलता, सम्मान, नौकरीकी सुरक्षा, पदोन्नति आदि को सम्मिलित किया जाता है।व्यक्तिगत प्रेरणाओं को प्रत्यक्ष प्रेरणाओं के रूप में भी पहचाना जाता है।

इसी प्रकार सामूहिक प्रेरणाओं से तात्पर्य उन प्रेरणाओं से है जो श्रमिकों को अधिकाधिक कार्य करने के लिए सामूहिक रूप से प्रदान की जाती है। ये प्रेरणाएं भी मौद्रिक तथा अमौद्रिक हो सकती हैं। इन्हें अप्रत्यक्ष प्रेरणाओं के रूप में भी पहचाना जाता है।

अतः संगठन में व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों प्रकार की प्रेरणाओं कीं व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे श्रमिकों को अधिकाधिक कार्य हेतु व्यक्तिगत एवं सामूहिक दोनों तरह से अभिप्रेरित किया जा सके। संक्षेप में दोनों प्रकार की प्रेरणाएं संगठन की उत्पादकता में वृद्धि लाने में सहायक सिद्ध होती हैं।

3) वित्तीय एवं गैर वित्तीय प्रेरणाएं – ये प्रेरणायें श्रमिकों को अधिक कार्य करने के लिए मौद्रिक रूप से प्रेरित करती हैं। इसलिए इन्हें मौद्रिक वित्तीय प्रेरणायें कहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति कोअपने तथा अपने परिवार के जीवनयापन हेतु विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति करनी पड़ती है।जिसके लिये मुद्रा अर्थात वित्त की आवश्यकता होती है और व्यक्ति इसकी प्राप्ति हेतु दिन रात कार्य में जुटा रहता है। अतः श्रमिकों को अधिक कार्य करने हेतु प्रेरित करने के लिए अधिक प्रभावशाली यन्त्र वित्तीय प्रेरणायें ही हैं। इन्हें भी क्रमशः व्यक्तिगत और सामूहिक दो रूपों में विभक्त किया जा सकता है।

इसी प्रकार गैर वित्तीय प्रेरणाओं से आशय उन प्रेरणाओं से है जिनसे श्रमिकों को अधिक कार्य करने के लिए अमौद्रिक रूप में प्रेरणा मिलती है इसलिए इन्हें अमौद्रिक प्रेरणाओं की संज्ञा दी जाती है। संगठन में इन प्रेरणाओं का भी अपना महत्व होता है क्योंकि व्यक्ति गैर वित्तीय प्रेरणाओं से प्रभावित होकर भी कार्य करते हैं। इन प्रेरणाओं को क्रमशः व्यक्तिगत, सामूहिक और संस्थागत रूपों में विभक्त किया जाता है।

प्रायः यह देखने में आता है कि संगठन में केवल वित्तीय प्रेरणाओं पर ही ध यान दिया जाता है और गैर वित्तीय प्रेरणाओं को नजरअन्दाज कर दिया जाता है। प्रबन्धक इस सम्बन्ध में यह तथ्य भुला देते हैं कि अकेले वित्तीय प्रेरणाएं ही श्रमिकों को अधिक कार्य करने के लिए प्रेरित नहीं किया जा सकता है क्योंकि मौद्रिक प्रेरणाओं से श्रमिकों की भौतिक आवश्यकताओं की सन्तुप्ति तो हो जाती है किन्तु

मानसिक एवं अहं सम्बन्धी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि हेतु गैर वित्तीय प्रेरणाओं की आवश्यकता होती है।

इसके अतिरिक्त श्रमिकों में उत्साह भरने, उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि करने, श्रम प्रबन्ध सम्बन्ध को मधुर बनाने, श्रमिकों में कार्य के प्रति गौरव लाने, उनको स्वाभाविक प्रतिष्ठा प्रदान करने एवं उपक्रम के प्रति उसके मन में आकर्षण पैदा करने के लिए गैर वित्तीय प्रेरणाओं का विशेष महत्व होता है। अतएव सार रूप में कहा जा सकता है कि श्रमिकों की उत्पादकता में वृद्धि करने के लिए वित्तीय एवं गैर वित्तीय दोनों प्रकार की प्रेरणाओं की आवश्यकता होती है।

इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी आवश्यकता से वशीभूत होकर कार्य करता है। दूसरे शब्दों में प्रत्येक व्यक्ति स्वतः प्रेरणा से कार्य करता है। यदि व्यक्तियों से श्रेष्ठ गुणवत्ता का कार्य निस्पादन कराना है तो उनको इसके लिए अभिप्रेरित किया जाता है एक संगठन में प्रबन्धक को सदैव अपने कर्मचारियों से श्रेष्ठ गुणवत्ता का अधिक से अधिक कार्य कराने के लिए विभिन्न प्रकार की प्रेरणाओं को देते रहना पड़ता है। अधीनस्थों को प्रेरित करने की इस विधि को ही अभिप्रेरणा प्रक्रिया की संज्ञा दी जाती है। इस अभिप्रेरणा प्रक्रिया के चार अग्रलिखित चरण होते हैं।

(क) कर्मचारियों में अभिप्रेरणा की क्या आवश्यकता है? इसका पता लगाया जाय।

(ख) अभिप्रेरण के विभिन्न साधनों को एकत्रित किया जाय।

(ग) सटीक अभिप्रेरण तत्वों का चयन कर उनको क्रियान्वित करना।

(घ) अभिप्रेरणा का निरन्तर मूल्यांकन करते रहना और यदि आवश्यक हो तो अभिप्रेरणा तत्वों में बदलाव लाते रहना।

एक अच्छी अभिप्रेरणा व्यवस्था में निम्नलिखित विशेषताओं को देखा जा सकता है :–

1. अभिप्रेरणा योजना का निर्माण ऐसा होना चाहिए जो व्यक्तियों को अधिकाधिक कार्य करने हेतु प्रेरित कर सकें अर्थात यह उत्पादकता बढ़ाने वाली होनी चाहिए।

2. अभिप्रेरण योजना कर्मचारियों की अधिक मानसिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली होनी चाहिए जिससे कि कर्मचारी अधिकतम संन्तुष्टि प्राप्त कर सकें।

3. अभिप्रेरण योजना संगठन के कुछ निश्चित नियमों एवं सिद्धान्तों पर आधारित होनी चाहिए।

4. इस योजना द्वारा उपक्रम की प्रतिष्ठा में वृद्धि होने का दायित्व भी होना

चाहिए।

5. अभिप्रेरण योजना का निर्माण ऐसा होना चाहिए जिससे कर्मचारियों के मध्य स्वस्थ प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा मिल सके।

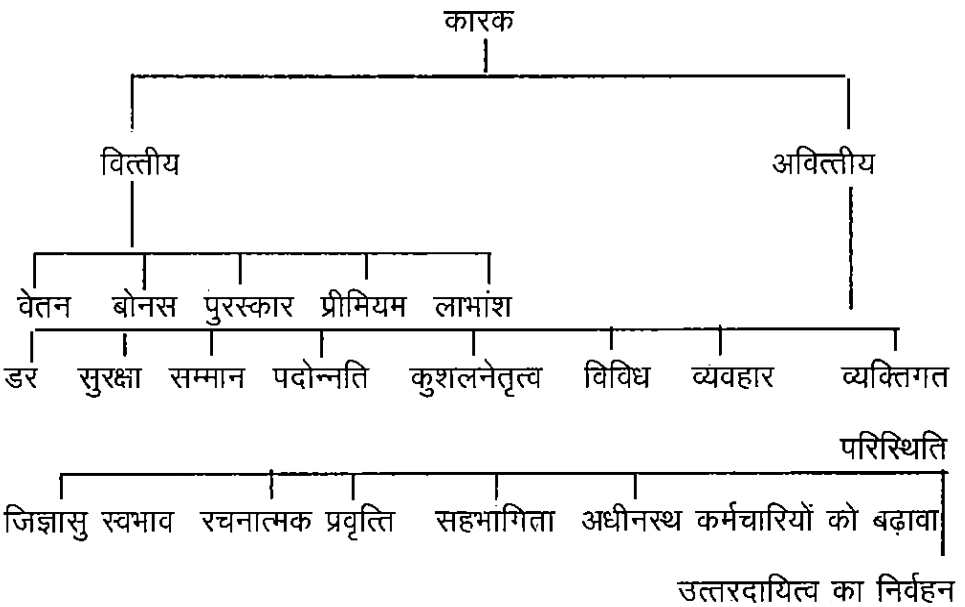
6. अभिप्रेरण योजना लेयपूर्ण होनी चाहिए जिससे उसमें समय समय पर सम सामयिक परिवर्तन किया जा सके तथा इसके संचालन का दायित्व भी संगठन के महत्वपूर्ण कर्मचारी प्रबन्धक को सौंपना चाहिए जो इसे सुव्यवस्थित रूप से क्रियान्वित कर सकें।

7. अभिप्रेरण योजना के सम्बन्ध में संगठन के समस्त कर्मचारियों को पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब इसका निर्माण सबके सहयोग से किया गया है।

8. अभिप्रेरण योजना मितव्ययी होना चाहिए तथा इसमें सरलता एवं व्यवहारिकता समाहित होनी चाहिए जिससे इसे लागू करने में कोई कठिनाई न हो।

1.6 अभिप्रेरणा को प्रभावित करने वाले कारक

अभिप्रेरणा का वास्तविक आधार मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं के साथ–साथ उसकी सामाजिक–आर्थिक मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की संतुष्टि किस प्रकार हो? इसका ध्यान रखा जाना है। इस तथ्य के दृष्टिगत अभिप्रेरणा को प्रभावित करने वाले कारकों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। आइये इसे अग्रलिखित चित्र आरेख द्वारा समझने का प्रयास करें :–



1. **वित्तीय कारक** – वित्तीय कारक व्यक्तियों को अपनी भौतिक तथा मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएं व्यवस्थित करने में सहयोग प्रदान करती हैं। इसी प्रकार व्यक्ति की जेब में कुछ रूपये रहने से उसमें सदा सुरक्षा की भावना बलवती होती रहती है।सामान्य वित्तीय प्रेरणाओं में मजदूरी, वेतन, प्रीमियम, पुरस्कार एवं लाभांश को सम्मिलित किया जाता है। वेतन तथा मजदूरी प्रदान करने हेतु मुख्यतः दो विधियों को अपनाया जाता है, यथा – कार्यानुसार तथा समयानुसार। पुरस्कार देने की विधि उत्पादन की मात्रा पर प्रकाश डालती है।

श्रेष्ठ गुणवत्ता के उत्पादन हेतु उत्साहित करने में अवित्तीय मजदूरी को बढ़ा दिया जाय तो यह जरूरी नहीं है कि उसी अनुपात में उसकी कार्य कुशलता मे भी वृद्धि हो जायेगी। भारतीय श्रमिकों के सन्दर्भ में यह कहा जाता है कि उसे वित्तीय प्रेरणायें देने की अपेक्षा अवित्तीय प्रेरणाएं देना अधिक उपर्युक्त होता है क्योंकि वह वित्तीय प्रेरणाओं को गलत ढंग से उपयोग कर उड़ा देता है। अतः अभिप्रेरणा के सम्बन्ध में निर्णय लेते समय वेतन, बोनस, पुरस्कार, प्रीमियम, लाभांश आदि वित्तीय कारकों का सदैव ध्यान रखन चाहिए।

2. **अवित्तीय कारक** – ऐसे कारक जिनमें वित्त को प्रमुखतः न देते हुये अन्य उपायों के माध्यम से अभिप्रेरणाओं का सृजन किया जाता है। प्रायः ये अग्रलिखित कारकों से प्रभावित होती है :–

1. कुछ दशकों पूर्व प्रबन्धकों में यह मान्यता थी कि श्रमिकों को भयाक्रान्त करके उनसे कुछ निश्चित समय तक अधिक कार्य निष्पादन कराया जा सकता है किन्तु वर्तमान परिवेश में यह सम्भव नहीं है। वे डर से कार्य करते थे दिल से नहीं। अतः कुछ समय बाद अन्तः विरोध में और अन्तः विरोध संघर्ष में बदल जाता है। इस प्रकार उत्पादकता बढ़ाने की जगह घट जाती है जिससे संगठन को हानि होती है।

2. वर्तमान व्यापारिक परिवेश में नौकरी की सुरक्षा तथा निश्चित वेतन की प्रत्येक मजदूर की चाहत होती है। प्रमुख अध्ययनों से यह स्पष्ट कर दिया है कि नौकरी के प्रति सुरक्षा की भावना उत्पादन बढ़ाती है तथा इसके उलट असुरक्षा की भावना उत्पादन घटाती है। अतः सदैव प्रेरणाएं के प्रति निर्णय लेते समय इनका ध्यान रखना चाहिए।

3. सम्मान, प्रशंसा, व्यक्ति का ऐसा गुण है जिसे तो अपने लिए सुनने की चाहत रखता है। किन्तु यह सर्वविदित है कि यह सबको प्राप्त नहीं हो पाती। अधिकांश लोगों को यह सुनने का मौका नहीं मिलता हैं बल्कि गलत कार्य के लिए चेतावनी सदैव मिलती रहती है। सदैव ही सबकी प्रशंसा करते रहना एक प्रबन्धन के लिए समभव नहीं होता किन्तु यह ध्यान रखने योग्य है कि यह एक आवश्यक मनोवैज्ञानिक उपकरण है जिसका उपयोग निरन्तर होते रहना चाहिए।

RIL-080

4. उन्नति के अवसरों का प्राप्ति सबकी चाहत होती है जबकि यह आवश्यक नहीं है कि सही समय आने पर वह उसका लाभ उठा ही सके लेकिन सभी इसके प्रति आशावादी अवश्य ही होते हैं। अतः इस तथ्य को सदैव अभिप्रेरणाओं का निर्णय लेते समय ध्यान रखना चाहिए।

5. संगठन की पहचान उसके कुशल नेतृत्व में छुपी होती है। नेतृत्व से सदैव यह अपेक्षा की जाती है कि वो अधीनस्थों के समक्ष सदैव अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करें क्योंकि नकल मानवीय चरित्र है और कर्मचारी भी अपने नेतृत्व की कार्य करने की शैली की नकल करते हैं जिसमें वो भी अपने को नेता ऐसा बनाना चाहते हैं।

कर्मचारियों के इस गुण के कारण उनके व्यवहार तथा उत्पादन में निरन्तर सुधार आता है अतः नेतृत्व से अपेक्षा की जाती है कि अधीनस्थों के प्रति आदर का भाव, व्यक्तियों की समस्याओं का निपटारा, उद्योग में निरीक्षण करते समय कर्मचारियों से अच्छा व्यवहार आदि प्रबन्ध तथा श्रमिकों के सम्बन्धों को अच्छा बनाता है।

6. प्रत्येक कर्मचारी अपने संगठन से न्याय एवं सम्मानित व्यवहार की आशा रखता है। अतः प्रबन्धकों के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि प्रत्येक अभिप्रेरणा में न्याय के तत्वों का समावेश करें जिनसे व्यक्ति अभिप्रेरण के प्रति अपनी सकारात्मक दृष्टि बना सकें। इसके साथ ही साथ व्यक्ति की चाहत एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने की भी होती है। शायद इसलिए कि संगठन उसे उत्पादन के लिए एक आवश्यक अंग माने इससे उसमें छुपी योग्यता, कुशलता और तकनीकि ज्ञान का गर्व होता है। इस प्रकार अभिप्रेरणा हेतु संगठन को प्रत्येक छोटे बड़े कार्यों से व्यक्तियों को जोड़ा जाये जिससे उनमें यह आभास हो कि यह कार्य बिना उनके कार्य सम्पादित नहीं कर सकता।

7. मनुष्य स्वभाव से जिज्ञासु एवं रचनात्मक प्रवृत्ति को होता है। वह सदैव कार्य से सम्बन्धित सभी पहलुओं की जानकारी इकट्ठा करना चाहता है तथा जानकारी के अभाव में अपने को हतोत्साहित जाता है जिससे उसकी रनचात्मक क्षमता पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। अतः प्रबन्धकों को प्रेरणाओं के माध्यम से कर्मचारियों की रचनात्मक प्रवृत्तियों को बढ़ाना चाहिए तथा उन्हें सम्बन्धित सूचनाएं जो उनकी जिज्ञासा शान्त कर सके प्रदान करना चाहिए।

8. अभिप्रेरण निर्धारण में सहभागिता रूपी कारक भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता हैं। इसे भारत में अनेक रूपों में जाना एवं समझा जाता है, यथा – प्रजातांत्रिक प्रबन्ध, प्रबन्ध में श्रमिकों की भागेदारी, समन्वयकारी पर्यवेक्षक, निर्णयों में सहभागिता आदि। इस प्रकार यदि प्रबन्ध को संगठन की नीतियों के निर्धारण में सहयोग लिया जाये, तो वह इन्हें सम्पादित करने में भी सहयोग करेंगे।

9. अधीनस्थ व्यक्तियों की समस्याओं, भावनाओं को सहानुभूति पूर्वक निपटारा प्रबन्धक कर्मचारी सम्बन्धों को मधुर बनाता है। अतः अभिप्रेरणा में इस तत्व का सदैव समावेश होना चाहिए कि कैसे इनके मध्य सम्बन्ध सदभावपूर्ण बनाये रखे जा सकते हैं।

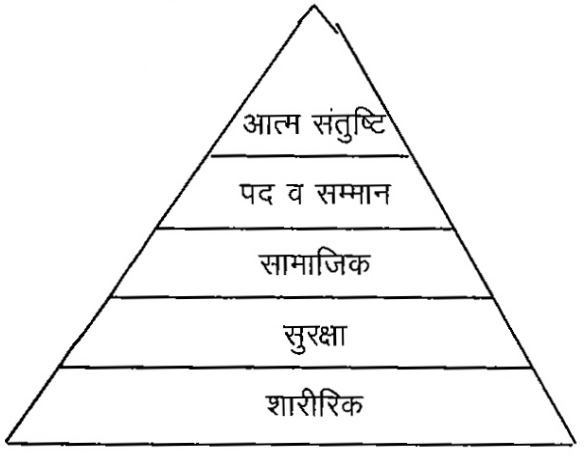
10. उत्तरदायित्व की भावना – पूर्व निर्धारित कार्यों के सफल निस्पादन करने के दायित्व एवं उससे जुड़ अधिकारों का विकेन्द्रीकरण करना भी एक शक्तिशाली प्रेरक होता है। जब अधीनस्थों को यह विश्वास होता है कि उनका नेतृत्व उन पर विश्वास करता है तो वे प्रायः अपने आपको उस कार्य विशेष की सिद्धि के लिए आगे करके स्वयं उस कार्य को करने की इच्छा व्यक्त करते हैं।

11. विभिन्न छोटे छोटे कारकों के अन्तर्गत तकनीकी ज्ञान प्रदान करना कर्मचारियों को उचित प्रशिक्षण प्रदान करवाना, उनके कल्याण हेतु विभिन्न श्रृंखलाबद्ध उपायों का करते रहना भी इनमें पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति की ललक बनाये रखता है।

1.7 अभिप्रेरणा के विभिन्न सिद्धान्त

अब तक के इतिहास में अभिप्रेरणा के सिद्धान्तों का लक्ष्य एकत्रित होकर इसकी प्रक्रिया का विश्लेषण करना तथा यह सिद्ध करना रहा है कि किन किन तरीकों से कर्मचारियों/व्यक्तियों को पूर्व निर्धारित उद्देश्यों के प्रति अभिप्रेरित कर लाभों को अधिकतम किया जा सकता है। इस इकाई में अपने अध्ययन के दृष्टिगत हम तीन प्रसिद्ध सिद्धान्तों, यथा – मैस्लों की आवश्यकता की प्राथमिकता का सिद्धान्त, मैकग्रेगर का सहभागिता सिद्धान्त तथा हर्जबर्ग के दो कारक सिद्धान्तों की विवेचना करेंगे।

1. **मैस्लो का सिद्धान्त** – प्रसिद्ध मानव शास्त्री अब्राहम मैस्लों के सिद्धान्त का आधार मानव की आवश्यकताओं पर आधारित है। मैस्लों के मतानुसार अभिप्रेरणा की समस्त प्रक्रियाओं का उदगम स्थल स्वबहार से प्रारम्भ होता है, जो कम से कम आंशिक रूप में तो आवश्यकताओं की तुष्टि से सम्बन्ध रखती है। आपके अनुसार मानव आवश्यकताएं एक विशेष क्रम में व्यवस्थित रहती हैं तथा ये नीचे से ऊपर की ओर अग्रसर होती हैं। आइये अग्रलिखित चित्र से इसे समझने का प्रयत्न करें :–



1. **शारीरिक आवश्यकताएं** :– अभिप्रेरणा के सिद्धान्त का प्रारम्भ होता है आवश्यकताओं से और इनमें सम्मिलित होती है शारीरिक आवश्यकताए। ये आवश्यकताएं मानव जीवन के अस्तित्व को बनाए रखने से सम्बन्धित होती है। अतः इनमें रोटी, कपड़ा, मकान, हवा, पानी आदि को सम्मिलित किया जाता है।मानव जीवन में मैस्लों के अनुसार द्वितीय चरण की आवश्यकताओं से पूर्व इस चरण की गतिमान करने में समर्थ होती है। अतः मानव जीवन हेतु इनका पूर्ण किया जाना आवश्यक है अतः इसे मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताओं के खण्ड में रखा जाता है।

2. **सुरक्षा सम्बन्धी आवश्यकताएं** :– जैसे जैसे प्रथम चरण की आवश्यकताएं पूर्ण होती हैं व्यक्ति सुरक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं के स्तर में प्रवेश करता है जिसके अन्तर्गत वो वित्तीय, व्यक्तिगत, वृद्धावस्था, जोखिम, आदि के प्रति सुरक्षा प्राप्त करने का प्रयास करता है। इस चरण को भी प्राथमिक आवश्यकताओं वाले खण्ड में ही रखा जाता है।

3. **सामाजिक आवश्यकताएं** :– प्राथमिक आवश्यकताओं के खण्ड की अन्तिम आवश्यकता के रूप में सामाजिक आवश्यकता को मान्यता दी जाती है। चूँकि मनुष्य बिना समाज के जीवन यापन नहीं कर सकता अतैव वह संचार, पारम्परिक सामाजिक आदान प्रदान, सामाजिक सम्बन्ध मेल मिलाप, प्रेम आदि करना पसन्द करता है। व्यक्ति भी सामाजिकता के कारण छोटे छोटे समूहों में कार्य करता है जिसमें वह अच्छे सम्बन्ध बनाकर कार्य करता है जो उन समूह की सफलता के लिये आवश्यक माने जाते हैं।

4. **पद व सम्मान की आवश्यकताएं** :– इस प्रकार की आवश्यकताओं के अन्तर्गत अन्य व्यक्ति द्वारा अपने को महत्व तथा प्रशिक्षित प्राप्त करने से होता है। कुछ लोगों की मानना है कि अन्य आवश्यकताओं की अपेक्षा यह सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता है। प्रद व सम्मान की आवश्यकताओं की पूर्ति, आत्मविश्वास, सम्मान, शक्ति तथा नियंत्रण की भावना उत्पन्न करती है। सम्मान की आवश्यकता की पूर्ति संगठन में काम करने के लिए आत्मविश्वास शक्ति तथा योग्यता प्रदान करती है। दूसरे शब्दों में इनकी पूर्ति न होने से हीनता, कमजोरी तथा आत्मसमर्थता की भावना आती है। इस आवश्यकता को मैस्लों गौण आवश्यकता वाले खण्ड में रखते हैं।

5. **आम संतुष्टि सम्बन्धी आवश्यकता** :– गौण आवश्यकताओं में सम्मिलित यह आवश्यकता क्रमबद्धता सोपान में अन्तिम चरण होता है जिसमें आत्मसन्तोष के लिए स्वयं प्रेरित अथवा अपनी निरन्तर वृद्धि के लिए सचेत रहने से जुड़ी आवश्यकता कह कर भी सम्बोधित किया गया है। दूसरे शब्दों में सदैव सृजनात्मक बने रहने तथा रचनात्मक कार्य करते रहने के लिए उपयोग किया जाता है। पहले के चार चरण पूण

होने के बाद व्यक्ति को निजी उपलब्धि पाने की चाह उत्पन्न होती है। वह कुछ ऐसा करना चाहता है जो चुनौती पूर्ण हो और जिसे पाने के बाद दूसरे उसका लोहा माने तथा यह सिद्ध हो सके कि यह कार्य उसके बिना कोई कर ही नहीं सकता। इस प्रकार यह चुनौती स्वयं उसके लिए तथा सामान्य रूप से समाज के लिए लाभदायाक होती है।

मैस्लों के अनुसार आवश्यकताएं निश्चय ही क्रमबद्धता के सोपान में एक दूसरे को प्रभावित करती है। एक चरण के बाद आवश्यकता का दूसरा चरण तब तक नहीं आता जब तक पहला चरण पर्याप्त मात्रा में पूर्ण नहीं हो जाता और इस प्रकार सोपान आगे बढ़ता रहता है। इस प्रकार यदि एक कर्मचारी की प्रथम चरण तथा द्वितीय चरण की आवश्यकतां पूरी नहीं होती तब इन आवश्यकताओं को पूरा करने के पश्चात ही उसे निश्चित दिशा में अभिप्रेरित किया जा सकता है न कि उच्च चरण वाली आवश्यकताओं को पूरा करके इस क्रम में आने वाली अन्य आवश्यकताएं को पूरा करने से वह अभिप्रेरित नहीं होगा। अतः शारीरिक व सुरक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं के चरण सीमित होते हैं किन्तु उच्च क्रम पर आने वाले आवश्यकताएं अनन्त होती हैं और संगठन उच्च स्तर पर कार्यरत व्यक्तियों के लिए अहम बनी रहती है।

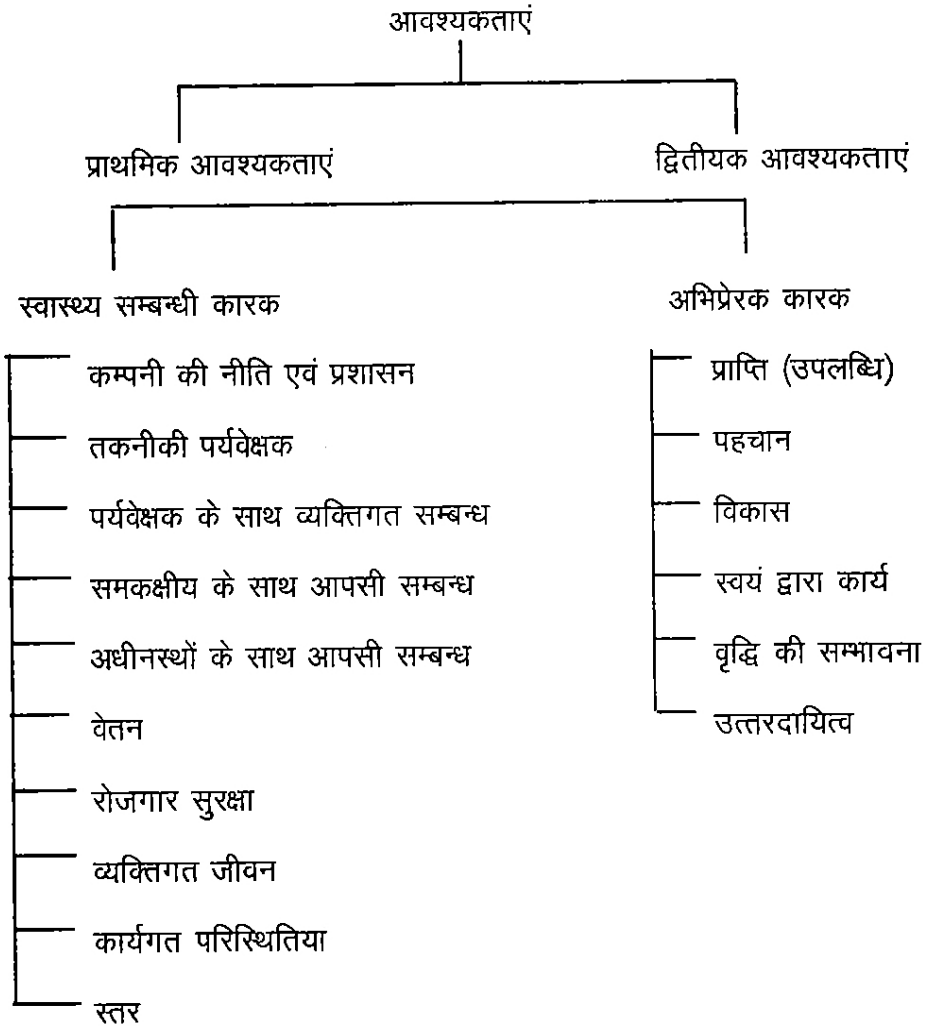
2. हर्जवर्ग के दो कारक (स्वास्थ्य अभिप्रेरक) का सिद्धान्त

फ्रेडरिक हर्जवर्ग साहब ने काम की परिस्थितियों में अभिप्रेरण के कारक तथा नौकरी पर बने रहने के कारणों के बीच अन्तर का माडल प्रस्तुत कर अभिप्रेरणा के सिद्धान्तों में एक महत्वपूर्ण विकास किया। हर्जवर्ग ने अपने लम्बे शोध कार्यो के परिणाम स्वरूप इन्हें प्रेरणात्मक तथा स्वास्थ्य कारक की संज्ञा दी तथा इनके मध्य अन्तर स्थापित किया है।

कार्यस्थल पर कार्य की कुछ ऐसी परिस्थितियां होती हैं जिन्हें कर्मचारी नहीं चाहते तथा कुछ ऐसी होती हैं जिन्हें तो चाहता है। चाहने वाली परिस्थितियों की अनुपस्थिति पर कर्मचारी असंतुष्ट होते हैं परन्तु जब ये परिस्थितियां उपस्थित नहीं होती है तो वे कर्मचारियों को सुगमता से अभिप्रेरित नहीं कर पाती ।

इनमें से अधिक कारक प्रबन्धक द्वारा परम्परा से शक्तिशाली अभिप्रेरक कारक माने जाते रहे हैं किन्तु वास्तव में वे प्रेरक कारक न होकर असंतुष्टि का आधार बन जाते हैं। कार्य के दौरान इन आधार रूपी कारकों को रखरखाव कारकों की संज्ञा दी जाती है क्योंकि कर्मचारियों में संतुष्टि का उचित स्तर बनाये रखने के लिए इसकी उपस्थिति अनिवार्य होती है। इन्हें असंतुष्ट अथवा स्वास्थ्य सम्बन्धी कारक भी कहा जाता है क्योंकि ये कारक सदैव कर्मचारियों के मानसिक स्वास्थ्य को शक्ति देने का कार्य करते । इन्हें अग्रलिखित तालिका द्वारा समझा जा सकता है।

RIL-080



इस प्रकार स्वास्थ्य सम्बन्धी कारकों के अन्तर्गत मजदूरी, अतिरिक्त सुविधाएं भौतिक स्थितियों तथा कुल मिलाकर कम्पनी की नीति और प्रशासन शामिल हैं। एक सन्तोष पद स्तर तक इन तत्वों की उपस्थिति कार्य से होने वाले असन्तोष को रोकती है किन्तु वे कर्मचारियों को प्रेरणा प्रदान नहीं कर पाती। अतः वे अभिप्रेरण तत्व नहीं माने जाते। दूसरें और अभिप्रेरक तत्व कर्मचारियों द्वारा उत्पादिता में वृद्धि लाने के लिए आवश्यक है। उन्हें सन्तुष्टि प्रदान करने वाले तत्व भी कहा जाता है तथा मान्यता प्रदान करना उपलब्धि और प्राप्ति की भावना, उन्नति के अवसर तथा व्यक्तिगत विकास का सामर्थ्य और दायित्व तथा कार्य और व्यक्ति का महत्व नवीन अनुभव व चुनौती पूर्ण कार्य अन्तर्गत आदि कारक सन्तुष्टि प्रदान करने वाले कारकों के अन्तर्गत है।

कुछ समय पश्चात पुनः अपने नवीन शोधों में कहा कि स्वास्थ्य सम्बन्धी कारकों के प्रति अब प्रबन्धकों का झुकाव ज्यादा बढ़ता जा रहा है। परिणाम स्वरूप वे कर्मचारियों से अनुकूल व्यवहार प्राप्त नहीं कर पाते हैं। कर्मचारियों के अभप्रेरणा में वृद्धि करने हेतु संतुष्टि प्रदान करने वाले अभिप्रेरणात्मक कारकों की ओर पर्याप्त ध्याय देना आवश्यक

है। आपके अनुसार वर्तमान के अभिप्रेरक आने वाले समय के लिए स्वास्थ्य सम्बन्धी कारक बन जाते हैं क्योंकि इन तत्वों की एक बार प्राप्ति हो जाने पर वे प्रेरक कारक नहीं रह जाते, इनकी कर्मचारियों को प्रभावित करने की शक्ति क्षीण हो जाती है। जब एक कर्मचारी का एक अमुख उद्देश्य पूरा हो जाता है तब कोई अन्य कारक ही उसे प्रेरित कर सकता है तथा जिन आवश्यताओं की पूर्ति उसे पहले हो चुकी है। वह उस कर्मचारी के व्यवहार को निर्धारित करते समय प्रतिकूल प्रभाव डालने का कार्य करती है।

इस तथ्य का संज्ञान लेना भी आवश्यक है कि एक कर्मचारी के लिए स्वास्थ्य सम्बन्धी कारक दूसरे के लिए अभिप्रेरक का कार्य करते हैं। उदाहरण के रूप में हम कह सकते हैं कि विकासशील अर्थव्यवस्था वाले राष्ट्रों में कार्यरत कर्मचारियों के लिए स्वास्थ्य सम्बन्धी कारकों में से कुछ अभिप्रेरक कारक बन जातें हैं क्योंकि उनकी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति आपूर्ति रह जाती है और वे उन कारकों से निरन्तर प्रेरित होते रहते हैं।

3. डगलस मैगग्रेगर का सहभागिता का सिद्धान्त

डगलस मैगग्रेगर ने मानव सम्बन्धी दो प्रमुख मान्यताएं प्रस्तुत की जो श्रमिकों के कार्य में सहभागिता पर आधारित है। प्रथम मान्यता को एक्स एम का सिद्धान्त कहा गया तथा दूसरे को वाईस सिद्धान्त की संज्ञा दी गयी आपके अनुसार औसत मानव स्वाभाविक रूप से कार्य के प्रति अरूचि रखता है और जहाँ तक सम्भव होता है कार्य से बचना चाहता है। इस प्रकार के कर्मचारियों को डराना, धमकाना, नियंत्रित करना, निर्देशित करना अनिवार्य हो जाता है। जिससे वे संगठनात्मक लक्ष्यों की प्रति के लिए पर्याप्त प्रयास करेंगे।

अभिप्रेरणा का सिद्धान्त – इस प्रकार अभिप्रेरणा देते समय मुख्यतः 'X' सिद्धान्त अथवा 'Y' सिद्धान्त को ध्यान में रखा जाता है। 'X' सिद्धान्त निराशावादी दृष्टिकोण पर आधारित है और 'Y' सिद्धान्त आशावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। इन दोनों सिद्धान्तों का विवेचन इस प्रकार से है :–

(1) 'एक्स' सिद्धान्त :– यह सिद्धान्त इस परम्परागत विचारधारा पर आधारित है कि कोई व्यक्ति स्वतः कार्य नहीं करना चाहता है। इस सिद्धान्त की मान्यता है कि व्यक्ति को डराकर, भय दिखाकर अथवा डण्डे के बल पर काम करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। इसमें नेता के पास समस्त अधिकार होते है तथा वह अध

गिनस्थों को आदेश देकर उनसे कार्य कराता है। इस सिद्धान्त की प्रमुख मान्यताएं निम्नलिखित हैं :–

(अ) कोई भी व्यक्ति स्वेच्छा से कार्य करना नहीं चाहता है।

(ब) प्रायः व्यक्तियों की काम करने के प्रति कोई रूचि नहीं होती है।

(स) प्रत्येक व्यक्ति निर्देशन में ही कार्य करना पसन्द करता है।

(द) व्यक्ति से कार्य डरा–धमकाकर अथवा डण्डे के बल पर ही कराया जा सकता है।

(य) कोई भी व्यक्ति उत्तरदायित्व वहन करना नहीं चाहता है अर्थात् सभी व्यक्ति उत्तरदायित्व स्वीकार करने से बचते हैं।

(र) प्रायः व्यक्ति जोखिम के स्थान पर सुरक्षा चाहते हैं अतः वे कम महत्वाकांक्षी होते है।

(ल) प्रबन्धक श्रमिकों से मशीन की भांति कार्य करना चाहता है।

(व) प्रत्येक व्यक्ति को वित्तीय प्रलोभन अर्थात मौद्रिक प्रेरणा देकर अधिक कार्य करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

(श) यह सिद्धान्त परम्परागत विचारधारा पर आधारित है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि यह सिद्धान्त निराशावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। इससे व्यक्ति पर कार्य करने के लिए दबाव डाला जाता है। इसके अन्तर्गत श्रमिकों को अभिप्रेरणा नहीं दी जाती है जिससे उपक्रम में मानवीय सम्बन्ध मधुर नहीं करते हैं। इस कारण श्रमिक असन्तुष्ट रहते हैं तथा वे उपक्रम को हानि पहुँचाते हैं।

(2) 'वाई' सिद्धान्त :– 'एक्स' सिद्धान्त के दोषों को दूर करने के लिए 'वाई' सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया। यह सिद्धान्त आशावादी दृष्टिकोण पर आधारित है। इसमें मानवीय सम्बन्धों पर अधिक ध्यान दिया जाता है। इस सिद्धान्त की प्रमुख मान्यताएं निम्नलिखित हैं –

(अ) कोई भी व्यक्ति कार्य से नहीं घबराता है अर्थात प्रत्येक व्यक्ति स्वेच्छा से कार्य करना चाहता है। इसके लिए आवश्यक है कि व्यक्ति को कार्य करने का अवसर प्रदान किया जाये।

(ब) प्रत्येक व्यक्ति कार्य करके ही सन्तुष्ट रहता है व्यक्तियों में कार्य के प्रति

कोई अरूचि नहीं होती है तथा कोई भी कार्य अरूचिपूर्ण नहीं होता है।

(स) किसी भी व्यक्ति से डरा–धमकाकर कार्य का निष्पादन नहीं कराया जा सकता। कार्य का निष्पादन कराने के लिए व्यक्ति को उचित वातावरण, साधन एवं अवसर प्रदान किये जाने चाहिए।

(द) प्रत्येक व्यक्ति महत्वाकांक्षी होता है। व्यक्ति कार्य के प्रति अपने उत्तरदायित्व से बचना नहीं चाहता है वरन वह उत्तरदायित्व स्वीकार करना चाहता है।

(य) यह सिद्धान्त कर्मचारियों की सन्तुष्टि पर अधिक ध्यान देता है। इससे उपक्रम में मानवीय सम्बन्ध मधुर रहते हैं।

(र) यह सिद्धान्त जनतांत्रिक सिद्धान्त पर आधारित है क्योंकि इसमे कर्मचारियों से विचार विमर्श करके उनकी समस्याओं का निवारण किया जाता है।

(ल) यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि व्यक्ति को मौद्रिक अभिप्रेरणाओं के साथ साथ अमौद्रिक अभिप्रेरणायें भी दी जानी चाहिए।

(व) इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति अपने पद से सन्तुष्ट रहता है तथा उसका जीवन स्तर भी ऊँचा रहता है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि 'वाई' सिद्धान्त में कर्मचारियों की समस्याओं पर अधिक बल दिया जाता है तथा उन्हें उत्पादन का महत्वपूर्ण अंगमाना जाता है। इससे कर्मचारी उपक्रम में संतुष्ट रहते हैं तथा उपक्रम के लिए अच्छे उत्पादक सिद्ध होते हैं । इससे श्रमिकों का स्तर ऊँचा रहता है तथा उन्हें उपक्रम में मान्यता मिलती है। इसीलिए आधुनिक औद्योगिक युग में 'वाई' सिद्धान्त को अपनाया जाता है।

स्व–परख प्रश्न

1. निम्नलिखित में से सही तथा गलत कथन को इंगित करें।

1– प्रेरणा तथा आवश्यकताएं यह स्पष्ट करती है कि व्यक्ति .....
क्यों अमुक प्रकार का व्यवहार करता है।

2– प्रेरणाएं सदैव सामंजस्य के वातावरण में कार्य करती हैं तथा .....
व्यक्ति को एक ही ओर चलने के लिए निर्देशित करता है।

3– अधीनस्थों के व्यवहार को नियंत्रित रखने के लिए, प्रबंधकों .....

द्वारा उनकी आवश्यकताओं को जान लेना जरूरी है।

4– वातावरण का मानव की अभिप्रेरणाओं के साथ कोई संबंध ..... नहीं होता ।

5– समय बदलने पर प्रेरणाओं में कोई परिवर्तन नहीं होता। .....

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

1– प्रेरणाएं व्यक्ति की ..... अभिव्यक्ति होती है, अतः निजी और ..... होती है।

2– ..... को व्यक्ति की प्रेरणा के अनुमान के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

3– वातावरण द्वारा ..... आवश्यकताओं को शीघ्रता से प्रोत्साहित किया जा सकता है

4– प्रेरणाएं ..... की ओर निदेशित की जाती हैं।

5– संगठनात्मक प्रभावोत्पादकता कुछ अंश तक कर्मचारियों को..... करने की प्रबंधकों की योग्यता पर निर्भर करती हैं।

1.8 सारांश

अभिप्रेरणा की परिभाषा देते हुए यह कहा जा सकता है कि यह शक्तियों का एक सम्मिश्रण है जो कार्यरत व्यक्ति को अधिक कार्य करने तथा निर्धारित उद्देश्यों को पूरा करने के हेतु अपनी अधिकतम योग्यता का प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित करता है। व्यक्तियों के उद्देश्य अथवा आवश्यकताएं अभिप्रेरण प्रक्रिया का आरम्भिक बिन्दु होते हैं। प्रेरणा स्फूर्ति करने वाली तथा अदृश्य शक्तियॉं हैं। एक प्रेरणा के कारण विभिन्न व्यवहार उत्पन्न हो सकते हैं। यह भी सत्य है कि विभिन्न प्रेरणाओं से एक ही प्रकार का व्यवहार उत्पन्न हो सकता है। व्यवहार को एक व्यक्ति के उद्देश्य का अनुमान लगाने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। प्रेरणाएं सामंजस्य अथवा अर्न्तद्वन्द दोनों ही स्थितियों में काम कर सकते हैं, समय के अनुसार प्रेरणाएं बदलती रहती हैं, प्रेरणाएं वातावरण के अनुसार भी कार्य करती हैं।

अभिप्रेरण प्रक्रिया के मूल तत्व इस प्रकार है : (1) व्यवहार (2) उद्देश्य (3) लक्ष्य, किसी प्रकार का पुनः निवेशन अथवा प्रतिक्रिया। लक्ष्य की प्राप्ति की इच्छा को जागृत करने के लिए सामान्यतः व्यवहार को अभिप्रेरित किया जाता है। प्रेरणाएं लक्ष्यों

यकी ओर निदेशित होती हैं और ये व्यक्तियों को कार्य करने के लिए प्रेरित करती हैं। मैकग्रेगर ने मानव के विषय में मान्यताओं के दो सेट प्रतिपादित किए थे जो अभिप्रेरण की एक्स तथा वाई सिद्धान्त के आधार बने। उन्होंने एक्स सिद्धान्त को परम्परावादी सिद्धान्त कहा, जिसके अनुसार इस मान्यता के आधार पर कि औसत मानव काम करना पसंद नहीं करता और जहां तक हो सके इससे बचता है इसलिए कर्मचारियों को समझा बुझा कर करम करने के लिए राजी किया जाता है और उसे काम करने के लिए प्रेरित किया जाता है। उन्होंने वाई सिद्धान्त को इस मान्यता के आधार पर प्रतिपादित किया कि स्वभाव से ही व्यक्ति कार्य के प्रति रूचि रखता है तथा स्वयं ही निदेशित और आत्म नियंत्रण के साथ उन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयास करता रहता है, जिनके लिए वह वचनबद्ध हुआ है।

मैस्लों का आवश्यकताओं की प्राथमिकता सिद्धान्त व्यक्ति की आवश्यकताओं पर आधाारत है। जिसके अनुसार मनुष्य की आवश्यकताएं एक श्रेणीबद्ध अनुक्रम में होती है जो शारीरिक आवश्यकताओं से शुरू होकर सुरक्षा आवश्यकताओं, सामाजिक आवश्यकताओं, सम्मान, व पद की आवश्यकताओं और आत्मसंतुष्टि की आवश्यकताओं तक चलती है। हर्जवर्ग का दो कारक सिद्धान्त रखरखाव अथवा स्वास्थ्य संबंधी तत्वों और अभिप्रेरक तत्वों के बीच अन्तर स्पष्ट करता है। पहले के तत्वों का केवल नकारात्मक महत्व होता है जबकि बाद के तत्वों का अभिप्रेरणा पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। रखरखाव कारकों जैसे मजदूरी, रोजगार, सुरक्षा, कार्य करने की दशाएं और इसी प्रकार के बाह्य तत्वों के न होने पर व्यक्ति को असंतुष्टि होती है, किन्तु उनकी उपस्थिति प्रेरणा प्रदान नहीं करती। दूसरी, ओर अभिप्रेरक कारक जैसे मान्यता, उपलब्धि आदि कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने के लिए आवश्यक है और ये तत्व सकारात्मक प्रोत्साहन प्रदान करते हैं।

हर्जवर्ग ने कार्यान्वित को अभिप्रेरण का एक महत्वपूर्ण कारक माना है । इसका अर्थ है कार्य की प्रक्रियाओं को सम्बल करना अथवा जानबूझकर कार्य के उत्तरदायित्व कार्यक्षेत्र और चुनौती में सुविचार रूप से वृद्धि करना। कार्योन्नति और कार्य विस्तार में अन्तर है। कार्योन्नति में समतल रूप में अर्थात एक ही प्रकार के कार्यों में वृद्धि होती हैं।

अभिप्रेरण को विभिन्न आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है, उदाहरण के लिए सकारात्मक तथा नकारात्मक, बाह्य तथा आन्तरिक, वित्तीय तथा गैर वित्तीय। सकारात्मक अभिप्रेरण कर्मचारियों के व्यवहार को उनके रिकार्ड के द्वारा प्रभावित करने

RIL-080

की प्रक्रिया है। नकारात्मक अभिप्रेरणा भय और धमकी जैसे पद अवनति, छंटनी, आदि पर आधारित होती है। आंतरिक अभिप्रेरयक तत्वों का अस्तित्व कार्य के बाहर होता है और वित्तीय प्रकृति के होते हैं। आंतरिक अभिप्रेरक तत्व आत्म तुष्टि की दशा से संबंधित होते हैं और कार्य के अन्दर निहित होते हैं।

वित्तीय अभिप्रेरण से आशय पैसे या द्रव्य लाभ के रूप में पायी जाने वाली, जैसे मजदूरी और वेतन, बोनस, चिकित्सा, लाभ आदि अभिप्रेरण से होता है। गैर–वित्तीय अभिप्रेरण में प्रतियोगिता, प्रशंसा, परिणामों की जानकारी, प्रबंध में सहभागिता, विकास के अवसर आदि प्रोत्साहन सम्मिलित होते हैं।

स्वपरख प्रश्न

(1) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

क) एक्स सिद्धान्त के अनुसार श्रमिकों से ..... नेतृत्व द्वारा ही कार्य कराया जा सकता है।

ख) मैस्लों अभिप्रेरणा के सिद्धान्त में ..... आवश्यकताओं को प्रारंभिक बिन्दु माना गया है।

ग) आवश्यकताओं के क्रम में निम्नस्तर पर आने वाली आवश्यकताएं..... होती हैं किन्तु उच्च स्तर वाली आवश्यकताएं ..... होती हैं।

घ) कारक जिनको असंतुष्टि कारक भी कहा जाता है, अभिप्रेरणा के लिए नकारात्मक महत्व रखते हैं।

ङ) कार्योन्नति ..... तकनीक होती है।

(2) कालम एक और दो में दिये गये शब्दों/वाक्यांशों के वर्ण व संख्या को मिलाते हुए जोड़ें ।

कालम एक	कालम दो
1) स्वास्थ्य संबंधी कारक	क) उत्तरदायित्व में वृद्धि
2) एक्स सिद्धान्त	ख) प्राप्ति (उपलब्धि)
3) वाई सिद्धान्त	ग) समान कार्यों की वृद्धि
4) कार्य में उन्नति	घ) वेतन
5) वास्तविक अभिप्रेरक	ङ) कार्य करना उतनी ही

स्वाभाविक है

6) कार्य विस्तार च) कार्य में अरूचि

(3) निम्नलिखित कथनों में से कौन सा कथन सही है और कौन सा गलत।

1) नकारात्मक अभिप्रेरणा दण्ड के भय से व्यवहार को प्रभावित..... करती है।

2) आन्तरिक अभिप्रेरणा में मजदूरी, अतिरिक्त लाभ आदि ..... कारक सम्मिलित होते हैं।

3) प्रबंध में कर्मचारियों की सहभागिता गैर वित्तीय प्रोत्साहन ..... माना जाता है।

4) विकास का अवसर एक वित्तीय प्रोत्साहन है। .....

5) द्रव्य लाभ असीमित मात्रा में अभिप्रेरक हो सकता है .....

(4) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

1) जब तक ..... और ..... आवश्यकताओं की पूर्ण रूप से संतुष्टि नहीं हो जाती, पैसा वास्तविक रूप से अभिप्रेरक तत्व होता है।

2) सकारात्मक अभिप्रेरणा ..... पर आधारित होती है।

3) स्वास्थ्य संबंधी कारक ..... आवश्यकताओं को पूरा करते हैं।

4) कर्मचारियों के बीच प्रतियोगिता ..... प्रोत्साहन कहलाती है।

5) कार्य निस्पादन के परिणामों का ज्ञान ..... की ओर ले जाता है।

1.9 उपयोगी शब्द कोश

व्यवहार : निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए एक व्यक्ति अथवा व्यक्ति समूह के द्वारा की जाने वाली निरंतर कार्यवाही व्यवहार कहलाती है।

पद व सम्मान : ये आवश्यकताएं आत्मविश्वास, स्वतंत्रता, उपलब्धि, क्षमता की आवश्यकताएं अगुआई, सफलता आदि से संबंधित होती है।

बाह्य अभिप्रेरणा : ये ऐसे प्रोत्साहन है जो कार्य के बाहर से प्रभाव डालते हैं -

मजदूरी, अतिरिक्त लाभ आदि ।

वित्तीय प्रोत्साहन : ये प्रोत्साहन जो पैसे अथवा लाभ के रूप में जैसे – मजदूरी, वेतन, अवकाश प्राप्ति के समय मिलने वाले लाभ, बीमा, चिकित्सा प्रतिपूर्ति आदि वित्तीय प्रोत्साहन के अन्तर्गत आते हैं।

आंतरिक अभिप्रेरणा : इस प्रकार की अभिप्रेरण से आशय कार्य से जुड़ी हुई वस्तु/ सुविधाओं से है जो कर्मचारी को कार्य का निष्पादन करते समय संतृष्टि प्रदान करती है।

कार्योन्नति : यह एक प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत कार्य की विषय सामग्री उत्तरदायित्व क्षेत्र, विविधता तथा चुनौती में वृद्धि की जाती है।

अभिप्रेरण : अभिप्रेरण प्रक्रिया से तात्पर्य यह आवश्यकताएं जो मानव के व्यवहारों को निदेशित तथा नियंत्रित करते है।

(प्रेरणा) उद्देश्य : उद्देश्य व्यवहार को प्रभावित करने वाले मूल प्रेरक हैं जो व्यक्तियों को कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

अभिप्रेरक : अभिप्रेरक कार्य के विषय में कर्मचारियों की सकारात्मक भावनाओं से जुड़े होते हैं।

नकारात्मक अभिप्रेरण : यह नौकरी छुटने अथवा पद अवनति के भय द्वारा कर्मचारियों के व्यवहार को प्रभावित करने वाली प्रक्रिया का बोध कराती है।

गैर वित्तीय प्रोत्साहन : पद, मान्यता, चुनौतीपूर्ण कार्य आदि जैसे प्रोत्साहन इसके अन्तर्गत आते हैं।

शारीरिक आवश्यकताएं : मानव के जीवित रहने तथा रखरखाव वाली आवश्यकताएं जैसे कपड़ा, भोजन, आवास, पानी, आराम, आदि शारीरिक आवश्यकताएं होती हैं।

सकारात्मक अभिप्रेरण : यह पारितोषिक प्राप्त करने की संभावना से कर्मचारियों के व्यवहार को प्रभावित करने वाली प्रक्रिया का बोध कराती है।

सुरक्षा की आवश्यकताएं : ये आवश्यकताएं रोजगार सुरक्षा, शारीरिक सुरक्षा, आय प्राप्ति की निरंतरता, वृद्धावस्था में सहारें की व्यवस्था आदि से संबंधित होती है।

आत्म तुष्टि एवं आत्म संतोष : इस प्रकार की आवश्यकताओं का विस्तृत अर्थ व्यक्ति की निरंतर आत्म विकास करने की शक्ति तथा सृजनात्मक कार्य करने की क्षमता से है।

सामाजिक आवश्यकताएं : ये आवश्यकताएं सामाजिक प्रोत्साहनों, एक दूसरे से सामीप्य का अनुभव, साथी बने रहने, अपनापन समझने आदि का बोध कराती है।

1.10 महत्वपूर्ण प्रश्नावली

प्र.1 अभिप्रेरणा की परिभाषा दीजिए? एक आधुनिक संगठन के लिए इसके महत्व का वर्णन कीजिए।

प्र.2 अभिप्रेरण शब्द से आप क्या समझते हैं? सकारात्मक और नकारात्मक अभिप्रेरण में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

प्र.3 हर्जबर्ग के दो कारक सिद्धान्त का वर्णन कीजिए तथा मैस्लों की आवश्यकता क्रम सिद्धान्त से इसकी तुलना कीजिए।

प्र.4 मैकग्रेगर के एक्स तथा वाई सिद्धान्त की मान्यताओं का वर्णन कीजिए। भारत में कौन सा सिद्धान्त लागू होता है।

प्र.5 आवश्यकताओं की क्रमबद्धता का क्या अर्थ है? क्या यह क्रमबद्धता दृढ़ अनन्य होती है? उपयुक्त उदाहरण देते हुए विवेचना कीजिए।

प्र.6 "आधुनिक संगठनों में द्रव्य की अभिप्रेरणा को कार्यान्वित करने की कुंजी है।" विवेचना कीजिए।

प्र.7 "गैर वित्तीय प्रोत्साहन भी उतने ही शक्तिशाली अभिप्रेरक होते हैं जितने कि वित्तीय प्रोत्साहन।" इस कथन में अभिप्रेरणा की आवश्यकता का प्राथमिकता मॉडल और दो कारकों के सिद्धान्त के संदर्भ में विवेचना कीजिए।

इकाई –2 नेतृत्व

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 नेतृत्व की संकल्पना तथा विशेषताएं

2.4 प्राचीन तथा आधुनिक संकल्पना

2.5 नेतृत्व के कार्य तथा महत्व

2.6 अभिप्रेरक और नेतृत्व

2.7 मनोबल और नेतृत्व

2.8 नेतृत्व के विभिन्न स्वरूप

2.9 नेतृत्व के विभिन्न सिद्धान्त

2.10 नेतृत्व की प्रभावकारिता

2.11 नेतृत्व के पथ में आने वाली बाधाएं

2.12 सारांश

2.13 उपयोगी शब्दकोश

2.14 महत्वपूर्ण प्रश्नावली

2.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

- नेतृत्व के महत्व को प्रबन्ध के क्षेत्र में समझ सकेंगे,
- नेतृत्व की प्राचीन तथा आधुनिक संकल्पनाओं को जान सकेंगे,
- नेतृत्व के विभिन्न कार्यों तथा इसके महत्व का विवेचन कर सकेंगे,
- नेतृत्व का अभिप्रेरणा और मनोबल के साथ जुड़ाव को आत्मसात कर सकेंगें,
- नेतृत्व के सिद्धान्तों और विभिन्न तरीकों का वर्णन कर सकेंगे,
- नेतृत्व की प्रभावकारिता तथा इसकी सफलता में आने वाली बाधाओं की विवेचन कर सकेंगे।

2.2 प्रस्तावना

पिछली इकाई में प्रबन्ध के निर्देशन में से एक प्रमुख कार्य अभिप्रेरणा के सम्बन्ध मे ज्ञान प्राप्त किया। प्रस्तुत इकाई में आप निर्देशन कार्य के दूसरे पहलू नेतृत्व

के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। जैसा कि हम जानते हैं प्रबन्ध का तात्पर्य व्यक्तियों के सहयोग से किसी कार्य को पूर्ण करना है। इस हेतु एक प्रबन्धक अपने पदानुक्रम के अनुसार अपने अधीनस्थों को कार्य करने हेतु विभिन्न आदेश व निर्देशों का निर्गमन करता है। इसी लिए प्रबन्धकों को अपने अधीनस्थों के कार्य व्यवहार को प्रभावित तथा नियमित करने की आवश्यकता पड़ती हैं। प्रबन्धकों के नेतृत्व रूपी गुणों के द्वारा ही अधीनस्थों को अपने काम को सुव्यवस्थित तरीके से सम्पन्न करने के लिए और दलीय कार्य कलाप में समन्वय बनाये रखने हेतु प्रेरित किया जा सकता है। इस प्रकार औपचारिक अधिकार रखने वाला एक प्रबन्धक अपने पद सम्बन्धी अधिकारों के फलस्वरूप अपने अधीनस्थों का निर्देशन और पद प्रदर्शन कर उनका सुव्यवस्थित अनुपालन सुनिश्चित कर सकता है। यह इकाई नेतृत्व के कार्य, महत्व, तरीके सिद्धान्त तथा इसके मार्ग में आने वाली प्रमुख बाधाओं को विवेचित करने का प्रयास करेगी।

2.3 नेतृत्व की संकल्पना तथा विशेषताएं

व्यक्ति के दृष्टिकोण को व्यापक बनाने की एक विशेषता को नेतृत्व की संज्ञा दी जाती है। यह अधीनस्थों के कार्य परिणामों को सुव्यवस्थित तथा उद्देश्योन्मुख बनाने का कार्य करती है। नेतृत्व पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के मार्ग में दलीय कार्य कलाप को निरन्तर प्रभावित करने की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित की जा सकती है। इस प्रकार नेतृत्व करने वाला किसी समूह का वह व्यक्ति होता है जो समूह को स्वेंच्छापूर्वक कार्य करने हेतु प्रेरित करने की योग्यता रखता है।

अधीनस्थों का पथ प्रदर्शन और निर्देशन करता है तथा उनके प्रयत्नों को उद्देश्य और दिशा प्रदान करता है। नेता उस समूह का हिस्सा होता है जिसका नेतृत्व वह करता है परन्तु वह अन्य सभी सदस्यों से भिन्नता लिये होता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं नेतृत्व व्यक्तियों को सामूहिक उद्देश्यों को प्राप्त करने की स्वैच्छिक प्रयासों को प्रभावित करने की क्रिया है। अतः नेतृत्व मुख्य रूप से औपचारिक एवं अनौपचारिक परिस्थितियों में दूसरों की प्रवृत्तियों एवं व्यवहार को एक स्वरूप प्रदान करने की क्षमता है।

प्रबन्धकों को सामूहिक उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु अपने कर्मचारियों का पथ प्रदर्शन और नेतृत्व निरन्तर करते रहना पड़ता है। इसलिए एक प्रबन्धक जो अच्छा नेता भी है, अधिक प्रभावशाली हो सकता है। वह सामूहिक निस्पादन के लिए केवल अपनी पदीय शक्ति अथवा औपचारिक अधिकारों पर आश्रित नहीं रहता बल्कि इस उद्देश्य के लिए वह नेतृत्व प्रभाव का उपयोग करता है। एक नेता के तौर पर वह कार्य समूह के सभी सदस्यों के व्यवहार को नियंत्रित कर प्रत्येक कर्मचारी और सम्पूर्ण समूह के हितों को प्रभावित करता है परन्तु यह ध्यान देने योग्य है कि नेतृत्व और प्रबन्ध एक

RIL-080

कह अवधारणा नहीं है। प्रबन्ध में विभिन्न संगठनात्मक उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु नियोजन, संगठन, समन्वय और नियंत्रण के कार्य सम्मिलित हैं।

अतः नेतृत्व एक ऐसी सुव्यवस्थित प्रक्रिया है जो कर्मचारियों को प्रभावित करती है। इस प्रकार एक प्रबन्धक, एक नेता के अलावा कुछ और भी होता है। दूसरे शब्दों में एक नेता प्रबन्धक हो यह आवश्यक नहीं है। वस्तुतः एक नेता के नेतृत्व की पदवी उसके समर्थकों द्वारा उसकी नेतृत्व क्षमता को स्वीकार करने के कारण ही दी जाती है, परन्तु प्रबन्धक के पास एक नेता के तौर पर कार्य करते समय अपने वरिष्ठों द्वारा दी गई शक्तियां भी होती है। उसका नेतृत्व उसके उस पद के साथ ही है जिसके अनुसार वह अपने अधीन कार्य करने वाले कर्मचारियों को संगठित दल का प्रबन्धक है। इस प्रकार एक नेतृत्व की अग्रलिखित विशेषताएं हो सकती हैं –

(क) यह एक नितान्त सतत प्रक्रिया है जिसकी सहायता से प्रबन्धक अपने कर्मचारियों के व्यवहार को प्रभावित, पथ प्रदर्शित और निर्देशित करता है।

(ख) नेता अपने कर्मचारियों के कार्य पर व्यवहार को नेता के तौर पर स्वयं अपने व्यवहार की उत्कृष्टता के कारण प्रभावित करने के योग्य होता है।

(ग) नेतृत्व का उद्देश्य पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति में कार्यदल का स्वैच्छिक सहयोग प्राप्त करना होता है।

(घ) एक प्रबंधक की नेता के रूप में सफलता कर्मचारियों द्वारा उसके नेतृत्व की स्वीकृति पर आधारित होती है।

(ङ) प्रबन्धकीय नेतृत्व के अनुसार सामूहिक उद्देश्यों की प्राप्त के साथ साथ व्यक्तिगत उद्देश्यों की भी प्राप्ति हो।

(च) नेतृत्व पूर्णतः परिस्थितियों पर आश्रित होता है। अतः परिस्थितियों तथा कार्य वातावरण को सदैव ध्यान में रखना चाहिए।

इस प्रकार नेतृत्व के द्वारा समूह का एक व्यक्ति समूह के दूसरे व्यक्तियों को सुव्यवस्थित सुसंगठित तथा क्रमबद्ध रहते हुए कार्य करने के लिए मार्ग दर्शन प्रदान करता है।

2.4 प्राचीन तथा आधुनिक संकल्पना

नेतृत्व की विचारधाराओं के मतों में भी निरन्तर परिवर्तन होते आये हैं। इसकी सनातन विचारधारा के अनुसार नेतृत्व कर्ता में नेतृत्व का गुण जन्मजात होता है तथा ये अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व के माध्यम से व्यक्तियों को अपने उद्देश्यों के प्रति कार्य कराने के समर्थ होते हैं जबकि दूसरी ओर नवीन विचारधाराओं के अनुसार नेता में

नेतृत्व के गुणों की प्रशिक्षण तथा अनुभव के माध्यम से विकसित किया जा सकता है। इस प्रकार के नेता कर्मचारियों को अपने उद्देश्यों के प्रति प्रशिक्षण देकर इनकी पूर्ति के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। इसके लिए यह सब की सहभागिता सुनिश्चित कर उनके कार्य अनुभवों का विश्लेषण कर उन्हें समन्वित करने का प्रयास करता है।

इस प्रकार वर्तमान परिवेश में दोनों ही मान्यताओं का अपना अपना महत्व है किन्तु निरन्तर बदलती हुई व्यापारिक परिवेश में प्रशिक्षण के द्वारा कुशल उत्पादन को बढ़ाया जा सकता है जिससे नेतृत्व क्षमता में विकास सम्भव होता है। इस प्रकार नेतृत्व एक ऐसा उपकरण है जो अधीनस्थों सामान्य कार्य प्रणाली को कुछ हद तक अधिक गतिमान तथा प्रभावी बनाती है जो उनकी कार्यक्षमता को 60 प्रतिशत बढ़ाने का कार्य करता है।

2.5 अभिप्रेरणा और नेतृत्व

प्रभावी और कुशल नेतृत्व की प्रक्रिया सदैव संगठन के सदस्यों को अभिप्रेरणा प्रदान करने में सकारात्मक भूमिका का निर्वहन करते हैं। जिसको हम निम्नलिखित बिन्दुओं से और अधिक आत्मसात कर सकते हैं।

(क) नेतृत्व वातावरणीय तत्वों से समन्वय कर उसे कार्य के अनुकूल बनाने का प्रयास करते हैं और इस प्रकार अधीनस्थों को अधिक से अधिक कार्य संतुष्टि मिले इसका प्रयास करते हैं।

(ख) नेतृत्व संगठन के सदस्यों के व्यक्तिगत लक्ष्यों को संगठन के उद्देश्यों में एकत्रित कर उन्हें प्राप्त करने योग्य बनाता है।

(ग) यह योग्य कर्मचारियों की पहचान कर उन्हें वित्तीय तथा गैरवित्तीय पुरस्कार और प्रेरकों की उचित व्यवस्था करता है जिससे वे सदैव अभिप्रेरित होते रहे।

(घ) कर्मचारियों के कल्याण और विकास का दायित्व भी नेतृत्व का ही कार्य होता है। इनकी व्यवस्था कर संगठन का प्रत्येक व्यक्ति अपने कल्याण के प्रति आश्वस्त रहता है। जिससे उन्हें अभिप्रेरणा की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार नेतृत्व का ऐसा उपकरण है जो अधीनस्थों की सामान्य कार्य प्रणाती को कुछ हद तक अधिक गतिमान तथा प्रभावी बनाता है जो उनकी कार्य क्षमता को 60 प्रतिशत से बढ़ाकर 100 प्रतिशत का कार्य करता है।

2.6 नेतृत्व के कार्य तथा महत्व

एक नेतृत्व के वास्तविक कार्य तथा नेतृत्व रूपी उत्तरदायित्व एक ही सिक्के के दो पहलू होते हैं। इनमें घनिष्ठ सम्बन्ध होते हैं किन्तु ये कुछ मायनों में भिन्न भिन्न

प्रकृति के होते हैं। जहॉ प्रबन्धक का उद्देश्य संगठन के विभिन्न कार्यों को करते हुए उद्देश्य की प्राप्ति है वही नेतृत्व का कार्य अधीनस्थों द्वारा इस कार्य को मनोबल से किया जाय इसका प्रयास करना है। वस्तुतः सकारात्मक मनोबल को बनाये रखते हुए कर्मचारियों को एक रखते हैं संगठनात्मक उद्देश्यों की प्राप्ति एक कला है इस प्रकार कुशल नेतृत्व एवं प्रबन्धकीय सफलता एक दूसरे के पूरक हैं । अतः उसे नेता के रूप में अपने कार्य करने होते हैं। इनमें से महत्वपूर्ण कार्यों का विवेचन इस प्रकार से किया जा सकता है :–

क) सामूहिक भावना का निर्माण – नेतृत्व का प्राथमिक कार्य संगठन के सदस्यों के मध्य सामूहिक भावना का निर्माण करना है। जिससे समूह सामूहिक रूप से अपनी ताकत को संगठन के उद्देश्यों प्राप्ति में लगा सके। इससे उसके व्यक्तिगत लक्ष्यों की भी पूर्ति होती है। अतः एक नेता को कर्मचारियों की क्षमता आवश्यकताओं और योग्यताओं को दृष्टिगत करते हुए कार्य की दशाओं का निर्धारण करना चाहिए।

ख) समूह का नेतृत्व करना :– एक नेता से उसके कर्मचारी सदैव उच्च प्रबन्ध तथा उनके मध्य सेतु का कार्य करने की आशा करते हैं जिससे उनकी आवाज को उच्च प्रबन्धक तक पहुंचाया जा सके और उनकी समस्याओं का तत्काल निर्धारण हो सके।

ग) परामर्शदाता के रूप में :– कार्य के दौरान पग पग पर कर्मचारियों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इन परिस्थितियों में कर्मचारीगण सदैव अपने नेतृत्व से इन समस्याओं का निराकरण कराना चाहते हैं। इस हेतु नेता प्रभावित कर्मचारियों को परामर्श देता है, उनका पथ प्रदर्शित कर उन्हें मानसिक राहत प्रदान करता है। ये समस्याएं तकनीकी एवं भवनात्मक दोनों प्रकार की होती है।

घ) समय प्रबन्ध :– कर्मचारियों द्वारा कार्य निस्पादन गुणवत्ता एवं कुशलता द्वारा हो, इसके साथ साथ नेतृत्व यह भी अपेक्षा करता है कि यह कार्य चरणबद्ध ढंग से निर्धारित समय सारणी के अनुरूप पूर्ण किया जाये जिससे संगठन की प्रतिष्ठा स्थापित हो सके।

ङ) अधिकारों का सदुपयोग :– एक नेतृत्व को अपने अधीनस्थों के ऊपर कार्य सम्बन्धी अधिकारों का प्रयोग करते समय उसे प्रयोग के तरीकों पर विशेष ध्यान देते रहना चाहिए। इसमें अधीनस्थों में सकारात्मक प्रतिक्रिया को कैसे प्रोत्साहित किया जाय इसका विशेष ध्यान रखना होता है। वस्तुतः इनमें पुरस्कार, शक्ति, विशेष शक्ति औपचारिक या अनौपचारिक शक्ति में से किसी एक का या सामूहिक रूप से किसी का भी उपयोग किया जा सकता है।

च) सामूहिक उत्तरदायित्वों को प्रभावशाली बनाना :– उद्देश्यों की प्राप्ति

में सर्वाधिक योगदान प्राप्त करने के लिए यह समीचीन है कि नेतृत्व कुशल व सक्षम कर्मचारियों की कार्य कुशलता को बढ़ाने के लिए पुरस्कार व्यवस्था स्थापित करें, अधिकारों का प्रत्यायोजना करें, निर्णय लेने में कर्मचारियों की सहभागिता को आमंत्रित करें, पर्याप्त संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करें और कर्मचारियों को आवश्यक सूचनाएं प्रेषित करें।

इस प्रकार एक संगठन में प्रबन्धकीय नेतृत्व का महत्व प्रबन्धकों के प्रबन्धकीय गुण एवं नेतृत्व भूमिकाओं की मूल प्रकृति से उत्पन्न होता है। उपरोक्त भूमिकाओं के सम्मिश्रण एवं समन्वय से प्रायः न केवल कार्यों का प्रभावशाली निस्पादन और संगठनात्मक उद्देश्यों की सुव्यवस्थित प्राप्ति सम्भव हो पाती है बल्कि सम्पूर्ण ढंग से आत्मतुष्टि भी प्राप्त होती है जिसका प्रमुख कारक प्रबन्ध प्रबन्धकों के औपचारिकों अधिकारों पर आश्रित होता है जबकि कार्यदलों का नेता होने के कारण प्रबन्धक अन्तः व्यक्तिगत सम्बन्धों के आधार पर परिणाम प्राप्त करने में सक्षम होते हैं।

नेता रूपी प्रबन्ध अपने कार्य समूह के साथ तारतम्य स्थापित करते हैं। ये उच्च प्रबन्ध तथा अधीनस्थों के मध्य मध्यस्थ का कार्य करता है। ये अधीनस्थों के कल्याण एवं विकास में व्यक्तिगत रूचि लेते हैं जिनसे उनकी व्यक्तिगत समस्याओं के निराकरण में सलाह और परामर्श द्वारा सहायता करने की कोशिश की जाती है। इससे कार्य वातावरण की दशायें अनुकूल होती है और सामूहिक भावना का विकास होता है। परिणामतः एक नेता रूपी प्रबन्धक सुव्यवस्थित रूप से सामूहिक कार्य की दशाओं को विकसित करने में सक्षम होता है। कर्मचारीगण स्वेच्छा पूर्वक उसका परामर्श और निर्देशन स्वीकार करते हैं और विशेष उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु एक समूह के रूप प्रेरणा पाते हैं।

2.7 नेतृत्व और मनोबल

प्रबन्धकों द्वारा प्रदान किये जाने वाले नेतृत्व और कर्मचारियों के मनोबल में सीधा सम्बन्ध होता है जिसे विभिन्न कारकों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। सुव्यवस्थित एवं प्रभावी नेतृत्व कर्मचारियों में न केवल कुशलता पूर्वक कार्य करने हेतु बल्कि अपने कार्य से पर्याप्त सन्तोष प्राप्त हो इस हेतु भी आवश्यक है। जहाँ प्रबंधक अपने कर्मचारियों की आवश्यकताओं के अनुसार समूह के साथ अपना सामंजस्य बनाता है जिससे उनका मनोबल उच्च बना रहे। एक प्रभावी प्रबन्ध जो सदैव अपने कर्मचारियों के कल्याण और जीवन वृत्ति के सम्बन्ध में रूचि लेता है, आवश्यकतानुसार उनकी सहायता करता है तथा उनके हितों का उच्च स्तरीय प्रबन्धकों द्वारा प्रतिनिधित्व करता है, निश्चित ही अपने कर्मचारियों का मनोबल अत्यधिक सुव्यवस्थित तथा क्रमबद्ध ढंग

RIL-080

सें विकसित कर सकता है। इसके साथ साथ न्यायसंगत कार्यप्रणाली, वेतन,प्रेरणात्मक योजनाएं भी अधीनस्थों को सन्तुष्टि प्रदान करती रहती हैं जिससे उनका मनोबल ऊँचा रहता है और संगठन उत्तरोत्तर प्रगति करता रहता है।

2.8 नेतृत्व के विभिन्न स्वरूप

संगठन के कार्यों को सुव्यवस्थित, सुसंगठित तथा क्रमबद्ध ढंग से पूर्ण करने हेतु एक प्रबन्धक अपने कर्मचारियों के साथ प्रभावी व्यवहार प्रतिरूप नेतृत्व स्वरूप के रूप में जाना जाता है। नेतृत्व के तीन प्रमुख स्वरूप इस प्रकार से हैं –

क) सत्तावादी स्वरूप – नेतृत्व के इस स्वरूप के अन्तर्गत एक प्रबन्धक शक्ति और निर्णय लेने का अधिकार किसी और को न देकर सवयं अपने पास रखता है जिससे सत्ता का विकेन्द्रीकरण न हो सके तथा सभी कर्मचारियों के ऊपर नेता का पूर्ण नियंत्रण रहे। सत्तावादी स्वरूप के अन्तर्गत कर्मचारियों में सदैव नेता की आज्ञा न मानने पर दण्ड का भय बना रहता है। इन्हें संगठन के संचालन हेतु उद्देश्यों के निध ारिण या स्व्यं पहल करने, परामर्श देने के अधिकार प्राप्त नहीं होते हैं। ये कड़ी निगरानी और नियमों के अन्तर्गत कार्य निष्पादन की प्रक्रिया पूर्ण करते हैं जिससे इनमें उत्तरदायित्व की भावना का अभाव होता है।

सत्तावादी नेता अपने अधीनस्थों के कल्याण में अधिक रूचि नहीं रखते, वे केवल कार्य, कार्य और कार्य के प्रति चिन्तित रहते हैं। ये कम भुगतान अधिक काम के सिद्धान्त पर कार्य करते हैं।उपरोक्त विवेचना से यह सिद्ध हो जाता है कि नेतृत्व का यह स्वरूप कभी कर्मचारी हित में नहीं हो सकता। आइये नेतृत्व की इस स्वरूप की हानियों को क्रम बद्ध करें :–

1. इस स्वरूप के अन्तर्गत कार्य करने वाले कर्मचारियों में आन्तरिक असन्तोष होता है जिससे इनका मनोबल गिरता है और ये अपनी शत प्रतिशत उत्पादकता नहीं दे पाते।

2. दीर्घकाल में कर्मचारी के ज्ञान एवं कुशलता में क्षरण होता जाता है।

3. यह सक्षम अधीनस्थों मे से भावी प्रबन्धकों के विकास की अनुमति नहीं देता।

ऊपर वर्णित दोषों के होने के बावजूद सत्तावादी नेतृत्व को निम्नलिखित परिस्थितियों में प्रयोग कर संगठन को आगे बढ़ाया जा सकता है :–

1. जब कर्मचारी, युवा, अकुशल और अनुभवहीन हो।

2. नेतृत्व निर्णय की सम्पूर्ण प्रक्रिया में सक्रिय, प्रभावी और गतिमान होना पसन्द करें।

3. संगठन भय और दण्ड को अनुशासनिक उपकरण को बहुत कम करना हो।

4. जब अन्तिम कार्य निष्पादन में त्रुटि की सम्भावना को बहुत कम करना हो।

5. दबाव वाली कार्य परिस्थितियों मे जब अत्यधिक गति एवं कार्यकुशलता की आवश्यकता महसूस हो।

6. चूँकि नेतृत्व के इस स्वरूप में समस्त निर्णयों का केन्द्र बिन्दु एक ही होता है। इसलिए निर्णयों में एकरूपता संगति और क्रमबद्धता होती है।

ख) सहभागी स्वरूप :– इस स्वरूप को जनतांत्रिक या प्रजातांत्रिक स्वरूप के रूप में भी जाना जाता है। इस स्वरूप में सत्तावादी स्वरूप के ठीक उलट एक नेता प्रायः अपने कर्मचारियों से विचार विमर्श और निर्णयों में सबकी भागेदारी हेतु निरन्तर संचार करता रहता है। ये कर्मचारियों को अपनी सामाजिक और अहम सम्बन्धी आवश्याकताओं को पूरा करने के योग्य बनाता है। परिणामतः वे संगठात्मक उद्देश्यों और अधिकतम उत्पादकता के प्रति अपने आप को समर्पित करते हैं। नेतृत्व और कर्मचारियों के परस्पर मिलकर कार्य करने की प्रक्रिया बेहतर समन्वय व कुशल कार्य विस्पादन में सदैव सहायक होती है।

प्रथम दृष्टता नेतृत्व के सहभागी स्वरूप में कोई हानि नहीं दिखाई पड़ती किन्तु जिस प्रकार प्रत्येक सिक्के के दो पहल होते हैं ठीक उसी प्रकार सहभागी स्वरूप से भी कुछ हानियां हैं आइये इन्हें समझने का प्रयास करें–

1. अधीनस्थों की सहभागिता के कारण निर्णयों में विलम्ब की सम्भावना बढ़ जाती है जिससे विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये मध्यम भागों का चयन करना पड़ता है, जिससे कार्यों का निष्पादन शत प्रतिशत नहीं हो पाता ।

2. कुछ मानसिक रूप से सशक्त कर्मचारी अपनी वाकपटुता की शैली के कारण नेतृत्व के समीप जाकर निर्णयों को अपने ढंग से प्रभावित करने का प्रयास करते हैं।

3. सामूहिक निर्णयों को क्रियान्वित करने का दायित्व कोई भी एक व्यक्ति नहीं ले सकता।

ऊपर वर्णित दोषों के होते हुए भी नेतृत्व के इस स्वरूप से अग्रलिखित लाभ संगठन को हो सकते हैं :–

1. जब अधीनस्थ सक्षम और अनुभवी हों तब ये अपनी अन्तर्निहित योग्यताओं को

विकसित करने और अधिकाधिक दायित्व स्वीकार करने में सहायता करते हैं।

2. यह कार्य से आत्म संन्तुष्टि प्रदान कर मनोबल में वृद्धि करता है जिससे आपस में समन्वय के गुणों का विकास होता है।

3. सामूहिक निर्णयों के फलस्वरूप दलीय निस्पादन को ऊंचे स्तर पर बनाये रखा जा सकता है। इस हेतु पुरस्कार और संवर्धन को अभिप्रेरणा और नियन्त्रण के उपकरण के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

4. नेतृत्व अपने कर्मचारियों में आत्म संयम और विश्लेषणात्मक योग्यताओं को विकसित करना चाहता है।

ग) स्वतंत्रात्मक स्वरूप – वास्तव में नेतृत्व का यह स्वरूप निरकुशात्मक स्वरूप के बिल्कुल विपरीत है। एक नेतृत्व द्वारा जब इस स्वरूप के माध्यम से नेतृत्व किया जाता है तब वह नेतृत्व की भूमिका को पूर्णता त्याग देता है। कर्मचारियों के समूह को निर्णय लेने की स्वतंत्रता दी जाती है जिससे वे अपनी रूचि के अनुसार कार्य कर सकें किसी भी प्रबन्धक या कर्मचारी की भूमिका नेता जैसी नहीं होती है। समूह के सदस्यों को उद्देश्य निर्धारण इसके अनुरूप कार्य करने के पर्याप्त अवसर होते हैं। जिससे ये अपीन क्षमता का शत प्रतिशत संगठन के विकास में लगा सके।

इस प्रकार दलीय उद्देश्यों के निर्धारण में कठिनाई हो सकती है किन्तु नेतृत्व के इस स्वरूप का उपयोग वहॉ पर अधिक प्रभावी होता है जहॉ अधीनस्थ सुप्रशिक्षित और सक्षम होते हैं तथा नेतृत्व निर्णय लेने और कार्य करने के अधिकारों का पूर्ण प्रत्योजन अधीनस्थों को करने के योग्य होता है। प्रायः ये अग्रलिखित परिस्थितियों में अधिक उपर्युक्त होती हैं :–

1. जब नेतृत्व प्रत्यायोजन के माध्यम से सम्पूर्ण कार्य सम्बन्धी निर्णयों को अधीनस्थों के माध्यम से करवाना चाहें।

2. अधीनस्थ कार्य सम्बन्धी ज्ञान, कुशलता, प्रशिक्षण आदि से कार्य दायित्वों का पूर्ण करने के योग्य हो।

3. जब अधीनस्थ अपने व्यक्तिगत लक्ष्यों को संगठन के उद्देश्यों को पूर्ण करने के मार्ग से पाना चाहें।

4. यह स्वरूप प्रथम दृष्टया सरल प्रकृति का होता है किन्तु इस स्वरूप का प्रयोग यदा कदा ही होना चाहिए क्योंकि व्यावसायिक संगठन कठिन व्यापारिक पर्यावरण के मध्य प्रतियोगिता के माध्यम से आगे बढ़ाने का प्रयास कर रहे हैं। ऐसे में किसी भी प्रकार की अव्यवस्था संगठन के हितों को पूरा होने से रोक सकती है।

2.9 नेतृत्व के सिद्धान्त

संगठन में नेतृत्व का विकास व्यक्तियों की भौतिक क्षमताओं में परिमार्जन कर सफलता पूर्वक लागू किया जा सकता है। इसके लिए औपचारिक शिक्षा, प्रशिक्षण एवं आत्मविश्वास जैसे अनेक आधारभूत उपकरणों की आवश्यकता निरन्तर पड़ती रहती है। वास्तव में इस प्रकार का आयोजन मानव विज्ञानों से ओतप्रोत होना चाहिए जिससे कर्मचारियों में मानसिक सुदृढ़ता का विकास हो और वे मानव सम्बन्धों के महत्व को समझें। इस प्रकार नेतृत्व प्रक्रिया के मिश्रित पहलुओं को आत्मसात करने के लिए विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। आइये कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का विवेचन कर आत्मसात करने का प्रयास करें :–

1. **गुण सम्बन्धी सिद्धान्त** – सम्भवतः यह सिद्धान्त इस क्षेत्र का प्राचीनतम सिद्धानत है, जो सफल नेतृत्व की व्यक्तिगत विशेषताओं अथवा गुणों मे परस्पर अन्तर पर आधारित है। इस सिद्धान्त से जुड़ी मान्यताओं में यह कहा जाता है कि एक सफल नेतृत्व देने के लिए कुछ पूर्व निर्धारित गुणों का होना आवश्यक है जिससे शारीरिक रूप सें शक्तिमान, और सुगठित, प्रभावी व्यक्तित्व, आत्मविश्वास, निर्णय लेने में चातुर्य एवं कुशलता, मानसिक रूप से परिपक्वता, आदि को सम्मिलित किया जाता है। प्रायः सभी में यह गुण एक साथ परिलक्षित नहीं होते, अतः केवल उन व्यक्तियों को ही शक्तिशाली नेता की संज्ञा दी जायेगी जिनमें इन सभी गुणों का उचित समावेश हो। इस सिद्धान्त की अग्रलिखित सीमायें निर्धारित हो सकती हैं–

क) इस सिद्धान्त का कभी भी समाज ने सर्वमान्या नहीं प्रदान की।

ख) नेताओं में कौन कौन से गुण उपस्थित होने चाहिए। इसकी सर्वमान्य सूची का निर्माण कभी नहीं हो सकता।

ग) नेताओं और उनके अनुयायियों में अन्तर करना सदैव सफल नहीं हो पाता क्योंकि इनके गुणों का विश्लेषण करना नितान्त कठिन कार्य है।

2. **व्यवहारात्मक सिद्धान्त** :– इस सिद्धान्त की मान्यता के अनुसार नेताओं को उनके विभिन्न व्यवहारों के आधार पर पहचाना जा सकता है। यह व्यवहार वह व्यवहार होता है जो वो अधीनस्थों के साथ करता है। इस प्रकार विद्वानों ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि नेताओं को उनके गुणों की अपेक्षा उनके कार्यों से पहचानना ज्यादा उपयुक्त और तार्किक है। इस सिद्धान्त के पीछे विद्वानों ने कई प्रकार के शोध अध्ययनों को भी प्रस्तुत किया है। इसी क्रम में अमेरिका के औद्योगिक राज्य मिशिगन में किये गये शोध अध्ययनों से यह सिद्ध हुआ है कि नेता अपने अधीनस्थ कर्मचारियों से न्यायोचित तथा मानवोचित व्यवहार करते हैं, उनके कल्याण के लिए चिन्तित होते हैं

RIL-080

और उन्हें उद्देश्य तथा लक्ष्य निर्धारित करने में प्रोत्साहित एवं सम्मिलित करते हैं। वे अधिक प्रभावशाली एवं कार्य कुशल होते हैं।

इनकी पहचान कर्मचारी केन्द्रित नेता के रूप में की जाती है। अगर इसके दूसरे पहलू पर विचार करें तो देखेंगे कि वे नेता जिनका लक्ष्य केवल उत्पादन होता है वे सदैव मानकों के अनुरूप नियमानुसार कार्य सम्पन्न करने पर बद देते हें ये कर्मचारियों पर कठोर नियंत्रण रखने की कोशिश करते हैं तथा उन्हें उत्पादन में मशीनी मानवों कें रूप में प्रयोग करते हैं किन्तु इस प्रक्रिया में कर्मचारियों में असन्तोष होता है जिससे वे कार्य निस्पादन अपनी भूमिका को शत प्रतिशत नहीं निभा पाता ।

इस सिद्धान्त को सिद्ध करने के क्रम में ओहियो स्टेट विश्वविद्यालय में दूसरा महत्वपूर्ण शोध अध्ययन हुआ जिसमें नेता के व्यवहार के दो पक्षों का पता लगा यथा–प्रारम्भिक तथा दूसरों के लिए ध्यान। प्रारम्भिक संरचना से आशय है कि नेता का अपने और समूह के सदस्यों में परस्पर सम्बन्धों को चित्रित करने और संगठन की निर्धारित संरचना, सम्प्रेषण के माध्यम और कार्यविधियों के माध्यमों को स्थापित करने का प्रयास है। इसके उक्त दूसरे के लिए विचार का अर्थ नेता तथा उसके अधीनस्थ कर्मचारियों के मध्य मित्रता, सुव्यवस्थित तथा आस्था आधारित सम्बन्ध, सहृदयता, तथा सादर सूचक व्यवहार। निम्नलिखित रचना की विवेचना से यह सरलता से समझा जा सकता है कि एक नेता के व्यवहार का वर्णन दोनों पक्षों के किसी भी एक मिश्रण द्वारा सम्भव है :–

अधिकतम

अधिक ध्यान और न्यूनतम संरचना	उच्च संरचना तथा अधिक ध्यान
न्यूनतम संरचना न्यूनतम ध्यान	उच्च संरचना न्यूनतम ध्यान

न्यूनतम

न्यूनतम ◄——— प्रारम्भिक संरचना ———► अधिकतम

4. **परिस्थिति सम्बन्धी सिद्धान्त** – इस सिद्धान्त के अन्तर्गत विद्वानों की मान्यता है कि नेता के नेतृत्व की सफलता उसकी आस पास की परिस्थितियों पर पूर्णतः निर्भर होती है, जिनमें नेता कार्य करता है। इस सिद्धान्त के मूल प्रतिपादक फेड ई. फेंडलर को माना जाता है जिनके द्वारा विकसित नेतृत्व के प्रासंगिक प्रारूप के अनुसार एक नेता के चारों तरफ तीन प्रकार के परिस्थिति मूलक तत्व उपस्थित रहते

हैं। जो कि अग्रलिखित हैं –

क) **नेता–अधीनस्थ सम्बन्धी तत्व** :– इस तत्व के अन्तर्गत अधीनस्थों की नेता के प्रति आस्था, विश्वास तथा आदर की मात्रा को सम्मिलित किया जाता है।

ख) **कार्य की संरचनारूपी तत्व** :– इसके अन्तर्गत अधीनस्थ कर्मचारियों द्वारा किये जाने वाले कार्य के चक्रीय व अचक्रीय होने की मात्रा।

ग) **पदेन शक्ति रूपी तत्व** :– एक संगठन में नेता को प्रदन्ता शक्ति, सत्ता और अधिकारों की मात्रा। श्री फेडलर ने एक परिस्थिति की अनुकूलता को उस अंश के रूप में परिभाषित किया जाय अंश तक परिस्थिति नेता को अपने दल को प्रभावित करने के योग्य बनाती है।

इस प्रकार एक नेता के लिए अपने कार्य समूह के सदस्यों को प्रभावित करने की सर्वोत्तम परिस्थिति वह है जिसमें वे अधीनस्थ कर्मचारियों द्वारा सही ढंग से पसन्द किये जाते हैं। अतः कार्य अत्यधिक दैनिक, चक्रिय व संगठित हो तथा पूर्वानुमेय है और नेता के पदेन अधिकार सर्वोत्तम हो। दूसरी ओर नेताओं के लिए सबसे अधिक विपरीत परिस्थिति वह है जिसमें उन्हें बिल्कुल नापसन्द किया जाता हो, काम अत्यधिक असंगठित व अदैनिक हो और उसके पास पदेन शक्ति न्यून हो। वस्तुतः कार्यमूलक नेता उन दलीय परिस्थितियों में सर्वश्रेष्ठ निस्पादन प्रस्तुत करते हैं जो नेता के लिए अत्यधिक अनुकूल या बहुत प्रतिकूल होती है। दूसरी ओर सम्बन्ध मूलक नेता उन परिस्थितियों में सबसे अच्छा निस्पादन करने की प्रवृत्ति रखते हैं, जो अनुकूलता में मध्यम श्रेणी के होते हैं।

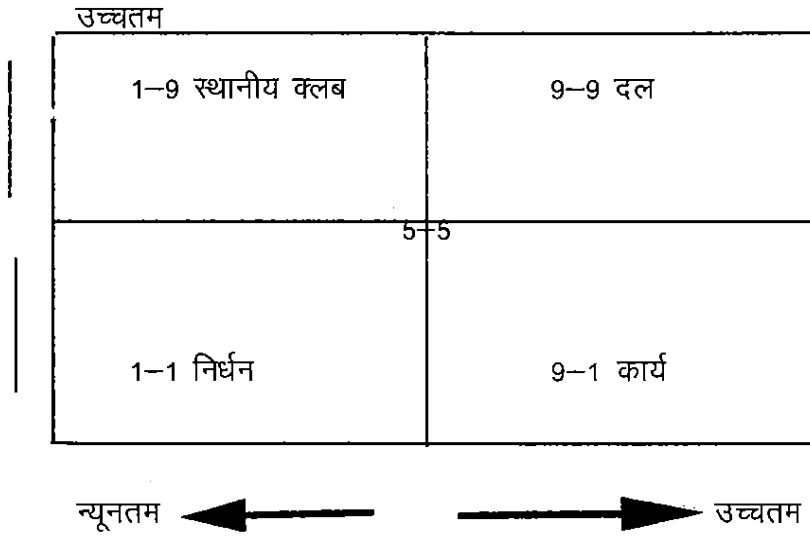
दूसरा परिस्थिति जन्य सिद्धान्त मार्ग लक्ष्य सिद्धान्त हैं । इस सिद्धान्तानुसार नेता अधीनस्थ कर्मचारियों पर अपनें प्रभाव,अभिप्रेरण, निस्पादन की क्षमता और उनके संतुष्ट करने के कारण अत्यधिक प्रभावशाली होते हैं। अधीनस्थ कर्मचारीगण नेता द्वारा उस सीमा तक अभिप्रेरित होते रहते हैं जिस सीमा तक वह उनके निस्पादन की सम्भावनाओं और लक्ष्यों के आकर्षण को प्रभावित कर सकता है। इसके अतिरिक्त व्यक्ति उनके कार्यों से तभी संन्तुष्ट होते हैं जब उन्हें विश्वास हो कि –

1. कार्य के निस्पादन का परिणाम वांछनीय होगा, तथा
2. कठोर परिश्रम के साथ वे उद्देश्य पूर्ण वांक्षित परिणाम प्राप्त कर सकेंगे।

2.10 नेतृत्व की प्रभावकारिता

अभी तक के विश्लेषण में हमने नेतृत्व के विभिन्न सिद्धान्त एवं विभिन्न शैलियों की कार्य प्रणाली को जाना। एक नेता अपने द्वारा प्रयोग की जाने वाली नेतृत्व

शैली के आधार सफलता प्राप्त करते हुए प्रभावशाली अथवा प्रभावहीन हो सकता है जिससे उसके कर्मचारी केन्द्रित या उत्पादन केन्द्रित होते, का पता चलता है अर्थात नेतृत्व शैली नेताओं का अधीनस्थों के प्रति संकेन्द्रण या उत्पादन के प्रति लगाव को विशेष रूप से सिद्ध करती है। वास्तव में नेता अधीनस्थ कर्मचारियों के प्रति ध्यान तथा उत्पादन के प्रति ध्यान को अलग ढंग से महत्व प्रदान करते हुए एकत्रित कर सकता है। इस विचार को प्रबन्धकीय ग्रिड की संज्ञा देकर विकसित करने का प्रयास किया गया है। जिसको अग्रलिखित चित्र से सरलता पूर्वक विवेचित किया जा सकता है–



चित्र में अधीनस्थों के प्रति और उत्पादन के प्रति ध्यानकेन्द्रण के 0.9 स्तर है। न्यूनतम और उच्चतम स्तरों के सम्मिश्रण से नेतृत्व पांच मूल शैलियों को प्रदर्शित किया गया है। इनमें नम्बर 09 न्यूनतम ध्यान और 09 अधिकतम ध्यान को प्रस्तुत करता है। इस प्रबन्धकीय ग्रिड की अवधारणा का विकास ब्लेक और मार्टन द्वारा 1964 में किया गया। आइये शैलियों के विभिन्न मिश्रण को कमभर समझने का प्रयास करें।

1.1 इस शैली के प्रबन्धक कर्मचारियों तथा उत्पादन दोनों के प्रति न्यूनतम चिन्तित होते हैं, इसे निर्धन प्रबन्ध के रूप में भी व्यक्त किया जाता है। यह शैली प्रबन्ध की अपने मूल कार्य के प्रति उत्तरदायित्व की आकस्मिक अभिवृत्ति प्रदर्शित करती है तथा इससे संगठन के बने रहने की आशा बिल्कुल नहीं की जा सकती ।

1.2 यह शैली प्रबन्धक की उत्पादन के प्रति उच्चतम ध्यान और कर्मचारियों यके प्रति न्यूनतम ध्यान को अतिरिक्त करती है। इसे कार्य सम्बन्ध की संज्ञा दी जाती है।

1.3 इस शैली के प्रबन्ध कर्मचारियों के लिए अधिकतम ध्यान और उत्पादन के लिए न्यूनतम ध्यान करता है, इसे स्थानीय क्लब के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। इसका तात्पर्य है कि प्रबन्धक उन्हें खुश रखने में लगा रहता है जिससे वे और ज्यादा

से ज्यादा सक्षम बने, लेकिन यह व्यवसायिक उद्यमों के लिए सदैव सत्य हो यह सत्य नहीं है।

1.4 इस शैली में उत्पादन और कर्मचारियों दोनों के हितों के सम्बन्ध में मामूली सा प्रतिनिधित्व करती है और इसीलिए इसे मध्य मार्गीय प्रबन्ध की संज्ञा दी जाती है।यह शैली उन प्रबन्धों के द्वारा पसन्द की जाती है जिनका प्रबन्ध के प्रति नजरिया ''खुद जियो और दूसरों को भी जीने दो'' का होता है।

1.5 यह शैंली उत्पादन और कर्मचारियों दोनों के उच्चतम हितों का सर्वोत्तम मिश्रण है। इसमें प्रबन्धक एक संगठन में कार्यरत विभिन्न कर्मचारियों के उद्देश्यों को आपस में एकीकृत करने का प्रयास करता है। अतः इस शैली को समूह प्रबन्ध को प्रदर्शित करती है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है प्रबन्धकीय ग्रिड की यह सर्वोत्तम शैली है।

इस प्रकार प्रभावकारिता वातावरण की परिस्थिति मूलक आवश्यकताओं पर निर्भर करती है, जब नेता की शेली एक दी गई परिस्थिति के अनुरूप है तो इसे प्रभाशाली कहा जाता है। दूसरी ओर जब शैली किन्हीं दी गई परिस्थितियों के प्रतिकूल है तो इसे प्रभावहीनता की संज्ञा दी जाती है।

अतः नेतृत्व की प्रभावकारिता के प्रश्न को विहंगम दृष्टिकोण को देखते हुए कुछ विद्वानों ने कई तत्व सूचीबद्ध किये हैं, जो नेता और उसकी प्रभावकारिता को प्रभावित करते हैं ये तत्व अग्रलिखित हैं:–

क) नेता का अपना व्यक्तित्व, पद, अनुभव एवं अपेक्षाएं

ख) संगठनात्मक वातावरण एवं नीतिया

ग) अन्य प्रबन्धकों की अपेक्षाएं और उनके व्यवहार

घ) अधीनस्थों द्वारा पूरे किये जाने वाले कार्यों की आवश्यकता।

ङ) अधीनस्थ कर्मचारियों की विशेषताएं अपेक्षाएं एवं उनके व्यवहार

च) उसके वरिष्ठों की अपेक्षाएं एवं उनके व्यवहार ।

2.11 नेतृत्व के पथ में आने वाली बाधाएं

प्रायः सफल नेताओं के पथ में निरन्तर चुनौतियॉ आती हैं जिनके सफल विवेचन के उपरान्त ही सफलता का मार्ग पाया जा सकता है। अतः भावी चुनौतियों को सूचिबद्ध कर लेना उपयुक्त होता है। आइये इन्हें सूचीबद्ध करने का प्रयास करें –

RIL-080

कुछ नेतागण संगठनात्मक उद्देश्यों की पूर्ति के मार्ग में अपने अधीनस्थों के साथ समन्वय व सहयोग करने में पूर्णतः असमर्थ रहते हैं।

कुछ नेतागण अपने अधीनस्थों से कटे दूरी बना कर रहते हैं जिससे द्विमार्गीय संचार नहीं हो पाता, जिससे उनकी प्रतिक्रियाओं का पता नहीं चल पाता।

कुछ नेता मानव सम्बन्धों के प्रति कम संवेदनशील होते हैं जिससे उनके सम्बन्ध में गहराई नहीं आ पाती।

दूरदर्शिता का गुण का अभाव होने के करण ये भावी कार्यक्रमों की रूपरेखा बनाने में असमर्थ होते हैं।

कुछ नेता अपनी योजनाओं की प्रस्तुति प्रभावी ढंग से नहीं कर पाते जिससे उन्हें अन्य कर्मचारियों का सहयोग प्राप्त नहीं हो पाता।

कुछ नेतागण मनोबल बढ़ाने के लिए सही प्रकार की प्रेरणाओं का प्रयोग नही कर पाते। जिससे अधीनस्थों में मनोबल का अभाव होता है।

अपने व्यवहार में अस्थिरता के कारण इनके अपने समकक्ष साथियों के साथ व्यवहार में उदासीन प्रकृति के होते हैं जिससे उन्हें समय समय पर आवश्यक मदद नहीं मिल पाती है।

अतः एक अच्छा नेता समयानुसार अपने कार्यों व आचरण की सुव्यवस्थित परीक्षण करता रहता है, जिससे उसके अवगुणों का निराकरण हो सके और उसका व्यक्तित्व प्रभावशाली बन सके। इस प्रकार के आत्म विश्लेषण से असन्तोष जनक व असमान्यजनक पर्यारण को उनके अधिक हानि पहुंचाने से पहले ही बदलाव किया जा सकता है।

2.12 सारांश

नेतृत्व पूर्वनिर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने की दिशा में सामूहिक प्रयासों को प्रभावित करने की प्रक्रिया है। यह एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा नेता समूह के स्वैच्छिक सहयोग को प्राप्त करने के लिए अधीनस्थ कर्मचारियों के व्यवहार को प्रभावित, पथ प्रदर्शित और निर्देशित करने का प्रयास करता है। प्रबन्ध के क्षेत्र में प्रबंधकीय और नेतृत्व सम्बन्धी भूमिकाओं का मिश्रण न केवल प्रभावपूर्ण कार्य निष्पादन को बल्कि पूरी तरह से मानवीय संतोष को भी बढ़ावा देता है।

नेतृत्व को गुण मूलक सिंद्धान्त वह सिद्ध करता है कि एक नेता की सफलता मूलतः उसके व्यक्तिगत गुणों पर निर्भर करती है। दूसरी ओर नेतृत्व का व्यवहारात्मक सिद्धान्त इस विश्वास पर आधारित है कि नेता अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के साथ व्यवहार के आधार पर पहचाने जा सकते हैं।

नेतृत्व के परिस्थिति मूलक सिद्धान्त में नेतृत्व की सफलता का आधार उस परिस्थिति पर आधारित समझा जाता है जिसमें नेता कार्य करता है। नेता की प्रभावशीलता को प्रभावित करने वाले परिस्थित मूलक तत्वों में नेता अधीनस्थ सम्बन्ध, कार्य–संरचना और नेता की पद से जुड़ी सत्ता सम्मिलित है।

एक नेता–का अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के सम्बन्ध में व्यवहार नेतृत्व की शैली के रूप में जाना जाता है। नेतृत्व की तीन मूल शैलियॉ हैं। (1) निरंकुश (2) स्वतंत्रतात्मक, तथा (3) जनतांत्रिक। एक निरंकुश नेता शक्ति और निर्णयन अपने तक केन्द्रित रखता है तथा अधीनस्थों पर पूर्ण नियन्त्रण रखना चाहता है। इसलिए इसके परिणामस्वरूप कर्मचारियों का मनोबल क्षीण हो जाता है और दीर्घकाल में उत्पादकता निरन्तर घटती जाती है।

नेतृत्व की जनतांत्रिक शैली में नेता दल के सदस्यों से आपसी विचार विमर्श करके और निर्णयन में उनकी सहभागिता के साथ निर्णय लेता है। इससे अधीनस्थों को अपनी सम्भावित योग्यताओं को विकसित करने में सहायता प्राप्त होती है। कार्य में सन्तुष्टि प्रदान करता है। और उनके मनोबल को निरन्तर उत्साहित करता है। स्वतंत्रतात्मक शैली में अधीनस्थों को अपनी पसन्द के अनुसार निर्णय लेने और कार्य निष्पादन करने की स्वतंत्रता से होती है। इसलिए इस शैली के अन्तर्गत अनिर्णय और कुप्रबन्ध की सम्भावना अधिक होती है।

प्रभावशाली नेतृत्व समूह के सदस्यों के अभिप्रेरण सदैव सकारात्मक प्रभाव डालता है। प्रयोग की जाने वाली शैली के आधार पर नेता प्रभावशाली व प्रभावहीन सिद्ध हो सकता है। प्रबंधकीय ग्रिड की संकल्पना प्रबन्धक को यह जानने में सहायता करती है कि उनकी नेतृत्व शैली कहॉ तक उनके अधीनस्थों कर्मचारियों के हितों का ध्यान रखती है।

स्वपरख प्रश्न

1. निम्नलिखित कथनों में से कौन से कथन सही हैं और कौन सा गलत।

1) नेतृत्व वहीं नहीं हो जो प्रबन्ध है । .....

2) नेतृत्व प्रबन्ध का एक कार्य है। .....

3) प्रबंधकीय नेतृत्व में 'दलीय लक्ष्यों की प्राप्ति के प्रयन्त ..... निहित है व्यक्तिगत लक्ष्यों के प्राप्ति के नहीं।

4) नेतृत्व का गुण मूलक सिद्धान्त नेताओं के व्यवहार पर बद देना है .....

5) एक निरंकुशात्मक नेता–प्रबंधक थोड़े समय में प्रभावशाली ..... हो सकता है ज्यादा समय तक नहीं।

2. कोष्ठकों में दिये गये शब्दों में से उचित शब्दों को चुनकर स्थानों को भरिए।

1) एक नेता प्रबन्धक निरापवाद रूप से अपने अधीनस्थों को .....देना है। (आदेश/निर्देश और पथ प्रदर्शन/ पुरस्कार)

2) प्रबंधकीय नेतृत्व एक .....प्रक्रिया है (नियमित/सतत/सुविधाजनक)

3) एक जनतांत्रिक नेता .....के आधार पर निर्णय लेता है। (अपने स्वयं के विवेक/दलीय राय/व्यक्तिगत विचार)

4) कर्मचारी केन्द्रित नेता ..... के लिए सर्वाधिक चिन्ता करते हैं। (काम/अधीनस्थो/संगठनात्मक लक्ष्यों)

5) यदि परिस्थिति अत्यधिक अनुकूल है तो..... नेतृत्व सबसे अधिक उपयुक्त है। (सम्बन्ध मूलक/कार्यमूलक)

3. रिक्त स्थानों को भरिये–

1) नेता का प्राथमिक कार्य कार्यदल को एक ..... के रूप में विकसित करना है।

2) जब काम पर लगे अधीनस्थों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है तो नेता का एक .....के रूप में कार्य करना आवश्यक है।

3) नेतृत्व दल के सदस्यों का ..... ओर साथ ही ..... लक्ष्यों को प्राप्त करने के योग्य बनाता है।

4) नेता प्रबन्धक की प्रभावकारिता उसके द्वारा अपनाई जाने वाली..... पर आश्रित है।

5) व्यक्तियों के लिए अधिकतम चिन्ता और काम के लिए न्यूनतम चिन्ता....

प्रबन्ध के रूप में जाना जाता है।

4. निम्नलिखित कथनों में से कौन सा कथन सही है और कौन सा गलत।

1) टीम प्रबन्ध काम और व्यक्तियों के लिए प्रबन्धक की ..... साधारण चिन्ता को बतलाता है।

5. निम्नलिखित कथनों में से कौन सा कथन सही है और कौन सा गलत।

1) मनोबल एक मानसिक अभिवृत्ति है जो उत्साहपूर्वक काम..... करने की स्वेच्छा से प्रतिबिम्बित होता है।

2) कर्मचारियों के आवास की स्थितियां उनके मनोबल पर कोई ..... प्रभाव नही डालती।

3) वे प्रबन्धक नेता जो अपने व्यवहार में निरंकुश होते हैं ऊंचा .... मनोबल बनाने के योग्य होते हैं।

4) क्षीण मनोबल वाले व्यक्ति अपने कार्यदल में सही फिट नहीं..... होते हैं ।

5) नेतृत्व और मनोबल सकारात्मक रूप से सह सम्बन्धित हैं .....

6. रिक्त स्थानों को भरिए।

1) अच्छे स्वास्थ्य का मनोबल पर एक ..... प्रभाव होता है।

2) जब कार्यकर्ता अपने कार्य के प्रति अनुकूल अभिवृत्ति रखते हैं तो मनोबल ..... होता है।

3) काम की स्थितियॉ मनोबल को ..... प्रभावित करती हैं ।

4) प्रबन्धकीय नेतृत्व एक मनोबल ..... सहसम्बन्धित है।

5) यदि..... प्रतिपूर्ति की व्यवस्था है तो मनोबल ऊंचा होने की प्रवृत्ति रखता है।

2.13 उपयोगी शब्द कोश

नेता : वह व्यक्ति जो समूह के कार्यकलाप को प्रभावित करने के लिए समर्थ है।

नेतृत्व : किन्हीं लक्ष्यों की प्राप्ति की दिशा में दलीय कार्यकलाप को प्रभावित करने की प्रक्रिया ।

नेतृत्व की शैली : अपने अधीनस्थों के संबंध में एक नेता प्रबंधक का प्रबल व्यवहार प्रतिरूप।

प्रबंधकीय ग्रिड : नेतृत्व की शैली में प्रतिबिम्बित व्यक्तियों तथा काम के लिए चिन्ता के सम्भव सम्मिश्रण का रेखीय प्रस्तुतीकरण।

मनोबल : अपने काम और काम के वातावरण के प्रति व्यक्तियों की मानसिक दशा अथवा अभिवृत्ति।

2.14 महत्वपूर्ण प्रश्नावली

प्र.1 नेतृत्व से आप क्या समझते हैं? प्रबन्ध कार्य से यह किस प्रकार भिन्न है?

प्र.2 प्रबन्धकीय नेतृत्व की प्रमुख विशेषताएं बनाइये।

प्र.3 नेतृत्व की शैली को परिभाषित कीजिए। निरंकुश, जनतांत्रिक और स्वतंत्रात्मक नेतृत्व शैलियों में प्रमुख अन्तर क्या है?

प्र.4 अमेरिका के मिशिगन और ओहियों प्रान्तों के शोध अध्ययनों द्वारा नेता के व्यवहारों के किन दो प्रकारों को बतलाया गया है? संक्षेप में समझाइये।

प्र.5 'प्रबंधकीय ग्रिड' की अवधारणा और उसके उद्देश्य को विस्तार से समझाइये।

प्र.6 व्याख्यात्मक टिप्पणी लिखिए।

1) नेतृत्व की प्रभावशाली और प्रभावहीन शैलियां
2) नेतृत्व के कार्य
3) एक प्रभावशाली नेता का गुण
4) नेतृत्व का गुण मूलक सिद्धान्त

इकाई –3 परिवर्तन का प्रबन्ध

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 अवधारणा, प्रकृति तथा प्रकार

3.4 परिवर्तन के विभिन्न कारक

3.5 परिवर्तन का प्रबन्ध तथा प्रभाव

3.6 परिवर्तन प्रक्रिया के विभिन्न चरण

3.7 सारांश

3.8 उपयोगी शब्द कोश

3.9 महत्वपूर्ण प्रश्नावली

3.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

- परिवर्तन की अवधारणा, प्रकृति तथा प्रकार को समझ सकेंगे,
- परिवर्तन के विभिन्न कारकों का विश्लेषण कर सकेंगे,
- प्रबन्ध पर परिवर्तन के प्रभावों को रेखांकित कर सकेंगे,
- परिवर्तन का प्रबन्ध क्या है? इसका वर्णन कर सकेंगे, तथा
- परिवर्तन प्रक्रिया के विभिन्न चरणों को आत्मसात कर सकेंगे।

3.2 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आप सभी ने नेतृत्व की अवधारणा को विस्तार पूर्वक समझा। इस इकाई में प्रबन्ध से जुड़ी एक और महत्वपूर्ण अवधारणा 'परिवर्तन का प्रबन्ध' को जानने व समझने का प्रयास करेंगे। जिस प्रकार मानव जीवन में समय, ऋतु, मास, सप्ताह दिन सब चक्रीय गति से गतिमान है, ठीक उसी प्रकार प्रबन्ध की अवधारणायें भी निरन्तर गतिमान होते हुए अपने आप में परिवर्तन के गुण को समाहित रखती है। एक प्रबन्धक के लिए यह सबसे चुनौती भरा कार्य है कि वह किस प्रकार परिवर्तनीय बाह्य तथा आन्तरिक व्यापारिक पर्यावरण से प्रबन्धकीय तकनीकों का सामंजस्य

RIL-080

स्थापित करता है। प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत परिवर्तन की अवधारणा, प्रकृति, प्रकार, इसको प्रभावित करने वाले विभिन्न कारक, प्रबन्ध पर परिवर्तन का प्रभाव तथा परिवर्तन प्रक्रिया के विभिन्न चरणों को विश्लेषित करने का प्रयाय किया जायेगा।

3.3 अवधारणा प्रकृति तथा प्रकार

गतिशील तथा आधुनिक समाज की धुरी के रूप में परिवर्तन एक सार्वभौमिक सत्य है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि किस प्रकार उत्पादन वितरण तथा प्रबन्धकी क्षेत्र में परिवर्तनों का दौर गुजर कर आज मानव पूर्णतः मशीनों के ऊपर आश्रित हो चुका है। संगठन का आन्तरिक तथा बाह्य दोनों वातावरण निरन्तर परिवर्तन के सापेक्ष अपने आप को तैयार करते रहते हैं। बात चाहे आर्थिक क्षेत्र की हो या राजनैतिक क्षेत्र की, धार्मिक क्षेत्र की हो या तकनीकी क्षेत्र की हो कोई भी परिवर्तन की बयार से अछूता नहीं रहा है। अन्तर केवल गति का रहा है कहीं इसकी गति अत्यधिक रही है कहीं न्यूनतम।

इस प्रकार व्यक्ति के चारों ओर उपस्थिति समाज में परिवर्तन अवश्य सम्भावी है, कला केवल इतनी है कि कैसे इन परिवर्तनों के अनुरूप अपनी रणनीतियों में परिवर्तन कर इसकी प्रभावशीलता को अधिकतम किया जाये। वस्तुतः एक व्यापारिक संगठन को भी अपनी व्यवसायिक व प्रबन्धकीय प्रभावशीलता का उच्चतम बिन्दु प्राप्त करने हेतु इन परिवर्तनों के अनुरूप अपने को निरन्तर समायोजित करते रहना पड़ेगा।

समाज की अपेक्षाओं का सटीक पूर्वानुमान कर परिवर्तित होती हुई तकनीकी एवं प्रबन्धकी कलाओं के माध्यम से बाजार के विभिन्न उपभोक्ता वर्गों के अपने सामाजिक दायित्वों की पूर्ति करते रहने का प्रयत्न करते रहना पड़ेगा। अतः हम कह सकते हैं कि परिवर्तन से आशय प्राचीन व पुराने संसाधनों के स्स्थान पर नये संसाधनों के आत्मसात से है जिससे परिवर्तन की गति से अुनकूलन किया जा सके।

उपरोक्त विवेचन से परिवर्तन की प्रकृति का सहज की अनुमान लगाया जा सकता है कि –

1. परिवर्तन बाजार में उपस्थित मान्यताओं, मूल्यों तथा विचारों के अनुकूल /प्रतिकूल हो सकते हैं।

2. यह अनुकूलन/प्रतिकूलन प्रचलित व्यवस्था के ऊपर ऋणात्मक तथा धनात्मक दोनों प्रकार के प्रभाव डाल सकता है।

3. प्रायः परिवर्तन एकाग्रक न होकर सामूहिक होता है तथा समाज के एक बहुत

बड़े वर्ग को प्रभावित करता है।

4. परिवर्तन इतना स्थायी होता है कि वह समाज की जीवन शैली बन जाती है।

1. परिवर्तन जब एक निश्चित दिशा एवं धीमी गति से होता है तब इसे विकास तथा जब परिवर्तन एका–एक अत्यधिक तेज गति से हो जाये तो इसे क्रान्तिकारी परिवर्तित कहते हैं। विकासात्मक परिवर्तन लगभग जोखिम विहीन होता है तथा क्रान्तिकारी परिवर्तन सदैव जोखिम युक्त होता है।

उपर्युक्त परिवर्तन की प्रकृतिनुसार इसके विभिन्न प्रकार हो सकते हैं। व्यवसायिक संगठन का आंतरिक तथा बाह्य वातावरण इतना व्यापक है कि पल–पल घटने वाले परिवर्तनों की समग्र सूची बनाना अत्यन्त कठिन कार्य है। व्यवसायिक संगठन में परिवर्तन संगठन की युक्ति, नीति उद्देश्य सिद्धान्त, व्यक्ति, मशीन, कच्चा माल, पूंजी, उत्पाद मूल्य, वितरण तथा संवर्द्धन आदि क्षेत्र से सम्बन्धित हो सकते हैं। अगर हम इन परिवर्तनों को वर्गीकृत करना चाहें तो कह सकते हैं कि वे परिवर्तन मानव संसाधन से सम्बन्धित हो सकते हैं, कार्य करने की दशाओं तथा नियमों से सम्बन्धित हो सकते हैं। तथा संगठन की आंतरिक तथा बाह्य संरचना से सम्बन्धित हो सकते हैं। अतः अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हम इन्हें इस प्रकार विवेचित कर सकते हैं।

1. संगठन के कर्मचारियों की जीवन शैली, कार्य शैली, में आये परिवर्तन व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से आये परिवर्तन सामूहिक परिवर्तन कहलाते हैं।

2. जब व्यापारिक परिवर्तन हेतु संगठन नियोजना तक प्रबन्ध करता है तो इसे सक्रिय परिवर्तन तथा बिना किसी नियोजन के स्वीकार किया जाने वाला परिवर्तन निष्क्रिय परिवर्तन कहलाता है।

3. ऐसा परिवर्तन जो व्यवसायिक संगठनात्मक संरचना के प्रत्येक स्तर को प्रभावित करता है प्रमुख परिवर्तन तथा स्तर विशेष को प्रभावित करने वाला परिवर्तन गौण परिवर्तन कहलाता है।

3.4 परिवर्तन के विभिन्न कारक

अब तक हम यह जान चुके हैं कि परिवर्तन परम्परागत तरीकों के स्थान पर आधुनिकता के प्रयोग से है किन्तु ये परिवर्तन रूपी प्रक्रिया स्वतः मूर्त रूप नहीं लेती है। इसकी पृष्ठभूमि में विभिन्न कारकों का योगदान समाहित होता है जो परिवर्तन की

RIL_080

प्रक्रिया को सम्पन्न करने में सहायक होता है। इस प्रकार व्यवसायिक संगठन में परिवर्तन के अग्रलिखित कारकों को सुचिबद्ध किया जा सकता है।

1. **बाह्य तथा आन्तरिक पर्यावरण** – कोई व्यावसायिक संगठन दो पर्यावरणों के मध्य कार्य करता है यथा आन्तरिक तथा बाह्य। आन्तरिक पर्यावरण के अन्तर्गत मानव संसाधन, सामग्री, उत्पादन की तकनीकी आदि में परिवर्तन संगठनात्मक परिवर्तन कराने में सहायक होता है। ठीक इसी प्रकार बाह्य संगठन पर्यावरण के अन्तर्गत सरकार, संस्कृति, समाज, कानून आदि तत्वों का समावेश होता है जो संगठनात्मक परिवर्तन को गति देता है।

2. **संगठनात्मक प्रारूप** – इस प्रक्रिया के अन्तर्गत विभिन्नीकरण, एकीकरण तथा समन्वय जैसे तत्वों को सम्मिलित किया जाता है। संगठन के पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु यदि किसी भी प्रकार से यह सम्पूर्ण प्रक्रिया अनुपयुक्त नहीं होती, तब उस दशा में परिवर्तन अवश्य सम्भावी हो जाता है।

3. **मानव संसाधन** – आज मानव संसाधन को संगठन की सम्पदा कहा जाने लगा है। अतः जो संगठन अपने कर्मचारियों के आचार, विचार, व्यवहार, में गुणवत्ता परक, सुधार लाने का प्रयास करते तब भी परिवर्तन अवश्य सम्भावी बन जाता है।

4. **विकास एवं अवनति** – विकास एवं अवनति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं जो क्रमशः आते जाते रहते हैं किन्तु यह जान लेना आवश्यक है कि इसकी पृष्ठभूमि का प्रारम्भ भी परिवर्तन से प्रारम्भ होकर परिवर्तन पर ही समाप्त होता है।

5. **नवीन रणनीति** – जब व्यवसायिक संगठन को अपने पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति हो तो अपनी रणनीति में सामन्जस्य स्थापित करता है तब परिवर्तन का चक्र घूमना प्रारम्भ हो जाता है जिससे व्यवसाय को निरन्तर लाभप्रद स्थिति में रखा जा सके।

6. **आकस्मिकता** – आज के व्यवसाय की अति आवश्यक परिस्थितियों जिनका सामना किसी भी प्रबन्धक को कभी भी करना पड़ सकता है। इनमें प्रमुख रूप से हड़ताल, कच्चे माल का न मिल पाना, अनुपस्थिति, तालाबन्द आदि को सम्मिलित किया जाता है। इन विषय में परिस्थितियों से निपटने में परिवर्तन रूपी प्रक्रिया ही कामयाब होती है। अतः परिवर्तन आवश्यक हो जाता है।

7. **एकीकृत समन्वय** – मूलतः प्रत्येक व्यवसायिक संगठन विभिन्न प्रकार के तत्वों का समन्वय प्रारूप होता है। ये तत्व आपस में समन्वय करते हुए एक दूसरे पर

निर्भर रहते हैं । इस प्रकार एक छोटे से तत्व में आय परिवर्तन प्रक्रिया में सम्मिलित समस्त तत्वों की संरचना को विचलित करता है जिससे परिवर्तन की आवश्यकता पड़ती है।

3.5 परिवर्तन का प्रबन्ध तथा प्रभाव

वर्तमान युग प्रतिस्पर्धा का युग है यहाँ दिन प्रतिदिन परिवर्तन किसी न किसी रूप में परिलक्षित होता रहता है, यही प्रकृति का नियम भी है। पीछे मुड़ कर देखने पर ऐतिहासिक परिवर्तन की विभिन्न कड़ियॉ दिखाई देती है। भूतकाल वर्तमान से पूर्णतया भिन्न होता है तथा भविष्य इन दोनों से भिन्न फिर चाहे वो आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, तकनीकी या सामाजिक क्षेत्र ही क्यों न हो। उपर्युक्त में से परिवर्तन की गति की दशा और दिशा में अन्तर दिखाई पड़ता है।

अतः हम कह सकते हैं कि मानव जीवन में परिवर्तन एक स्वाभाविक व नैसर्गिक प्रक्रिया है जिसे टाला नही जा सकता है। इसी प्रकार व्यापारिक दुनिया का आधार स्तम्भ प्रबन्ध भी परिवर्तन की विभिन्न दशाओं से निरन्तर गुजरता रहता है। यह परिवर्तन की बाजार कभी दशाएं, कभी उपभोक्ता और कभी वित्तीय स्थितियों के कारण होता है। इससे प्रबन्ध की प्रभावशीलता निरन्तर बढ़ती है तथा इसे लागू करने वाला मानव संसाधन तंत्र भी अपने व्यवहार तथा कार्य करने की कला में परिवर्तन कर अपने को वर्तमान परिस्थितियां के अनुरूप सामन्जस्य स्थापित करता है। इसे जीने की कला कहते हैं।

जब एक व्यवसाय की सम्पूर्ण संरचना में परिवर्तन होता है तभी वे अपनी प्रभावशीलता सिद्ध कर विकास के पथ पर अग्रसर होते हैं, समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्वों की पूर्ति कर पाता है तथा व्यवसायिक प्रतिस्पर्धा में अपना स्थान सुनिश्चित करता है। इस प्रकार यह आवश्यक हो जाता है कि प्रबन्ध पर आन्तरिक तथा बाह्य कारकों तथा वातावरण का क्या प्रभाव पड़ता है इसका सूक्ष्म विवेचन किया जाये। अपने अध्ययन की सुविधा हेतु हम सर्वप्रथम बाह्य परिवर्तनों के प्रभाव को क्रमवार रेखांकित काने का प्रयास करेंगे।

परिवर्तन बाह्य परिवर्तन का प्रथम प्रमुख केन्द्रीय कारक है जिसमें आर्थिक नियोजन राष्ट्रीय आय में बढ़ोत्तरी, मुद्रा प्रसार तथा संकुचन पूंजी बाजार, कच्चेमाल का बाजार, शहरीकरण आदि उपकारकों का भी योगदान होता है। अतः इनके व्यापक तथा समग्र प्रभावों का विश्लेषण प्रगतिशील प्रबन्धकी एक आवश्यक मॉग हो जाती है जिसे

RIL-080

पूरा करना प्रबन्ध का मूल दायित्व हो जाता है।

दूसरे कारक के रूप में समाज शास्त्रीय परिवर्तनों को रखते हैं जिसके अन्तर्गत उद्देश्यों के प्रति अभिप्रेरणा में बदलाव, सामूहिक शक्तियों का योगदान, व्यक्तिगत असन्तोष, सांस्कृतिक बिखराव, जीवन स्तर में बढ़ोत्तरी व घटोत्तरी, प्रौद्योगिकी का उपयोग, सार्वजनिक उत्तर दायित्व को पूरा करने की मंशा आदि निरन्तर प्रबन्ध क्षेत्र में बदलाव को प्रेरित करते रहे हैं। इसने तनाव, शक्ति, सहचर्य, के साथ साथ घरों में मनोरंजन की क्रियाओं को बढ़ाने का कार्य किया है। अतः परिवर्तनों से सामंजस्य बैठाने हेतु प्रबन्ध इन घटकों का निरन्तर विश्लेषण कर इनके अनुरूप अपने को समायोजित करता रहता है।

तृतीय कारक के रूप में सरकारी नीति द्वारा प्रेरित परिवर्तनों का अध्ययन सम्मिलित किया जाता है जिसमें प्रमुख रूप से सरकार की प्राथमिकताओं में परिवर्तन तथा राजनैतिक दल की मंशा को रखा जाता है, साथ ही इसकी नीतियॉ, योजनाएं, निर्यात एवं आयात,, सरकारी मानव संसाधन आदि विवेचन भी इसी वर्ग में सम्मिलित किया जाता है। इसी क्रम से कुछ विशेष परिस्थितियां जिन परिवर्तनों को भी रखा जा सकता है। इनमें अग्रलिखित सहकारकों का अध्ययन अनावश्यक है।

श्रम की दशा और परिस्थितियों में बदलाव, बाजार में उपलब्ध मांग की दशा, आधारभूत सुविधाएं एवं औद्योगिक रख रखाव कर्मचारियों के कल्याण सम्बन्धी सुविधाएं तथा इनके प्रति प्रबन्ध के विभिन्न स्तरों के साथ साथ सरकारी अधिकारियों की कार्य प्रणाली।

इसी प्रकार प्रौद्योगिकी में आये परिवर्तन सम्भवतः वर्तमान युग में परिवर्तन का कारकों में सबसे बड़ा कारक है। प्रौद्योगिकी परिवर्तन का प्रत्यक्ष प्रभाव कार्य एवं संगठनात्मक उद्देश्यों के प्रति श्रमिकों के मन में आने वाला सन्तोष व असन्तोष है। कार्य को पूजा समझने वाले श्रमिक बन्धु आज कार्य के घंटों में कार्य सम्बन्धी सुविधाओं में तथा मिलने वाले परिश्रम का अनुपात स्थापित करने का कार्य कर रहे हैं। एक ओर जहॉ प्रौद्योगिकी ने उत्पादन क्षेत्र में उत्पादकता बढ़ायी है वहीं उपभोक्ताओं में तर्क शक्ति का विकास भी किया है जिससे सर्व समाज के चिन्तन के स्तर में बदलाव हुआ तथा उनकी बौद्धिक क्षितिज बहुत व्यापक बन गया है।

अतः एक कुशल प्रबन्धक बाह्य वातावरण में इन कारकों तथा उपकारकों द्वारा लाये जा रहे परिवर्तनों के प्रति निरन्तर सतर्क रहता है तथा निरन्तर इन परिवर्तनों के

अनुरूप प्रबन्धात्मक परिवर्तन करने में सक्षम होता है।

दूसरी ओर आन्तरिक परिवर्तन के विभिन्न कारक भी उतने ही महत्वपूर्ण सिद्ध हुए है जितने बाह्य परिवर्तन के कारक तथा उपकारक। आन्तरिक परिवर्तन में सर्वप्रथम स्वमेव प्रबन्धकीय परिवर्तनों को ही सम्मिलित किया जाता है जिसके अन्तर्गत प्रबन्धन के विभिन्न स्तरों एवं स्वरूपों में संचार तथा पद परिवर्तन उच्च प्रबन्ध में कार्यशील प्रबन्धकों का परिवर्तन, मानव संसाधन सम्बंधी नीतियों तथा युक्तियों में परिवर्तन, संगठन पदानुक्रम में परिवर्तन आदि को सम्मिलित किया जाता है।

आन्तरिक परिवर्तन के दूसरे स्तर में परिचालन व्यवस्था सम्बन्धी कारकों को स्थान दिया गया है। इस कारक के सम्बन्ध में प्रबन्धक को सदैव अग्रलिखित बिन्दुओं पर नजर रखनी चाहिए, जैसे – संरचना सम्बन्धी सुधार, विपणन, सर्वेक्षण, आय तथा व्यय का अनुपात, प्रशिक्षण तथा पदोन्नति सम्बन्धी नीतियॉ भुगतान सम्बन्धी नियमावली श्रमिक कल्याण, परिवहन तथा संचार सम्बन्धी सुविधाएं आदि।

इसी क्रम में विकास द्वारा प्रेरित परिवर्तनों को भी व्यवसाय से सम्बन्धित करने का प्रयास किया जाता है । ये परिवर्तन प्रायः वित्त, विनियोग, विपणन, परिवहन, लाइसेन्स प्रणाली, विदेशी मुद्दा, अर्पन तथा प्रबन्धकीय कुशलता एवं प्रभावशीलता से सम्बन्धित होता है। इसी प्रकार संयन्त्र स्थान सम्बन्धी परिवर्तन प्रक्रिया तथा संरचना आदि में आये परिवर्तन भी प्रबन्ध को निरन्तर अपनी क्षमताओं के विस्तार हेतु इन परिवर्तनों का विश्लेषणात्मक अध्ययन कर प्रबन्धकीय निर्णयों में परिवर्तन करते रहना चाहिए।

3.6 परिवर्तन प्रक्रिया के विभिन्न चरण

परिवर्तन को सुव्यवस्थित सुसंगठित तथा क्रमबद्ध रूप से क्रियान्वयन प्रायः छः चरणों की आवश्यकता होती है। ये चरण अग्रलिखित है।

i) परिवर्तन पूर्व की सूचना – विद्वानों के मतानुसार यह परिवर्तन का प्रथम चरण है जिसमें एक प्रबन्धक परिवर्तन से प्रभावित होने वाले समूह को इसकी सूचना प्रदान करता है जिससे परिवर्तन आने से पूर्व की क्रिया प्रतिक्रिया का विश्लेषण कर समस्याओं का सुव्यवस्थित समाधान किया जा सके। ऐसा इसलिए करने की सलाह दी जाती है जिससे परिवर्तन से प्रभावित हाने वाले समूह विशेष के लोग इसके लाभ तथा हानि का विश्लेषण उद्देश्यों के अनुरूप कर सके तथा आने वाली अफवाहों या भ्रमित

कर देने वाली सूचनाओं से सावधान रहे। इन भ्रमित कर देने वाली सूचनाओं की परिणित भयंकर दुष्परिणामों के रूप में आ सकती है जिसको नियंत्रित कर पाना लगभग असंभव सा हो जाता है। अतः सम्भावित परिवर्तनों की पूर्व सूचना सदैव सुव्यवस्थित परिणामों की गारंटी होती है।

ii) सामूहिक विचार विमर्श द्वारा निर्णय – किसी भी प्रकार के परिवर्तन के पूर्व सदैव परिवर्तन से जुड़े कर्मचारियों के साथ आपसी विचार विमर्श कर योजना निर्माण का कार्य सदैव हितकर रहता है। ऐसा करने से आपसी प्रतिरोध समाप्त होता है, प्रत्येक व्यक्ति निर्णय तथा योजना में अपनी जिम्मेदारी का वहन करता है जिससे आपसी संचार सुदृढ़ होता है और संगठन के उद्देश्यानुसार परिवर्तन की योजना का निर्माण हो जाता है जिससे क्रियान्वयन का मार्ग सरल हो जाता है।

iii) आर्थिक संरक्षण – प्रायः परिवर्तन का मनोविज्ञान व्यक्ति में आर्थिक असुरक्षा की भावना हो जन्म देता है। अतः श्रेष्ठ प्रबन्ध के लिए वे कर्मचारियों को इस बात का आश्वासन प्रदान करें कि अमुख परिवर्तन किसी भी प्रकार से उनकी आर्थिक सुरक्षा को खतरे में नहीं डालेगा और अगर किसी भी प्रकार का संकट आयेगा तो भी उनका संगठन सदैव उसकी क्षतिपूर्ति तथा आर्थिक सहयोग के लिए आगे आता रहेगा।

iv) आपसी विश्वास पाना – विश्वास ऐ ऐसी भावना है जो एक बार पैदा हो जाती है तो परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। अतः विद्वानों के अनुसार एक कुशल प्रबन्धक को विश्वास, सहयोग और सहानुभूति प्राप्त करने के पश्चात ही परिवर्तन की तरफ अग्रसित होना चाहिए। इससे परिवर्तन प्रक्रिया के मध्य में कोई कठिनाई नहीं आने पाती।

v) प्रबन्ध स्तरों में समन्वय – जैसा कि हम जानते हैं कि प्रत्येक संगठन प्रबन्धकों के विस्तरीय व्यवस्था से क्रियान्वित होता है। अतः परिवर्तन के क्रियान्वयन हेतु प्रबन्धकों के प्रत्येक स्तर में आपसी समन्वय एवं परिवर्तन के प्रति विश्वास अति आवश्यक है क्योंकि कभी कभी प्रबन्धक स्वयं परिवर्तन को नहीं आने देना चाहते हैं क्योंकि वे पुरानी पद्धति से कार्य करने के सिद्ध हस्त हो चुके होते हैं। अतः उनके व्यवहार तथा दृष्टिकोण में व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता होती है। जिससे सभी स्तर एकीकृत होकर समन्वित रूप से परिवर्तन को आत्मसात कर सके।

vi) सुव्यवस्थित नियोजन – किसी भी प्रकार के परिवर्तन को क्रियान्वित करने से पूर्व उसके नियोजन का ब्लू प्रिन्ट तैयार होना सबसे मूल कार्य है। जिससे परिवर्त-

को व्यापक रूप से लागू न'कर विभिन्न चरणों में विभाजित कर योजनाबद्ध ढंग से लागू किया जा सके जिससे परिवर्तन के परिणामों को भी उद्देश्यानुसार मूल्यांकित करते रहा जा सके तथा आवश्यकतानुसार क्रियान्वयन की प्रक्रिया में परिवर्तन होता रहे। इस प्रकार एक साथ न होकर शनैःशनैः परिणाम देते हुए निश्चित समय में पूर्ण हो जाता है और इसका विरोध भी कम होता है। वस्तुतः संगठनात्मक उद्देश्यों के अनुसार परिवर्तन क्रियान्वित हो जाता है और लाभप्रदता निरन्तर बनी रहती है।

vii) सामूहिकता की भावना – जिस प्रकार परिवर्तन क्रियान्वित करने हेतु प्रत्येक व्यक्ति का परिवर्तन से एकीकरण आवश्यक है ठीक उसी प्रकार सामूहिक एकता की भावना का विकास भी परिवर्तन की सफलता के लिए आवश्यक है। हिमांगीय सम्प्रेषण एवं सहकारिता जैसे सामूहिकता के गुण निरन्तर इस भावना को बढ़ाने का कार्य करते हैं।

3.7 सारांश

सामान्य भाषा में परिवर्तन को पुराने के स्थान पर आधुनिकता के प्रयासों से है अतः संगठन के सम्पूर्ण पर्यावरण में उत्पन्न हुए ऐसे परिवर्तन से है जो संगठनात्मक संरचना, प्रकृति एवं वातावरण से सम्बन्धित हो। पीछे मुड़कर देखने पर यह साफ हो जाता है कि प्रत्येक संगठन अपने अस्तित्वकाल में कभी न कभी परिवर्तन रूपी मार्ग से गुजरता ही है। इस परिवर्तन के विभिन्न कारक हो सकते हैं यथा – बाह्य तथा आन्तरिक संगठनात्मक प्रारूप मानव संसाधन, विकास एवं अवनति, नवीन रणनीति, आकस्मिकता, एकीकृत समन्वय आदि। इन कारकों का विश्लेषण एवं ज्ञान सदैव एक प्रबन्धक को समयबद्ध परिवर्तन से जोड़े रखता है। इस प्रकार परिवर्तन की प्रक्रिया सात चरणों से क्रमशः चलती हुई क्रियान्वित होती है।

3.8 उपयोगी शब्दकोश

परिवर्तन – प्राचीन व्यवस्थाओं के स्थान पर नवीनता।

परिवर्तन की दर – परिवर्तन में लगने वाला कुल समय।

बाह्य पर्यावरण – संगठन के बाहर के तत्व जो निरन्तर संगठन को प्रभावित करते रहते हैं।

RIL-080

आन्तरिक पर्यावरण – संगठन के अन्दर के तत्व जो निरन्तर संगठन में आन्तरिक

परिवर्तन के लिए जिम्मेदार होते हैं।

संगठनात्मक प्रारूप – संगठन के व्यवस्थाओं में लगे विभिन्न स्तर जिनसे इसकी संरचना का निर्माण होना है।

एकीकृत समन्वय – संगठन के प्रत्येक व्यक्ति के उद्देश्यों का संगठन के प्रत्येक व्यक्ति के उद्देश्यों का संगठनात्मक उद्देश्यों के अनुरूप मिलान।

आर्थिक संरक्षण – परिवर्तन चक्र के दौरान रोजगार तथा अन्य भत्तों के प्रति सुरक्षा की गारन्टी।

3.9 महत्वपूर्ण प्रश्नावली

प्र.1 परिवर्तन के प्रबन्ध को विस्तार से समझाइये,

प्र.2 परिवर्तन को लाने वाले कारकों का समीक्षात्मक विश्लेषण करें,

प्र.3 क्यों एक अधीनस्थ परिवर्तन का विरोध करता है? क्या इसे रोका जा सकता है?

प्र.4 परिवर्तन के प्रबन्ध की आवश्यकता एवं महत्व पर प्रकाश डालिये,

प्र.5 परिवर्तन की प्रक्रिया में आने वाले विभिन्न चरणों को समझाइये।

इकाई –4 संघर्ष प्रबन्धन

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 संघर्ष अवधारणा तथा विशेषताएं

4.4 संघर्ष के विभिन्न प्रकार

4.5 संघर्ष के प्रमुख कारक

4.6 संघर्ष के लाभ तथा हानि – एक विमर्श

4.7 संघर्षों के रोकथाम हेतु सुझाव

4.8 संघर्ष से सम्बन्धित महत्वपूर्ण अधिनियम

4.9 सारांश

4.10 उपयोगी शब्द कोश

4.11 महत्वपूर्ण प्रश्नावली

4.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

- संघर्ष की अवधारणा तथा इसकी प्रमुख विशेषताओं को समझ सकेंगे,
- संघर्षों के विभिन्न प्रकार तथा इसको प्रभावित करने वाले कारकों का विश्लेषण कर सकेंगे,
- इसके लाभ तथा हानि को विस्तार से समझ सकेंगे,
- भारत सरकार द्वारा पारित विभिन्न अधिनियकों को आत्मसात कर सकेंगे, तथा
- संघर्षों की रोकथाम हेतु आवश्यक सुझावों को समझ सकेंगे।

4.2 प्रस्तावना

इकाई तीन में आपने परिवर्तन प्रबन्धन के विभिन्न आयामों को समझा। प्रस्तुत इकाई व्यापारिक संगठनों में होने वाले आपसी संघर्ष के प्रबन्धन के पहलू पर प्रकाश डालेंगे। संघर्ष की अवधारणा आधुनिक अवश्य प्रतीत होती है किन्तु इसका वर्णन अत्यन्त पुराने काल में दिखाई पड़ता है। वर्तमान प्रतिस्पर्धात्मक युग में इसका अधिक

महत्व इसलिए है क्योंकि व्यापारिक गतिविधियों में तकनीकी द्वारा लाये जा रहे परिवर्तनों के कारण नियोक्ता तथा मजदूरों के सम्बन्ध में निरन्तर तनाव पैदा हो रहा है। प्रस्तुत इकाई औद्योगिक संघर्ष की अवधारणा विशेषताएं प्रकार, कारक तथा रोकथाम आदि विभिन्न पहलुओं को विश्लेषित करेगी, जिससे एक प्रबन्धक अपने संगठन में संघर्ष प्रबन्धन कर नियोक्ता प्रबन्धक तथा कर्मचारियों के आपसी सम्बन्धों को स्वस्थ बनाये रख सके।

4.3 संघर्ष अवधारणा तथा विशेषताएं

पूंजीवादी औद्योगिक अर्थव्यवस्था की एक प्रमुख विशेषता औद्योगिक संघर्ष है। इसका तात्पर्य मालिकों और श्रमिकों के मध्य होने वाले मतभेदों से है जिनका परिणाम हड़ताल, तालाबंदी, काम की धीमी गति, घेराव तथा इस प्रकार की अन्य समस्याओं के रूप में सामने आता है। अतः औद्योगिक संघर्ष वह मतभेद है जो रोजगार देने या न देने अथवा रोजगार की शर्तों या श्रम की दशाओं के सम्बन्ध में विभिन्न मालिकानों के मध्य या विभिन्न श्रमिकों के मध्य या श्रमिकों और मालिकानों के मध्य होता है।

दूसरे शब्दों में श्रमिकों व नियोक्ताओं के मध्य श्रमिकों को रोजगार या उनकी बेरोजगारी की दशाओं से संबंधित असहमति को निर्देशित करता है। अधिकांश रूप से उत्पन्न होने वाले संघर्ष, मंहगाई भत्ता, बोनस, श्रमिकों की पदच्युति अथवा सेवामुक्ति, अवकाश एवं छुट्टियों, सेवानिवृत्ति लाभों और मकान किराया एवं अन्य भत्तों से संबद्ध हो सकते हैं।

विशेषताएँ

औद्योगिक संघर्ष की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं :–

1. औद्योगिक संघर्ष में विभिन्न पक्षकारों के बीच होते हैं : जैसे – मालिकों के मध्य मालिकों एवं श्रमिकों के मध्य, श्रमिकों एवं श्रमिकों के मध्य
2. इन विभिन्न पक्षकारों के मध्य उत्पन्न संघर्ष तब औद्योगिक संघर्ष कहलाता है। जबकि संघर्ष का संबंध निम्न में से किसी विषय में होता है। : (अ) किसी कर्मचारी की नियुक्ति या सेवामुक्ति से सम्बन्धित हो, (ब) किसी कर्मचारी की सेवा शर्तों से सम्बन्धित हों, (स) किसी कर्मचारी की कर्य दशाओं से सम्बन्धित हो।
3. औद्योगिक संघर्ष को लिखित रूप में प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं होती।

4. जिन पक्षकारों के द्वारा संघर्ष की दशायें पैदा की जाती है, उनका संघर्ष में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हित जुड़ा होता है।

5. संघर्ष की पक्षकारों के मध्य वास्तविक रूप से होना आवश्यक होता है।

6. औद्योगिक संघर्ष के अंतर्गत संघर्ष एवं उनके पक्षकार स्पष्ट होने आवश्यक हैं।

7. औद्योगिक संघर्ष को भूतपूर्व श्रमिक द्वारा भी प्रस्तुत किया जा सकता है।

8. औद्योगिक संघर्ष उद्योग में अव्यवस्था के कारण उत्पन्न होते हैं।

4.4 संघर्ष के विभिन्न प्रकार

जब संघर्ष व्यापक रूप धारण कर लेता है तब इसकी परिणिति हड़ताल प्रदर्शन, धरना आदि के रूप में सामने आती हैं। इसी प्रकार उपर्युक्त सभी अवधारणा, औद्योगिक संघर्ष के अंग हैं।आइये अध्ययन की सुविधा हेतु इनका क्रमवार अध्ययन करें :–

क) हड़ताल

हड़ताल का तात्पर्य अस्थायी रूप से श्रमिकों द्वारा कार्य में विध्न डालना है। यह श्रमिक द्वारा स्वतः कार्यमुक्ति है। औद्योगिक संघर्ष अधिनियम की धारा 2 (क्यू) के अनुसार व्यक्तियों के समूह द्वारा, जो मिलकर कार्य करते हैं सामूहिकता से कार्य नहीं करना अंथवा एकमत होकर कार्य करने से मना करना, हड़ताल कहलाता है।'इसी प्रकार हड़ताल का तात्पर्य श्रमिकों द्वारा कार्य को चालू रखने से इन्कार या दूसरे शब्दों में श्रमिकों के किसी समूह द्वारा अपने परिवाद का प्रकट करने या कार्य से संबंधित अपनी मांगों को मनवाने हेतु दबाव डालने के लिए अस्थाई रूप से कार्य बद करना, हड़ताल है। वस्तुतः हड़ताल में श्रमिकों द्वारा अस्थाई रूप से कार्य करना बंद कर दिया जाता है। इसका उद्देश्य अपने परिवादों का प्रकट करना अथवा अपनी किन्हीं मांगों को मनवाने के लिए दबाव डालना ही प्रमुख होता है। अग्रलिखित लक्षणों द्वारा इस अवधारणा को और अस्पष्ट किया जा सकता है।'

1. हड़ताल सदैव असंतुष्ट श्रमिकों द्वारा की जाती है।

2. इसमें श्रमिक कार्य करना बंद कर देते हैं।

3. हड़ताल श्रमिकों द्वारा अपने विवादों को प्रकट करने का एक सशक्त माध्यम है।

RIL-080

4. हड़ताल अनिश्चित समय के लिए की जाती है तथा हड़ताल समाप्ति के पश्चात प्रायः श्रमिक अपना कार्य करना आरंभ कर देते हैं।

5. हड़ताल किन्हीं मांगों को लागू करवाने के लिए दबाव डालने का साधन है।

6. हड़ताल श्रमिकों के किसी भी एक समूह द्वारा की जा सकती है।

7. हड़ताल अन्याय तथा असंतोष का गम्भीर लक्षण है।

8. हड़तालें वैध या अवैध हो सकती हैं।

9. हड़तालें अनेक रूपों में यथा – भूख हड़ताल, सांकेतिक हड़तालें,धीरे कार्य करो हड़ताल आदि के रूप में हो सकती है।

10. समुचित ढंग से नोटिस दे कर हड़ताल करने का श्रमिकों का अधिकार है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आज हड़ताल अपनी न्यायोचित मांगों को मनवाने का एक सशक्त माध्यम बनती जा रही है। प्रायः हड़तालों के निम्न स्वरूप दृष्टिगत होते हैं :–

1. जब कर्मचारी जान बूझ कर अपनी पूर्ण क्षमता का उपयोग नहीं करते। अतः सेवायोजकों को उनकी मांगों के विषय में विवश होकर सोचना पड़ता है तब इस हड़ताल धीरे काम करो हड़ताल के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

2. जब विभिन्न श्रम संगठनों द्वारा क्षेत्रीय या राष्ट्रीय स्तर पर अपनी सामूहिक शक्ति प्रदर्शन दूसरे का समर्थन हेतु किया जाता है तब इसे सहानुभूति हड़ताल कहा जाता है।

3. नियमानुसार कार्य की नीति के अंतर्गत जिसे उड्डयन विभाग के विमान चालकों ने भारत में अपनाया था जिसमें अतिरिक्त समय काम करने या अधिक माल ले जाने से मना कर देते हैं।

4. भूख हड़ताल यह हड़ताल सबसे प्रचलित विधि है।सामान्यतः यह नेताओं, विद्यार्थियों अथवा श्रमिकों द्वारा अपनी मांगें मनवाने हेतु की जाती हैं। भूख हड़ताल का प्रारम्भ हड़ताल के समय, हड़ताल के उपरांत कभी भी किया जा सकता है। इसमें श्रमिकों का सहयोग प्राप्त किया जाता है। किसी विरोधी निर्णय को वापस लेने, श्रमिकों के विरूद्ध लगाये गये किसी अभियोग को वापस लेने के उद्देश्य से भूख हड़तालें आयोजित की जाती हैं।

5. 'घेराव' में कर्मचारी प्रबंधकों को तब तक घेरे रहते हैं जब तक कि उनकी मांग

मान नहीं ली जाती या आश्वासन नहीं दे दिया जाता।

6. सांकेतिक हड़ताल नियोक्ता का ध्यान किसी समस्या के प्रति आकृष्ट करने के लिए सांकेलित हड़तालें भी की जाती है। इस क्रिया का असर नहीं होने पर विधिवत नोटिस दे कर लंबी हड़ताल प्रारम्भ कर दी जाती है।

ख) तालाबन्दी

तालाबंदी सेवायोजकों के हाथ में एक महत्वपूर्ण हथियार है। जिससे यह श्रमिकों को तितर बितर करने का असफल प्रयत्न करता है। यह श्रमिकों की चेतना को नष्ट करने का अस्त्र है।

औद्योगिक संघर्ष अधिनियम की धारा 1 के अनुसार तालाबंदी की परिभाषा इस प्रकार है, सेवायोजकों द्वारा कर्मचारियों से कार्य नहीं लेना, अथवा कार्य स्थल पर ताला लगा देना अथवा कार्य स्थगित यकर देना आदि क्रियायें तालाबंदी के अन्तर्गत आती हैं।

इस प्रकार जब सेवायोजक श्रमिकों के मानवीय अधिकारों पर शासन करना चाहता है तथा उन पर संपत्ति अधिकार प्रयोग करती है, तो वह उन्हें अपने व्यवसाय क्षेंत्र से बाहर निकाल देता है एवं उन्हें कार्य करने से रोकता है जिसे तालाबन्दी की संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार तालाबन्दी में निम्न तत्व सम्मिलित होते हैं :–

- तालाबन्दी सेवायोजकों द्वारा की जाती है।
- तालाबंदी के अन्तर्गत सेवायोजक संस्था में कार्यरत सभी या कुछ श्रमिकों को अनिश्चित समय के लिए रखने से इनकार करता है।
- तालाबंदी में कारखाने या कार्यस्थल को अस्थायी रूप से बंद कर दिया जाता है।
- तालाबंदी किसी औद्योगिक संघर्षों के उत्पन्न हो जाने तथा संघर्षों का निपटारा करने के सभी प्रयासों के असफल हो जाने का परिणाम होती है।
- तालाबंदी श्रमिकों की मांगों को मानने में असमर्थता प्रकट करने के लिए की जाती है।
- किसी व्यक्ति विशेष को कार्य देने से इनकार करना तालाबंदी नहीं होती।
- कुछ श्रमिकों को एक साथ सेवामुक्त करना या पदच्युत करना भी तालाबंदी नहीं है।

RIL80

- छंटनी के कारण किन्हीं श्रमिकों को कार्य देने से इनकार करना भी तालाबंदी नहीं है।

4.5 औद्योगिक संघर्षों के सामान्य कारण

यहॉ महत्वपूर्ण विषय है कि औद्योगिक संघर्ष होते ही क्यों हैं? इन औद्योगिक संघर्षों के मूल कारण क्या होते हैं? औद्योगिक संघर्षों के प्रमुख कारणों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है –

(1) पूँजीवाद – संघर्षों की पृष्ठभूमि सदैव पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की देन रही है। यदि हम विश्व के अन्य देशों का अवलोकन करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि जहॉ भी इस प्रकार की अर्थव्यवस्था है वहॉ औद्योगिक संघर्ष अपने चरम पर होती है। अतः हम कह सकते हैं के श्रम और पूंजी के बीच संघर्ष का मूल कारण पूंजीवादी अर्थव्यवस्था है। जैसे जैसे उत्पत्ति की मात्रा में वृद्धि होती जाती है वैसे श्रम और पूंजी के बीच मतभेद और विवाद उग्र होते जाते हैं।

(2) आर्थिक कारण – संघर्ष का द्वितीय कारण आर्थिक है। अतः जब व्यक्ति अपनी सेवाओं का विक्रय करते हैं और अपना कार्य जीवन सेवाओं, सेवाओं के क्रय करने वाले के यहॉ व्यतीत करते हैं, तब उनमें विभिन्न प्रकार का असन्तोष और औद्योगिक अशान्ति का उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक ही है। कर्मचारी विशेषरूप से असन्तोषजनक कार्य, काम करने की स्वस्थ दशायें, आगे बढ़ने के अवसर, सन्तुष्टि प्रदान करने वाला काम, औद्योगिक मामलों में कुछ कहने सुनने का अधिकार मजदूरी की हानि, अत्यधिक काम और मनमाने व्यवहार के प्रति सुरक्षा में रूचि रखते हैं। श्रमिकों की ये आशायें समाप्त हो जाती हैं और वह आर्थिक शोषण के ऐसे जाल में फॅस जाता है जिससे निकलना उसके लिए असम्भव होता है। उद्योगपति श्रमिकों से अधिक से अधिक काम लेते हैं और इसके बदले में कम से कम मजदूरी देते हैं। साथ ही रहने के लिए अस्वाथ्यकर दशायें होती हैं। इस कारण उनमें असंतोष व्याप्त होता है। इसका परिणाम यह होता है कि औद्योगिक संघर्ष का जन्म होता है। प्रमुख आर्थिक कारण जो औद्योगिक संघर्ष को जन्म देते हैं, उनमें अग्रलिखित को सम्मिलित किया जाता है–

अ) अतार्किक वेतन प्रणाली – औद्योगिक संघर्ष के कारणों में कम वेतन और मॅहगाई भत्ते प्रायः अपनी प्रमुख भूमिका निभाते है।। उत्पादों के मूल्यों में दिन दूनी, रात चौगुनी वृद्धि हं। रही है, किन्तु मॅहगाई भत्त उतना ही दिया जाता है, जो वर्षो पहले

दिया जाता था। जो वर्षों पहले दिया जाता था। इससे मजदूर जीवन स्तर को बनाये रखने के लिए अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थ रहता है। इसका परिणाम यह होता है कि उसमें असन्तोष की भावना का विकास होता है और इसकी परिणति औद्योगिक संघर्षों के रूपों में होती है।

आ) **दोषपूर्ण बोनस प्रणाली** – अनेक उद्योगों में बोनस की व्यवस्था सन्तोषजनक नहीं है तथा बोनस अत्यन्त ही कम मात्रा में दिया जाता है, इससे श्रमिकों में असन्तोष की भावना का विकास होता है।

इ) **भर्ती** – औद्योगिक संघर्षो के मूल कारणों में श्रमिकों को भर्ती पद्धति का भी स्थान है। श्रमिकों की भर्ती या तो मध्यस्थों द्वारा होती है या ठेकेदारों की सहायता से। इसका दुष्परिणाम यह होता है कि श्रमिक उद्योगपति के साथ वफादारी का निर्वाह करने में अपने को असमर्थ पाता है। मध्यस्थों के स्वार्थ की पूर्ति तभी हो सकती है जब वे श्रमिक और मालिक की दूरी को बनाये रखें। इसका परिणाम यह होता है कि औद्योगिक संघर्षों का जन्म होता है।

ई) **कार्य की दशाएँ** – औद्योगिक संघर्षों का कारण कार्य की दोषपूर्ण दशायें भी हैं जिनके कारण औद्योगिक संघर्षों का जन्म होता है, जैसे – अस्वस्थ वातावरण, असन्तोषजनक सुरक्षा, कैन्टीन की सुविधाएं और काम करने के अधिक घण्टे आदि।

3) **प्रबन्ध सम्बन्धी कारक** – प्रबन्ध सम्बन्धी कारकों ने भी औद्योगिक संघर्षों को जन्म दिया है। मालिक उद्योगों में ऐसा प्रबन्ध करते हैं, जो श्रमिकों के हित में न हो। प्रबन्ध सम्बन्धी कारकों में अग्रलिखित तत्वों को सम्मिलित किया जा सकता है –

अ) **अकुशल नेतृत्व** – अनेक स्वार्थी व्यक्ति जो अपने को श्रमिकों का तथाकथित नेता समझाते हैं श्रमिकों को अपने रास्ते से भटका देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि अशिक्षित श्रमिक उनके पीछे हो लेता है और उनके इशारों पर हड़ताल और तालाबन्दी की कार्यवाही करता है। उनका मौलिक उद्देश्य तो अपनी प्रसिद्धि होता है, श्रमिकों की भलाई नहीं। इसका परिणाम यह होता है कि श्रमिक इन्हीं अकुशल नेताओं के कहने मे आकर हड़ताल करने को तत्पर हो जाते हैं तथा अपने पैर में स्वयं कुल्हाड़ी मारकर संस्था को हानि पहुंचाता है।

आ) **प्रबन्ध में श्रमिकों का प्रतिनिधित्व** – प्रबन्ध में श्रमिकों को स्थान देना वैसे भी असन्तोष का कारण है, किन्तु जब प्रबन्धकों द्वारा श्रमिकों के साथ बुरा व्यवहार किया जाता है तो इससे औद्योगिक असंतोष और अधिक भड़कता है। प्रबन्धकों द्वारा

श्रमिकों के साथ जो दुव्यर्वहार किये जाते हैं जैसे – श्रमिकों को अनेक प्रकार से परेशान करना, उन मजदूरों को जो श्रमिक संघों से सम्बन्धित हैं, काम से निकाल देना, श्रमिक संघों को मान्यता न देना, और उन मध्यस्थों की बेईमानी और भ्रष्टाचार जो श्रमिकों को कार्य दिलाते हैं, आदि। इसी प्रकार के और अनेक अमानवीय व्यवहार हैं जो प्रबन्धक श्रमिकों के साथ करते हैं। इन दुर्व्यवहारों के कारण श्रमिकों में असन्तोष की भावना व्याप्त होती है और औद्योगिक संघर्षों का जन्म होता है।

ई) सामूहिक सौदेबाजी का अभाव – श्रमिकों का श्रम अस्थायी प्रकृति का होता है। इसका कारण यह है कि काम न मिलने से श्रम समाप्त हो जाता है और इसकी पुनः प्राप्ति करना सम्भव नहीं होता है। साथ ही सामूहिक सौदेबाजी के कारण श्रमिकों और मालिकों के बीच निकट सम्बन्धों की स्थापना नहीं हो पाती। इसका परिणाम यह होता है कि थोड़ी सी कठिनाई होने पर श्रमिक बिना सोचे समझे हड़ताल कर देते हैं।

उ) अवकाश से सम्बन्धित कारक – अनेक अवस्थाओं में श्रमिकों को मालिकों द्वारा अवकाश नहीं दिया जाता जब कि अवकाश उनके लिए आवश्यक होता है। कभी कभी अवकाश के दिनों की मजदूरी भी प्रबन्धकों द्वारा काट ली जाती है। इससे श्रमिकों में असन्तोष व बीजारोपण होता है और औद्योगिक संघर्षों का जन्म होता है।

ऊ) सेवा शर्तों का अभाव – उद्योगों में अनेक सेवा शर्तों की कमी रहती है। इस कमी को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है –

1) श्रमिकों को बिना किसी सूचना के काम से निकाल देना अथवा छँटनी,

2) श्रमिकों की सहमति के बिना उनके काम की दशाओं में परिवर्तन कर देना,

3) श्रमिकों पर जुर्माना कर देना,

4) श्रमिकों की मजदूरी में अवैधानिक ढंग से कटौती करना।

इस सभी कारणों से श्रमिकों में असन्तोष का बीजारोपण होता है और यह असन्तोष औद्योगिक विवाद को जन्म देता है।

4) सामाजिक कारक – पूंजीवादी, आर्थिक और प्रबन्धक सम्बन्धी कारक ही औद्योगिक संघर्षों के लिए उत्तरदायी नहीं होते है, अपितु सामाजिक कारक भी औद्योगिक क्षेत्रों में विवाद के लिए उत्तरदायी होते हैं।प्रमुख सामाजिक कारक, जो औद्योगिक संघर्षों के साथ जुड़े होते हैं वे निम्न हैं :–

RIL-080
64

अ) व्यवसाय की व्यापकता – आधुनिक उद्योगों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये बड़े व्यापक स्तर पर किये जाते हैं। इसके कारण मालिकों और श्रमिकों के बीच की खाई अत्यन्त चौड़ी हो गई है। उनमें सामाजिक सम्पर्क की स्थापना नहीं हो पाती है। इससे मालिकों और श्रमिकों के सम्बन्ध मात्र औपचारिक रह जाते हैं, जिससे औद्योगिक संघर्षों का जन्म होता है।

आ) बुरी आवास व्यवस्था और निम्न जीवनस्तर – श्रमिकों के निवास की दशाएं अत्यन्त ही घृणित होती हैं और उनके रहन सहन का स्तर अत्यन्त निम्न होता है। इससे उनमें असन्तोष और रोष तो व्याप्त रहता ही है। साथ ही असन्तोष और रोष की मात्रा में तब और वृद्धि हो जाती है जब इस कार्य के लिए नेता मालिकों को उत्तरदायी ठहरा देते हैं। परिणामस्वरूप श्रमिकों में औद्योगिक संघर्ष का जन्म होता है।

इ) सामाजिक सुरक्षा की कमी – प्रत्येक समाज में व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा प्रदान की जाती है। व्यक्ति के सामने अनेक सामाजिक कठिनाइयां होती है,जिनमें वह सामाजिक सुरक्षा का अनुभव करता है। ये कठिनाइयां इस प्रकार हैं, – बेरोजगारी की समस्या, वृद्धावस्था की समस्या, दुर्घटनाएं रोग तथा बीमारी से सम्बन्धित समस्याएं आदि। श्रमिकों को इन असुरक्षाओं से बचाने का ऐसा कोई आश्वासन नहीं मिलता जो स्पष्ट और सरल हो। इससे उनमें असन्तोष व्याप्त होता है और औद्योगिक संघर्षों का जन्म होता है।

5) राजनीतिक कारक – औद्योगिक विवादों के लिए राजनीतिक कारणों का महत्व सबसे ज्यादा है। इसमें राजनीतिक दलों का महत्व और भी अधिक है। इसका कारण यह है कि ये दल श्रमिकों को अपने विश्वास में लेना चाहते हैं। इसके लिए छोटी सी घटना को भी बढ़ा–चढ़ाकर आगे ले जाते हैं और वे इसके लिए हड़ताल अनशन आदि करने के लिए अग्रसर होते हैं और इनमें वे श्रमिकों को भी मिला लेते हैं। इसके साथ ही श्रम संघ राजनीतिक दलों के प्रभाव में रहते हैं और राजनैतिक उद्देश्यों के प्राप्ति के लिए हड़ताल आदि करवाते हैं।

6) मनोवैज्ञानिक कारक – औद्योगिक संघर्षों के मूल में मनोवैज्ञानिक कारण होते है। मनोवैज्ञानिक कारकों का औद्योगिक सम्बन्धों को सुधारने या खराब करने में महत्वपूर्ण हाथ होता है। मानव सिर्फ भूख और प्यास का पुतला ही नहीं होता, उसमें इन्सानियत होती है। साथ ही वह आत्मसम्मान और आदर का भी भूखा होता, है। सन्तोष बाहरी तत्व नहीं है, अपितु इसकी उत्पत्ति मानव की अन्तरात्मा से होती है। अतः आन्तरिक कारण ही इसकी सन्तुष्टि के लिए उत्तरदायी होते हैं। यह श्रमिक

उसकी आन्तरिक भावना होती है कि वह काम को अच्छा समझता है या बुरा। ऐसा देखा जाता है कि अग्रलिखित अधिकांश कारण औद्योगिक संघर्षों का जन्म देते हैं–

अ) ऐसी परिस्थितियों का अभाव जिनसे श्रमिक अपने कार्यों के सम्पादन में गर्व का अनुभव करें,

आ) ऐसे वातावरण की कमी जिससे श्रमिक अपने कार्यों के सम्पादन में गर्व का अनुभव करें,

इ) उन्हें अपने काम को करने में आत्मसन्तुष्टि नहीं मिल पाती, तथा

ई) उत्पादन में श्रमिकों की भावनाओं को ठेस लगती है और वे औद्योगिक संघर्ष करने को विवश होते हैं।

4.6 संघर्ष से लाभ तथा हानि – एक विमर्श

औद्योगिक संघर्ष के परिणाम के सम्बन्ध में दो प्रकार के मत हैं।कुछ विद्वानों का ऐसा मत है कि इसके परिणाम अच्छे होते हैं, इससे श्रमिकों की कार्यदशाओं में सुधार होता है। इसके विपरीत कुछ विद्वानों का कहना है कि औद्योगिक विवादों के कारण उत्पादन मात्रा में कमी आ जाती है और इससे लाभों में हानि होती है। औद्योगिक संघर्ष के सम्बन्ध में दोनों प्रकार के विचारकों के मत एकांगी है। इससे लाभ भी होता है और हानियॉ भी होती हैं। यहॉ हम औद्योगिक संघर्ष से होने वाले लाभ और हानि दोनों मतों के सम्बन्ध में क्रमशः विमर्श करेंगे :–

प्रथम विमर्श से हम औद्योगिक संघर्ष से होने वाले लाभों के सम्बन्ध में चर्चा करेंगे –

औद्योगिक श्रमिक जिन कारखानों में कार्य करते है उनकी दशाएं अत्यन्त खराब होती हैं और इनसे श्रमिकों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है।वहॉ अत्यन्त गन्दगी, रोशनी और प्रकाश की समुचित व्यवस्था का अभाव, खाद्य पदार्थों का अभाव और अस्वाथ्यकार खाद्यपदार्थ, विश्रामगृह की बुरी हालत, मूत्रालय और शौचालय आदि की अव्यवस्था रहती है। हड़तालों की सहायता से इन बुरी अवस्थाओं में सुधार लाया जाता है। और श्रमिकों के लिए काम करने की स्वास्थ दशाओं का सृजन किया जाता है।औद्योगिक संघर्षों के कारण श्रमिकों को आर्थिक लाभ होता है। इससे उनकी मजदूरी तथा मॅहगाई भत्ते में वृद्धि होती है और बोनस की उपयुक्त सुविधा प्रदान की जाती है।

औद्योगिक संघर्षों के कारण श्रमिकों के जीवन शैली में परिवर्तन आता है, अधि ाक मजदूरी मिलती है, आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होती है। इसका परिणाम यह होता है कि श्रमिकों के रहन सहन के स्तर में उन्नति होती है। औद्योगिक क्षेत्रों में होने वाले संघर्षों के पूर्व श्रमिकों को उद्योग में अधिक घण्टों तक काम करना पड़ता था। इसके द्वारा श्रमिक को अपने काम के घण्टों में कमी करने में मदद मिलती है। साथ ही काम के मध्य में अवकाश आदि की उचित व्यवस्था करने में भी मदद मिलती है।

औद्योगिक संघर्षों के कारण औद्योगिक क्षेत्र में काम करने वाले श्रमिकों के कार्य की दशाओं में सुधार आता है। उनको आर्थिक लाभ होता है, उनका जीवन–स्तर उन्नत होता है तथा काम के घण्टों में कमी होती है। इस सब का परिणाम यह होता है कि श्रमिकों की कुशलता और कार्य क्षमता में वृद्धि होती है।

औद्योगिक संघर्षों का सबसे अच्छा परिणाम यह होता है कि इससे श्रमिकों में पारस्परिक सहयोग की भावना का विकास होता है। जिससे इनमें एकता की भावना का विकास होता है। इस एकता का परिचय वे श्रम संघ के माध्यम से देते हैं।इससे श्रम सघ आंदोलन को भी प्रोत्साहन मिलता है। साथ ही, श्रमिक संघों में अधिक दृढ़ता का विकास होता है। इसके कारण श्रमिकों के प्रतिनिधियों को उद्योगों के प्रबन्ध में भागीदार का अधिकार मिल जाता है। इससे श्रमिकों को सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि वे प्रबन्ध ा में होने के कारण अपनी समस्याओं को स्वयं ही सुलझा लेते है।। इसमें इनके शोषण का अन्त तो नहीं होता किन्तु श्रमिकों के शोषण में कमी आ जाती है। इन्हें अनेक प्रकार की सुविधाएं प्राप्त हो जाती हैं तथा इसका सबसे बड़ा लाभ यह हुआ है कि उद्योगों के प्रबन्धकों में जागरूकता का विकास हुआ है। आज वे श्रमिकों के साथ दुर्व्यवहार और उनका अनावश्यक शोषण नहीं कर सकते। वे श्रमिकों की समस्याओं को उपेक्षा और उदासीनता की दृष्टि से नहीं देख सकते हैं।

जिस प्रकार एक सिक्के के दो पहलू होते हैं उसी प्रकार जहॉ एक ओर लाभ है तो दूसरी ओर हानि। औद्योगिक संघर्षों के कारण प्रमुख रूप से जो हानियॉ हैं वे अग्रलिखित हैं –

औद्योगिक संघर्षों के कारण हड़ताल और तालाबन्दी होती है इससे श्रमिकों को गम्भीर परेशानियों का सामना करना पड़ता है। संघर्ष के कारण मजदूरों तथा उनके परिवार को निम्न हानियॉ उठानी पड़ सकती हैं।

इसके परिणाम स्वरूप श्रमिकों की आय में कमी आती है, जिसके कारण

उसका पारिवारिक जीवन अस्त–व्यस्त हो जाता है वह अपने को आर्थिक संकट से घिरा हुआ पाता है। इससे उसके जीवन यापन के स्तर में गिरावट तो आती ही है साथ ही उसका और पूरे परिवार का स्वास्थ्य भी बुरी तरह प्रभावित होता है।

- हड़ताल के समय का पारिश्रमिक व्यर्थ में ही चला जाता है। जिस समय में श्रमिक हड़ताल करता है वहसमय दुबारा लौटकर नहीं आता। बेकार बैठे रहने से श्रमिकों की कार्यक्षमता पर बुरा प्रभाव पड़ता है।
- हड़ताल और मांगों के प्रदर्शन में श्रमिकों को लाठी और गोली खानी पड़ती है तथा कभी कभी उन्हें अपनी बलि भी चढ़ानी पड़ती है।
- हड़ताल के कारण श्रमिक को ऋणग्रस्तता का भी शिकार होना पड़ता है क्योंकि हड़ताल के समय मजदूरी नहीं मिलती इसलिए अपने स्वयं के और परिवार के भरण पोषण के लिए उसे उधार लेना पड़ता है।
- पारिवारिक जीवन अस्त व्यस्त हो जाता है । भोजन के अभाव में परिवार के सदस्यों का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और वे बीमारियों के शिकार हो जाते हैं।
- अनेक हड़तालें असफल हो जाती हैं हड़तालों की इस असफलता से श्रमिकों का नैतिक पतन होता है। साथ ही उनमें आत्मविश्वास की कमी हो जाती है।
- श्रमिक श्रम संघों के प्रति अपना विश्वास समाप्त कर देते हैं।
- श्रमिकों में एकता की भावना में कमी आती है, श्रमिकों की छँटनी हो जाती है तथा इससे बेकारी की समस्या और भी उग्र हो जाती है।
- संघर्षों के कारण सबसे ज्यादा हानि उद्योगपतियों को चुकानी पड़ती है। उद्योगपतियों को जो कीमत चुकानी पड़ती है उसमें उत्पादन में कमी, बिक्री में कमी, बिक्री कम हो जाने से बाजार छिन्न भिन्न हो जाना, इस प्रकार श्रम संघों के प्रति जनता विश्वास व्यक्त करती है और उत्पादकों के प्रति विश्वास में कमी आती है।
- अतः मालिकों के नैतिक प्रतिष्ठा में कमी हो जाती है। औद्योगिक अशान्ति का जन्म होता है, जिससे सामान्य जीवन अस्त–व्यस्त हो जाता है।
- हड़ताल और तालाबन्दी के परिणामस्वरूप अनुशासनहीनता में वृद्धि होती है, और श्रम तथा पूंजी के बीच घृणा का वातावरण पैदा हो जाता है जिससे वर्ग

संघर्ष को प्रोत्साहन मिलता है।

संघर्षों के कारण श्रमिक और उद्योगपति को ही हानि नहीं होती अपितु इससे सर्व समाज को हानि उठानी पड़ती है। इस प्रकार संघर्ष के परिणामस्वरूप समाज को निम्न हानि उठानी पड़ती है।

क) इससे समाज में विद्वेष और विषमता का वातावरण उत्पन्न होता है।

ख) समाज में अनिश्चितता का वातावरण उत्पन्न हो जाता है।

ग) प्राथमिक सुविधाएं जैसे – परिवहन, जल, बिजली, आदि में हड़ताल होने से जनता को अनेक प्रकार की कठिनाइयॉ होती हैं।

घ) हड़ताल के कारण समाज में वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि हो जाती है जिससे समाज को हानि उठानी पड़ती है।

ङ) हड़ताल के कारण उत्पादन कम हो जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि राष्ट्रीय आय की हानि होती है।

इस प्रकार जब किसी उद्योग में पूंजी और साधन पूर्णरूप से हड़ताल या तालाबन्दी से निष्क्रिय कर दिये जाते हैं तब इसका प्रभाव राष्ट्रीय लाभांश पर पड़ता है। जिससे अर्थव्यवस्था को हानि पहुंचाती है और देश का विकास रूक जाता है।

4.7 संघर्षों के रोकथाम हेतु सुझाव

अभी तक आप सभी संघर्ष की अवधारणा तथा इसको उत्पन्न करने वाले कारकों का विश्लेषण कर चुके है।, हमने यह भी जाना कि इसके परिणाम क्या होते हैं। इससे समाज, मालिक और श्रमिक तीनों को हानि उठानी पड़ती है इसलिए इस हानि का रोकना अनिवार्य है। यदि ऐसा नहीं किया गया तो किसी भी राष्ट्र की आर्थिक प्रगति रूक जायेगी। सबसे पहला प्रयास तो यह होना चाहिए कि संघर्षों का जन्म ही न हो।

इससे औद्योगिक शान्ति की स्थापना तो होगी ही साथ ही उत्पादन में वृद्धि के साथ ही राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी। अतः हमें ऐसे प्रयास किये जाने चाहिए जिससे मालिकों और श्रमिकों के बीच की दूरी को समाप्त किया जा सके। यह कार्य इतना आसान नहीं है जितना इसे समझा जाता है। विशेषतः आज की परिस्थितियों में ऐसा करना और भी कठिन हो गया है किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि औद्योगिक

विवादों को सुलझाया ही नहीं जा सकता । इन समस्याओं को उत्साह, अनुभव और कर्मठता के आधार पर सुलझाया जा सकता है। अतः इस सम्बन्ध में निम्न सुझावों की सहायता से संघर्षों को कम करने में मदद सहायता मिल सकती है :–

क) श्रम संघों की स्थापना – कुशल एवं प्रभावी श्रम संघों की स्थापना के द्वारा औद्योगिक क्षेत्रों में उत्पन्न होने वाले संघर्षों को कह करके शान्ति की स्थापना का प्रयास किया जा सकता है। इससे सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि पारस्परिक सम्बन्धों की स्थापना होगी। परिणामस्वरूप इन दोनों के बीच पाए जाने वाले पारस्परिक मतभेदों को समाप्त किया जा सकता है। यद्यपि श्रम संघों में अनेक दोष हैं, फिर भी इन दोषों को समाप्त करके शक्तिशाली श्रमसंघों की स्थापना की जा सकती है। इससे औद्योगिक अशान्ति में कमी आएगी।

उद्योगपति तो शक्तिशाली है ही साथ ही श्रम संघों की स्थापना से श्रमिकों में शक्ति का संचार हो जायेगा। इस शक्ति सन्तुलन के परिणामस्वरूप मालिकों और श्रमिकों के बीच में समझौता होगा और भविष्य में यदि किसी भी प्रकार का मतभेद होगा तो श्रम संघ और उद्योगपति मिलकर समस्याओं का समाधान कर लेंगे। इससे भविष्य में किसी प्रकार के संघर्ष की गुंजाइश नहीं रहेगी। इस प्रकार शक्तिशाली श्रम संघों की सहायता से संघर्ष को निपटाने में मदद मिलेगी।

ख) कार्य समितियॉं – इसे मालिक–मजदूर समितियों के नाम से भी जाना जाता है। संघर्ष को सुलझाने में ये समितियों महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करती हैं। शाही श्रम आयोग के अनुसार औद्योगिक विवादों को समाप्त करने में इन समितियों का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। इस प्रकार की संस्थाएं विश्व के अन्य देशों डेनमार्क, स्वीडन, जर्मनी, ब्रिटेन, अमेरिका, इटली, हंगरी, पोलैण्ड, नार्वे, चेकोस्लोवाकिया में भी हैं। इन संस्थाओं का निर्माण मुख्यरूप से निम्न उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया गया है–

1) औद्योगिक विवादों और संघर्ष को समाप्त करना।

2) श्रमिकों और पूंजीपतियों के बीच असहयोगात्मक वातावरण समाप्त करना, और

3) उद्योगों में नियमों का पालन करना।

इस प्रकार मालिक–मजदूर समितियॉं, औद्योगिक विवादों के सुलझाने में जो प्रमुख कार्य करेंगे, वे इस प्रकार हैं –

1) मान्यता प्राप्त मालिकों के संघ और श्रमिकों के संघ के बीच समझौते की शर्तों को लागू करना।

2) श्रमिकों और मालिकों के बीच जो गलतफहमियों हो जाती हैं, उन्हें दूर करना।

3) श्रमिकों में उनकी दशाओं और कार्य के प्रति रूचि तथा उत्तरदायित्व की भावना का प्रसार करना।

4) मालिकों और श्रमिकों के बीच पारस्परिक सहयोग को बनाए रखना साथ ही दिन प्रतिदिन जो समस्याएं आये उन पर विचार विनिमय करना।

5) श्रमिकों और मालिकों के बीच अनुशासन और उचित व्यवहार बनाए रखना।

6) श्रमिकों के जीवन स्तर को उन्नतिशील बनाना।

7) श्रमिकों को विचार विनिमय करना – काम करने की दशाएँ, रहन सहन की दशाएँ, कल्याण की दशाएँ, मजदूरी भत्ता और बोनस, छुट्टियाँ और अवकाश आदि।

8) श्रमिकों की कार्यक्षमता को बनाए रखना और कार्य क्षमता को घटाने वाले कारकों का विश्लेषण करना।

9) औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि के प्रयास करना।

10) हड़ताल और तालाबन्दी की घटनाओं को न होने देना और यदि हो जाती है तो शीघ्र ही इनको समाप्त करने सम्बन्धी प्रयास करना।

11) श्रमिकों की इन समस्याओं की जानकारी उद्योगपतियों को देना और समस्याओं के समाधान का प्रयास करना।

12) ऐसी व्यवस्था करना जिससे कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों के स्वास्थ्य और सुरक्षा की गारन्टी दी जा सके।

13) मिल में सामाजिक जीवन का विकास करने के लिए सांस्कृतिक कार्यक्रम को अपनाना।

14) श्रम न्यायालय के निर्णय, सरकारी आदेश, विज्ञप्ति आदि के विषय में प्रबन्धकों से विचार विमर्श करना।

15) यदि कोई कर्मचारी कारखाने के दैनिक जीवन और सुख सुविधाओं के सम्बन्ध में अपने सुझाव दे तो उन सुझावों पर विचार विनिमय करना।

16) प्रबन्धकों अथवा श्रमिकों द्वारा प्रस्तुत किसी भी मामले पर विचार विमर्श करना।

वस्तुतः यदि उनको उचित स्थान प्रदान किया जाता है और भूतकाल की गलतियों को दूर करने दिया जाता है जो मालिक मजदूर समितियां औद्योगिक प्रणाली

में बहुत प्रभावी व उपयोगी कार्य कर सकती है।

3) **संयुक्त औद्योगिक परिषदें** – संयुक्त औद्योगिक परिषदों की स्थापना द्वारा भी औद्योगिक संघर्षों को कम किया जा सकता है। ये परिषदें निम्न प्रकार की हो सकती हैं –

अ) राष्ट्रीय स्तर पर

ब) राज्य स्तर पर

स) भिन्न भिन्न उद्योगों की भिन्न भिन्न परिषदें, और

द) एक ही उद्योग में विभिन्न विभागों के लिए अलग अलग परिषदें।

इन परिषदों में श्रमिक और मालिक दोनों के ही समान प्रतिनिधि होंगे। इनके माध्यम से श्रमिकों और मालिकों के बीच ऐसा वातावरण तैयार किया जाता है जिससे औद्योगिक विकास में दोनों बराबर सहयोग दें। इन परिषदों के माध्यम से मालिक और श्रमिक दोनों के हितों की रक्षा का प्रयास किया जाता है। इन समितियों के समक्ष जिन विषयों पर विचार विमर्श किया जा सकता है, वे अग्रलिखित हो सकते हैं –

1) नित्य प्रति काम करने की दशाएं और श्रमिकों की मजदूरी

2) उद्योगों से सम्बन्धित उत्पादन

3) श्रम की कुशलता

4) ऑकड़े इकट्ठे करना।

5) औद्योगिक अनुसंधान को प्रोत्साहन और

6) प्रबन्ध सम्बन्धी समस्याओं पर विचार करना, आदि।

4) **मजदूरी परिषदें** – मजदूरी परिषदों की स्थापना के माध्यम से भी औद्योगिक संघर्ष को सुलझाया जा सकता है। यह परिषद मजदूरी से सम्बन्धित समस्याओं के विभिन्न पहलुओं पर विचार करेगी। साथ ही इसका काम न्यूनतम मजदूरी की दर का निर्धारण और काम करने की दशाओं में सुधार से सम्बन्धित होता है । इसमें मालिक और मजदूर समान प्रतिनिधि होते हैं, तथा कम से कम 3 व्यक्ति बाहर से लिये जाते हैं जो इस विषय के विशेषज्ञ होते हैं।

5) **श्रमिकों की आर्थिक स्थिति में सुधार** – अतिमहत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि श्रमिक हड़ताल क्यों करते हैं? यदि गंभीरता से इस प्रश्न का उत्तर ढूँढने का प्रयास

करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि श्रमिक की आर्थिक दशा इसके मूल में है। यदि श्रमिकों को उनके काम का उचित पुरस्कार दिया जाय, उनको कार्य के समय और कार्य सेवा–मुक्त होने पर आर्थिक सुरक्षा की गारन्टी दी जाय आवास की व्यवस्था में उचित सुधार किये जायें, काम करने के घण्टों में कमी की जाय, अवकाश और सवैतनिक छुट्टियों की व्यवस्था की जाय, उनके तथा उनके परिवार के लिए शिक्षा तथा अन्य कल्याण कार्यों की व्यवस्था की जाये, उन्हें उचित आदर और सम्मान दिया जाय तो ऐसी कोई बात नहीं है कि श्रमिक संघर्ष करने पर उतारू हों, संघर्ष को सुलझाने के लिए यह आवश्यक है कि श्रमिकों की आर्थिक स्थिति में सुधार किया जाय।

6) **स्थायी आदेश** – स्थायी आदेश वे हैं जो श्रमिकों और महिलाओं के सम्बन्धों पर नियंत्रण रखने से सम्बन्धित होते हैं। दिन प्रतिदिन श्रमिकों की समस्याओं में वृद्धि होती जा रही है। यदि मालिकों पर इन समस्याओं को छोड़ दिया जायगा तो इन समस्याओं का सुलझाना तो दूर रहा ये और भी उलझ जायेगी। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि सरकार श्रमिकों से सम्बन्धित नियमों का निर्माण करें। साथ ही, इन नियमों को संरक्षण प्रदान करें। स्थायी आदेशों के कारण श्रमिकों को अपने अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान हो जाता है।साथ ही, मालिक भी जान जाते हैं कि उन्हें कौन सी शर्तों का पालन करना है। इसका परिणाम यह होता है कि दोनों के बीच कभी भी दुविधा की स्थिति नहीं आती। इसलिए सरकार को स्थायी आदेशों का निर्माण करना चाहिए और इन्हें कड़ाई से समाज पर लागू करना चाहिए। इससे संघर्ष को सुलझाने में मदद मिलेगी।

7) **अन्य सुझाव** – औद्योगिक विवादों को समाप्त करने के लिए अन्य जो सुझाव दिये जा सकते हैं वे निम्न हैं –

अ) प्रबन्ध में श्रमिकों को सहभागिता प्रदान करके,

आ) अनुशासन – संहिता का निर्माण करके

इ) आचार संहिता का निर्माण करके

ई) शिकायत निवारण क्रियाविधि

उ) मूल्यांकन तथा कार्यान्वयन समितियॉ तथा

ऊ) त्रिदलीय श्रम व्यवस्था।

4.8 भारत में संघर्ष सम्बन्धी अधिनियम

यदि हम भारत में औद्योगिक संघर्षों के विधानों का अवलोकन करें, तो स्पष्ट होता है कि यह पुराना नहीं है। इसका कारण यह है कि भारत में औद्योगिक जीवन में संघर्ष का प्रारम्भ 1914–18 के बाद हुआ। इससे पहले मालिक और मजदूरों के विवादों का निबटारा 1860 के मालिक एवं श्रमिक (विवाद) अधिनियम द्वारा होता था। 1920 में भारत सरकार का ध्यान इस ओर गया कि औद्योगिक विवादों के सम्बन्ध में कानून बनाए जाएं। 1921 में बंगाल और बम्बई में किसी विषय को ध्यान में रखकर औद्योगिक विवाद अधिनियम समितियों ने विचार किया। 1924 में बम्बई की सूती मिलों के मालिकों एवं श्रमिकों में जोरदार संघर्ष हुआ। इसके बाद ही भारत में औद्योगिक संघर्ष से निपटने के लिए अधिनियम बनाने की आवश्यकता पर जोर दिया गया। भारत में औद्योगिक संघर्ष के सम्बन्ध में जो अधिनियम बने, उनका संक्षिप्त में इस प्रकार से किया जा सकता है।

1) **व्यवसाय विवाद अधिनियम** – 1920–1924 में बम्बई में जो भीषण हड़ताल हुई उसके कारण भारत सरकार का ध्यान इस ओर गया कि औद्योगिक संघर्ष से निपटने के लिए अधिनियम का निर्माण किया जाय। 1924 में भारत सरकार ने एक विधेयक जनता की राय जानने के लिए प्रसारित किया था। परिणामस्वरूप 1929 में व्यवसाय विवाद अधिनियम पारित हुआ। इस अधिनियम में दो अंगों का निर्माण किया गया था –

अ) जॉच न्यायालय

आ) समझौता मण्डल

श्रम न्यायालय का कर्तव्य था कि वह इसके सामने आने वाले संघर्ष की जॉच पड़ताल करे। समझौता मण्डलों का यह कर्तव्य था कि वह संघर्ष जॉच पड़ताल करें और इसके आधार पर दोनों पक्षों के बीच समझौता स्थापित करने का प्रयास करें। इसके साथ ही आवश्यक सेवाओं (डाक, तार, टेलीफोन, स्वास्थ्य, विद्युत, जलापूर्ति, सफाई आदि) में हड़ताल एवं तालाबन्दी से 14 दिन पूर्व सूचना देना आवश्यक था। इन अधिनियमों का पालन नहीं करने पर कठोर दण्ड देने की व्यवस्था इस अधिनियम में की गई थी।

2) **1934 का अधिनियम** – 1935 में 1929 के अधिनियम को संशोधित करके

जॉच न्यायालय और समझौता मण्डल के किसी भी सदस्य को गुप्त सूचना प्रकट करने से मना कर दिया और ऐसा करने पर अदालत में मुकदमा चलाये जाने की व्यवस्था की गई। 1929 का अधिकतम सिर्फ 5 वर्षों के लिए ही बनाया गया था। अतः 1934 ई. में एक संशोधन की सहायता से इसे स्थायी बना दिया गया।

3) 1938 का अधिनियम – शाही श्रम आयोग ने ऐसी सिफारिश की थी कि समझौता अधिकारियों के कर्तव्यों को और भी विस्तृत किया जाय। इसी के आधार पर 1936 में भारत सरकार ने इस अधिनियम में संशोधन के लिए विधेयक प्रस्तुत किया जो 1930 में अधिनियम के रूप में पारित हो गया। इस अधिनियम में समझौता अधिकारियों की नियुक्ति की व्यवस्था की गई थी। साथ ही हड़ताल और तालाबन्दी पर जो प्रतिबन्ध लगाए गये थे, उन्हें शिथिल कर दिया गया। साथ ही इस अधिनियम में ऐसी व्यवस्था भी की गई थी कि यदि श्रम अधिकारी झगड़ों का निपटारा करने में सफल नहीं होते हैं तो इस कार्य के लिए श्रम आयुक्त की नियुक्ति की जाय।

4) बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम – 1938 व्यावसायिक अधिनियम के होते हुए भी बम्बई की सूती वस्त्र मिलों की श्रमिकों की हड़ताल से नहीं रोका जा सका। इसका परिणाम यह हुआ कि 1939 में बम्बई सरकार ने औद्योगिक विवादों से निपटने के लिए अपना प्रान्तीय विधान बनाया। इस अधिनियम के उद्देश्यों को निम्न भागों में विभक्त किया जा सकता है –

अ) इसका मूल उद्देश्य समझौता द्वारा संघर्षों को शान्ति और मैत्रीपूर्ण तरीकों से निपटाना था,

आ) इस अधिनियम में 'श्रम आयुक्त' समझौता अधिकारियों और श्रम आधिकारियों की नियुक्ति की व्यवस्था की गई थी।

इ) इस अधिनियम के द्वारा प्रान्तीय सरकार औद्योगिक न्यायालय व औद्योगिक विवेचना न्यायालय भी बना सकती है।

ई) उपयुक्त नोटिस दिए बिना की जाने वाली हड़ताल को अवैध ठहराने का अधिकार इस अधिनियम को था।

उ) यदि किसी प्रश्न पर औद्योगिक न्यायालय में विचार हो रहा है तो उस समय तक हड़ताल नहीं की जा सकती।

RU-080

ऊ) समझौते की कार्यवाही के समय मालिक लोग सेवा शर्तों में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं कर सकते।

5) युद्धकालीन व्यावसायिक विवाद विधान – 1930 में द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया। इसके कारण बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम 1938 को 1941 में संशोधित कर दिया गया। इसके अनुसार यदि सरकार ऐसा समझती है कि कोई झगड़ा इतना भयंकर रूप धारण कर लेगा कि इससे राष्ट्र और समाज को धक्का लगेगा, तो वह संशोधन के अनुसार मालिकों को काम करने के घण्टों और अवकाश के घण्टों की सूचना देने की छूट दे दी गई। 1945 में इसमें पुनः संशोधित किया गया। इस संशोधन के अनुसार श्रम अधिकारियों को इस आशय का अधिकार प्रदान किया गया कि वे श्रमिकों के काम करने के स्थान के पास ही श्रमिकों की बैठक बुला सके।

6) औद्योगिक विवाद अधिनियम – 1947, 30 सितम्बर, 1946 से युद्धकालीन अधिनियम निष्क्रिय हो गया। युद्धकाल में जो नियम बनाये गये थे उनसे सरकार को आभास हुआ कि औद्योगिक शान्ति की स्थापना में इनका महत्वपूर्ण हाथ है। इसी उद्देश्य को सामने रखकर सरकार ने ऐसा उचित समझा कि इन्हीं विधानों को ध्यान में रखकर एक व्यापक कानून का निर्माण किया जाय। परिणामस्वरूप 1947 में औद्योगिक विवाद अधिनियम पारित किया गया। इसके विपरीत होने के साथ ही 1924 का व्यवसाय विवाद अधिनियम और 'बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम' निरस्त हो गये। 1956 में इस अधिनियम में संशोधन किये गये। वर्तमान में सरकार की ओर से यही मशीनरी है। जिससे औद्योगिक विवाद हल करने का प्रयास किया जाता है। इस अधिनियम के महत्वपूर्ण उपायों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है –

(क) राज्य सरकार को अधिकार

1) औद्योगिक संस्थाओं में 'मालिक–मजदूर समितियों' की स्थापना करना जिससे मालिकों और मजदूरों के बीच होने वाले संघर्ष को समाप्त किया जाये तथा उनमें अच्छे सम्बन्धों की स्थापना की जाये। जून 1987 तक केन्द्र सरकार के 560 उद्यमों में कार्य समितियां काम कर रही थीं।

2) समझौता अधिकारियों की नियुक्ति करना जो औद्योगिक झगड़ों का निपटारा करें।

3) समझौता मण्डलों और जॉच न्यायालयों के प्रतिवेदन को मध्यस्थता के लिए औद्योगिक अधिकरण को भेजना।

4) किसी विवाद की जॉच के लिए जॉच न्यायालय की नियुक्ति करना।

5) समझौता मण्डलों और जॉच न्यायालयों के प्रतिवेदन को मध्यस्थता के लिए औद्योगिक अधिकरण को भेजना।

6) अधिकरण जो भी निर्णय दे उसे मानने के लिए दोनों पक्षों –मालिकों और श्रमिकों को बाध्य करना।

(ख) इस अधिनियम द्वारा निम्न हड़तालों को अवैध घोषित कर दिया गया था–

1) लोकहित सेवाओं में उस हड़ताल को अवैध घोषित करना जो 6 सप्ताह का नोटिस दिये बिना ही प्रारम्भ की गई हो,

2) जब कोई झगड़ा 'समझौता मण्डल' या 'औद्योगिक न्यायालय' मे चल रहा है' तब तक उस सम्बन्ध में की गई हड़ताल, और

3) यदि सरकार ने किसी विवाद को मण्डल, अदालत को सौंपा हो और सरकार ने उस हड़ताल को अवैध घोषित कर दिया हो, जब तक विवाद की जॉच चले।

(ग) इस अधिनियम में पहले वाले अधिनियमों की व्यवस्थाओं को ज्यों–का–त्यों रखा गया है–

(घ) इस अधिनियम में दो नई संस्थाओं की स्थापना की सिफारिश की गई है–

1) मालिक–मजदूर समितियॉ और

2) औद्योगिक अधिकरण ।

(च) इस अधिनियम द्वारा उन व्यक्तियों को सुरक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की गई है, जो हड़तालों आदि में भाग लेना नहीं चाहते हैं–

(छ) जो लोग अवैध हड़तालों में शामिल होंगे या उनको किसी प्रकार की सहायता प्रदान करेंगे, उन्हें दण्डित किया जायेगा।

(7) 1949 में एक आदेश के माध्यम से 1949 के अधिनियम में संशोधन कर दिया था जिसके अनुसार इस अधिनियम को बैंक और बीमा कम्पनियों पर भी लागू कर दिया गया। प्रान्तीय सरकारों के इस अधिकार को केन्द्र सरकार ने ले लिया जिसके द्वारा प्रान्तीय सरकारों, अधिकरणों और मण्डलों की स्थापना करनी थी।

(8) 1950 में एक नए अधिनियम की सहायता से श्रमिक अपील न्यायालयों की नियुक्ति की व्यवस्था की गई। इसमें जॉच न्यायालयों, मजदूरी मण्डलों और समझौता मण्डलों के निर्माण की अपील की जा सकती थी।

(9) 1951 में सरकार ने श्रम सम्बन्धी विधेयक पास किया। इसके अनुसार झगड़े का निर्णय करने के लिए सरकार आन्तरिक और बाहरी मशीनरी की स्थापना कर सकती थी। साथ ही राज्य को इस सम्बन्ध के कई अधिकारी और न्यायालय स्थापित करने का आदेश दिया गया था।

(10) 1953 में औद्योगिक विवाद (संशोधित) अधिनियम' पास किया गया। इसके अनुसार छटनी और जबरी छुट्टी की अवस्थाओं में क्षतिपूर्ति की व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएं निम्न हैं।

(11) 1954 में इस अधिनियम के क्षेत्र को बढ़ाकर इसे बगान में भी लागू कर दिया गया। इस अधिनियम के द्वारा ऐसी व्यवस्था भी की गयी थी जो व्यक्ति एक वर्ष से लगातार काम कर रहा है, उसे एक माह का नोटिस दिये बिना काम से नहीं निकाला जा सकता है।

(12) 1955 में इस अधिनियम को श्रमजीवी पत्रकारों पर भी लागू कर दिया गया।

(13) 1956 में औद्योगिक विवाद (संशोधन) अधिनियम पास किया गया। इस अधिनियम की प्रमुख विशेषताएं निम्न हैं–

(अ) इसके द्वारा 500 रू. से कम मासिक वेतन पाने वाले निरीक्षकों को सम्मिलित कर लिया गया जो प्रबन्ध या प्रशासन सम्बन्धी काम न करते हों,

(आ) श्रमिकों को 21 दिन पहले नोटिस दिए बिना मालिक काम के घंटे, मजदूरी, फण्ड आदि में कोई परिवर्तन नहीं कर सकते।

(इ) इसके द्वारा तीन प्रकार के न्यायालयों की स्थापना की गई है–

1) श्रम न्यायालय,

2) औद्योगिक अधिकरण,

3) राष्ट्रीय अधिकरण

(14) योजना आयोग की सिफारिशें – औद्योगिक विवादों को कम करने की दृष्टि से योजना आयोग ने जो आधारभूत सिद्धान्तों को अपनाया वे इस प्रकार हैं–

(क) वैज्ञानिक पेचीदगियों और कार्यवाहियों में प्रयुक्त औपचारिकता को कम किया

जाए,

(ख) किसी भी विवाद की प्रकृति और महत्व के आधार पर उसका प्रत्यक्ष और अन्तिम निपटारा किया जाए,

(ग) औद्योगिक अधिकरणों और औद्योगिक न्यायालयों में उन्हीं व्यक्तियों को नियुक्ति किया जाय जो विशेष कुशलता प्राप्त हों,

(घ) ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए कि इन न्यायालयों के निर्णय की अपील कम से कम हो,

(च) ऐसी व्यवस्था की जाय जिससे किसी की भी निर्णय को शीघ्रता से लागू किया जा सके,

(छ) पारस्परिक बातचीत द्वारा झगड़ों को निपटाना,

(ज) ऐच्छिक समझौते को मानने से इन्कार करने की दशा में दण्ड की व्यवस्था और

(झ) श्रमिक़ों और मालिकों की संयुक्त परिषदों के निर्माण की व्यवस्था आदि,

(ट) अनुशासन संहिता का निर्माण किया जाय, जिससे श्रमिक और मालिक अपने उत्तरदायित्वों को समझकर कार्यों का सम्पादन करें,

(ठ) स्वयंसेवी पंचनिर्णय के सिद्धान्त को अधिक से अधिक प्रभावशाली बनाया जाए,

(ड) संयुक्त प्रबन्ध परिषद योजनाओं को धीरे धीरे सभी उद्योगों में लागू किया जाय,

(ढ) श्रमिकों में शिक्षा को बड़े पैमाने पर फैलाने की व्यवस्था की जाय,

(न) मजदूर संघों को औद्योगिक ढॉचे के अनिवार्य अंग के रूप में स्वीकार किया जाय,

(प) राष्ट्रीय विकास में श्रमिकों के योगदान को व्यावहारिक उपाय की दृष्टि से देखना,

(फ) श्रमिकों को श्रम कानून के अनुरूप लाभ प्राप्त करने की व्यवस्था,

(ब) समझौता मध्यस्थता एवं न्याय निर्णय को मजबूत बनाने की व्यवस्था करना, तथा

(भ) श्रमिकों को आर्थिक लाभ पहुँचाने के अन्तर्गत राष्ट्रीय उत्पाद के ऊपर नियंत्रण रखने के साथ ही साथ न्यायालयों की स्थापना करना एवं कार्यवाही करना।

इस प्रकार प्रथम पंचवर्षीय योजना से दशम पंचवर्षीय योजना के मध्य

RIL-080

औद्योगिक संघर्षों को सुलझाने के अनेक प्रयाय किये गये हैं तथा अनेक कानूनों का निर्माण इसी दृष्टिकोण से किया गया है। मुक्त व्यापार की नीति के अन्तर्गत विभिन्न देशों की कम्पनियॉ विभिन्न देशों में अपने उद्योग स्थापित करने के लिए स्वतंत्र हैं। ऐसी स्थिति में राष्ट्रीय कानून में अनेक प्रकार के परिवर्तन किये गये हैं तथा औद्योगिक संघर्ष को भी संवैधानिक कानून के अन्तर्गत लाया गया है।

4.9 सारांश

संगठन में संघर्ष कोई नयी विद्या नहीं है। यह आदिकाल से मानव समाज का हिस्सा रहा है। व्यापारिक संगठनों में सदैव से ही मालिकों और मजदूरों के मध्य कार्य का सम्पादन न करना, लापरवाही से कार्य सम्पादन, मजदूरी तथा कार्य की अनुचित दशाएं आदि मुद्दों को लेकर संघर्ष होता रहा है। संघर्ष को लेकर कभी हड़ताल तथा तालाबन्दी के माध्यम से दोनों पक्षों ने अपनी अपनी प्रभुता साबित करने की कोशिश की है। एक ओर जहॉ संघर्ष से उत्पादन तथा आपसी सम्बन्धों को हानि पहुँचाती है वहीं दूसरी ओर यह उच्च वेतन भुगतान तथा कार्य की दशाओं में गुणात्मक, सुधार का वाहक भी रहा संघर्ष को अधिक गम्भीर न होने देने के लिए केन्द्र तथा राज्य सरकार दोनों ने ही कई तरह के कानूनी प्रावधानों की व्यवस्था की है। जिनमें औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 तथा 1956 का औद्योगिक विवाद अधिनियम आदि प्रमुख रहे हैं। साथ ही योजना आयोग द्वारा भी इस ओर ध्यान देते हुए प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में इससे निपटने के उपाय प्रस्तुत किये हैं।

4.10 महत्वपूर्ण शब्दकोश

संघर्ष – विचारों, तथा निर्णय में सामन्जस्य न हो पाना।

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था –ऐसी अर्थव्यवस्था जहॉ सभी कार्यों को आर्थिक दृष्टिकोण से देखा जाये।

अधिनियम – राज्य या केन्द्र सरकार द्वारा दैनिक कार्यों का नियमन कर कानून का निर्माण करना।

हड़ताल – अस्थायी रूप से श्रमिकों द्वारा कार्य में विघ्न डालना।

तालाबन्दी – श्रमिकों को कार्य से विरत रखने के उद्देश्य से नियोक्ता द्वारा की गई कार्यवाही।

पदच्युत करना – कार्य से हटा देना।

बोनस – मासिक मेहनताने के अतिरिक्त लाभ में से प्रदान किया गया अतिरिक्त धन।

कार्यसमितियॉ – ऐसी समिति जिनमें मालिक तथा मजदूर दोनों के प्रतिनिधि सम्मिलित होते हैं तथा उनके समक्ष विवाहिद मुद्दे लाये जाते हैं।

4.11 महत्वपूर्ण प्रश्नावली

प्र.1 संगठन में संघर्ष की अवधारणा को विस्तार से समझाते हुए इसकी विशेषताओं की चर्चा करें।

प्र.2 संघर्ष के विभिन्न स्वरूपों की विस्तार पूर्वक चर्चा करें।

प्र.3 संघर्ष को पैदा करने वाले विभिन्न कारकों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करें।

प्र.4 आपकी दृष्टि में संघर्ष से लाभ है या हानि स्पष्ट करें।

प्र.5 संघर्ष सम्बन्धी विभिन्न अधिनियमों पर चर्चा करें।

प्र.6 भारतीय परिदृश्य में संघर्ष की रोकथाम के उपायों पर चर्चा करें।

प्र.7 हड़ताल क्या है? यह क्यों होती है, क्या इसे रोका जा सकता है, समझाइये।

प्र.8 हड़ताल तथा तालाबन्दी के मध्य अन्तर स्पष्ट करें।

प्र.9 संयुक्त औद्योगिक परिषदें क्या हैं? चर्चा करें।

प्र.10 कार्य समितियों को स्पष्ट करें।

इकाई –5 उदयीमान प्रबन्धकीय मुद्दे

इकाई की रूपरेखा

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 कुल गुणवत्ता प्रबन्धन

5.4 सी.आर.एम.

5.5 काइज़ेन

5.6 व्यापारिक नैतिकता

5.7 सारांश

5.8 उपयोगी शब्दकोश

5.9 महत्वपूर्ण प्रश्नावली

5.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

- कुल गुणवत्ता प्रबन्धन की अवधारणा को आत्मसात कर सकेंगे,
- सी.आर.एम. की अवधारणा तथा प्रबन्धन के लिए इसके महत्व को जान सकेंगे,
- काइज़ेन के उपयोग तथा उपयोगिता का विश्लेषण कर सकेंगे, तथा
- वर्तमान प्रतिस्पर्धात्मक युग में व्यापारिक नैतिकता की आवश्यकता तथा महत्व का विश्लेषण कर सकेंगे।

5.2 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने संघर्ष प्रबन्धन के विभिन्न पहलुओं को विस्तार से जाना। वर्तमान इकाई उदारीकरण, निजीकरण तथा भूमण्डलीकरण के दौर में उन उदयीमान प्रबन्धकीय मुद्दों पर प्रकाश डालेगी, जिनसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तौर पर व्यापारिक गतिविधियां प्रभावित होती हैं। इनमें हम मुख्य रूप से कुल गुणवत्ता प्रबन्धन, सी.आर.एम. काइजेन तथा व्यापारिक नैतिकता का अध्ययन करेंगे।

5.3 कुल गुणवत्ता प्रबन्धन

प्रसिद्ध प्रबन्धशास्त्री डा. एडवर्ड डेमिंग के शब्दों में कुल गुणवत्ता प्रबन्धन के सम्बन्ध में कही गई अग्रलिखित पंक्ति का विवेचना करें :– "भविष्य में दो ही प्रकार के ही व्यापारिक संगठनों का असतित्व होगा – प्रथम वे जो कुल गुणवत्ता प्रबन्धन की अवधारणानुसार अपनी गतिविधियों को नियंत्रित करेंगे तथा द्वितीय वो जो इन्हें न अपनाने के कारण अपना अस्तित्व समाप्त कर लेगें तथा केवल भूतकाल की यादों में रह जायेंगे।

डा. डेमिंग के इन शब्दों की विवेचना से ही यह सिद्ध हो जाता है कि भविष्य गुणवत्ता का है जिसमें कुल गुणवत्ता प्रबन्धन के द्वारा ही व्यापारिक संगठन अपने निध ार्रित उद्देश्यों को पूरा करते हुए अधिकतम लाभार्जन कर बाजार अंशधारिता को अधिकतम कर सकती है। अध्ययन की दृष्टि से आइये कुल गुणवत्ता प्रबन्धन की अवधारणा को समझने का प्रयास करें।

कुल गुणवत्ता नियंत्रण से तात्पर्य निर्धारित प्रमापों से विचलनों एवं दोषों के पहचान योग्य कारणों को जानने तथा उन्हें दूर करने से है। ये व्यवसाय की किसी भी गतिविधि से सम्बन्धित हो सकते हैं। दूसरे शब्दों ममें कुल गुणवत्ता प्रबन्धन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा यह सुनिश्चित करने का प्रयत्न किया जाता है कि व्यापार की प्रत्येक गतिविधि अपने निश्चित नियमों, शर्तों , गुणों, तथा उद्देश्यों को पूर्ण करते हुए निर्धारित श्रेष्ठता को प्राप्त करती हैं तथा उपभोक्ताओं को श्रेष्ठतम उत्पाद तथा सेवायें उपलब्ध कराती हैं। अतः कुल गुणवत्ता प्रबन्धन द्वारा प्रबन्धन व्यापार की समस्त गतिविधियों को पूर्व निर्धारित प्रमापों के अनुरूप बनाने का प्रयास करता है।

कुल गुणवत्ता नियंत्रण के प्रमुख तत्वों के रूप में अग्रलिखित को सूचिबद्ध किया जा सकता है –

1) उच्च प्रबन्धन की वचनबद्धता
2) निरन्तर सुधार की प्रवृत्ति
3) उपभोक्तान्मुखी विचार
4) संगठन की प्रत्येक प्रक्रिया में सुधार
5) सुधार हेतु शिक्षण तथा प्रशिक्षण
6) प्रत्येक प्रक्रिया का दायित्व निर्धारण

RIL-080

7) निरन्तर मूल्यांकन तथा परीक्षण

8) सामूहिक तथा संगठित प्रयास

कुल गुणवत्ता प्रबन्धन को संगठन में लागू करने की प्रक्रिया के अन्तर्गत पॉच प्रमुख क्षेत्रों की पहचान की गई है। जिसे अग्रलिखित सारणी के माध्यम से स्पष्ट किया गया है –

आपूर्तिकर्ता का विकास	प्रक्रिया का विकास	नीतिगत विकास	व्यक्तियों का विकास	ग्राहकोन्मुखी
मूल्यांकन	नियंत्रण	संस्कृति एवं नेतृत्व	सहभागिता एवं समूह कार्य	आवश्यकता
सुधार	सुधार	गुणवत्ता आधारित निर्णय	शिक्षण तथा प्रशिक्षण	संतोष
सहभागिता	पुर्न– अभियंत्रण	मूल्यांकन तथा मापन	व्यक्तिगत विकास एवं पहचान	वचनबद्धता

उपरोक्त सारणी द्वारा कुल गुणवत्ता प्रबन्धन की अवधारणा की सफलता हेतु पॉच प्रमुख क्षेत्रों तथा प्रत्येक के अन्तर्गत तीन उप क्षेत्रों की पहचान की गई है, जिसके द्वारा प्रत्येक क्षेत्र की गतिविधियों की प्रभावशीलता को बढ़ाते हुए निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक व्यापारिक संगठन सभी क्षेत्रों तथा उनके उपक्षेत्रों को अपनी गुणवत्ता प्रबन्धन प्रक्रिया का हिस्सा बनाये। मूलतः कुल गुणवत्ता प्रबन्धन पूर्णतः मालिकों तथा उच्च प्रबन्धन की सोच, आवश्यकता तथा नीतियों के अनुसार अपने अन्तिम अवस्था में आती है।

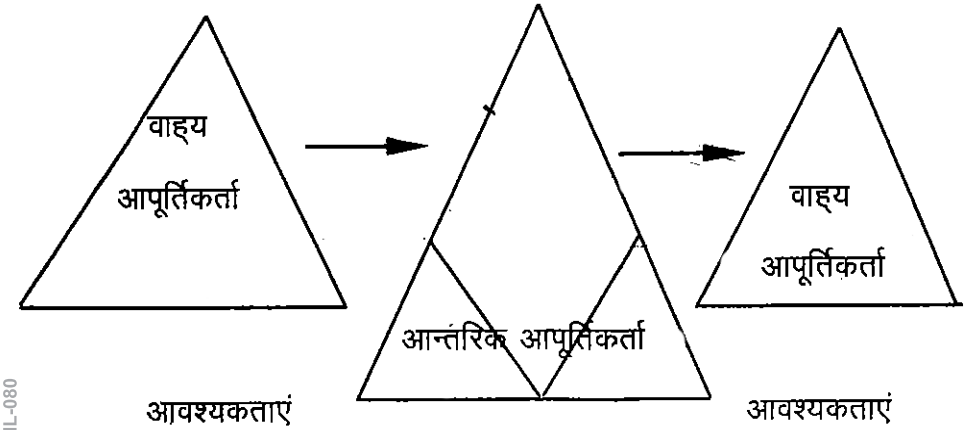
वस्तुतः कुल गुणवत्ता प्रबन्धन सम्पूर्ण संगठन को दिशा निर्देश देने का कार्य करता है जिससे गुणवत्ता के मानकों को समन्वित तथा एकल रूप से क्रियान्वित किया जा सके। इसके द्वारा सामूहिक सहभागिता, उत्पादन, आपूर्तिकर्ता की गुणवत्ता, परिवहन के साधन, कार्य की दशाएं, शिक्षण तथा प्रशिक्षण आदि पर प्रकाश डाला जाता है, जिससे उत्पादन तथा सेवाओं की अधिक से अधिक स्वीकार्यता उपभोक्ताओं के मध य स्थापित हो सके। इस सम्बन्ध में प्रबन्धन विद्वानों के अनुसार कुल गुणवत्ता प्रबन्धान हेतु कभी भी दिखावटी संगठनात्मक परिवर्तन नहीं करने चाहिए। सदैव संगठन के

मूल स्वरूप में ही इस प्रक्रिया का प्रारम्भ करना उचित होता है जिससे सुधार की प्रक्रिया के प्रत्येक चरण का मापन तथा मूल्यांकन किया जा सके।

इस प्रकार कुल गुणवत्ता प्रबन्धन का क्षेत्र समस्त संगठनात्मक प्रक्रियाओं तक फैला होता है। आइये उन प्रक्रियागत अन्य उपायों पर एक दृष्टि डालें जिनके द्वारा कुल गुणवत्ता नियंत्रण प्रबन्धन के उद्देश्यों को पाया जा सकता है। शोधों द्वारा अग्रलिखित कारकों को इस कार्य हेतु अधिक उपयोगी पाया गया है :– संगठन, प्रक्रिया तथा अभिप्रेरणा।

संगठनात्मक कारक इसलिए क्योंकि प्रथम निर्णय के अन्तर्गत यह निश्चय करना होता है कि कुल गुणवत्ता नियंत्रण संगठन में किस बिन्दु से प्रारम्भ किया जाये? किस प्रकार के सुधारात्मक कदम उठाये जाये तथा कौन कौन से लोग इनमें सम्मिलित किये जाये? तथा किस प्रक्रिया के द्वारा पूर्व से चली आ रही कार्य संस्कृति में परिवर्तन किये जायें। द्वितीय कारक के रूप में प्रक्रिया को अति आवश्यक सुधारों की श्रेणी में रखा गया है, इसमें प्रबन्धकों द्वारा यह निर्णय लिया जाता है कि क्या तकनीकि गत प्रक्रिया में सुधार चाहिए?

प्रशिक्षण या शिक्षण सम्बन्धी प्रक्रिया में सुधार चाहिए अथवा कार्य या क्रियागत प्रक्रिया में सुधार चाहिए। इसी प्रकार अन्तिम कारक के रूप में अभिप्रेरणा के सम्बन्ध में निर्णयों को महत्वपूर्ण माना गया है जिनमें प्रबन्धकों को यह निर्णय लेना होता है किस प्रकार के तत्वों द्वारा सदस्यों को सुधारों के प्रति अभिप्रेरित किया जा सकता है? क्या इनमें आर्थिक तत्वों को सम्मिलित किया जाये या फिर गैर आर्थिक? अतः उपरोक्त तीनों कारकों के सम्बन्ध में लिये गये निर्णय कुल गुणात्मक प्रबन्धन की प्रक्रिया को तेज गति से संगठन में क्रियान्वित करने हेतु उत्तरदायी होते हैं, जिससे आन्तरिक तथा बाह्य दोनों प्रकार की व्यवसायिक प्रक्रियाओं में सुधारात्मक परिवर्तन होते हैं। जिसे अग्रलिखित चित्र से प्रदर्शित किया गया है –



RIL-080

इस प्रकार एक सामान्य व्यवसायिक संगठन को कुल गुणवत्ता प्रबन्धन की अवधारणा द्वारा अन्य व्यवसायिक संगठनों की अपेक्षा उच्च स्तरों तक ले जाया जा सकता है। इस सन्दर्भ में श्री डेमिंग ने चौदह सूत्रीय दिशा निर्देश भी प्रस्तुत किया है जो इस प्रकार है :–

1. उत्पाद और सेवाओं को ग्राहकोन्मुखी बनाने पर जोर।
2. इसे संस्कृति तथा दर्शन के रूप में अपनाना।
3. गुणवत्ता स्थापित करने हेतु निर्भरता संघर्ष तथा निरीक्षण।
4. एक आपूर्ति कर्ता की अपेक्षा कई आपूर्तिकर्ता के साथ कार्य को बढ़ावा।
5. उत्पादन की प्रत्येक प्रक्रिया में सुधारात्मक योजना का निर्माण तथा निरन्तर सुधार की कोशिश।
6. कार्य शुरू करने से पहले शिक्षण तथा प्रशिक्षण
7. नेतृत्व तथा उत्तरदायित्व के गुणों का विकास।
8. प्रभावी कार्यदशायें।
9. कर्मचारियों तथा प्रबन्धकों के मध्य आपसी समन्वय।
10. कर्मचारियों को लक्ष्य आधारित कार्य आवंटन जिससे शोषण की कम से कम संभावना हो।
11. लाभोन्मुख विचार के साथ उत्तरदायित्व की भावना।
12. प्रत्येक कार्य के साथ सम्मान, पद, प्रतिष्ठा तथा वार्षिक कार्य मूल्यांकन।
13. कैरियर विकास हेतु समयबद्ध कार्यक्रम।
14. समन्वित परिवर्तन हेतु अभिप्रेरणा।

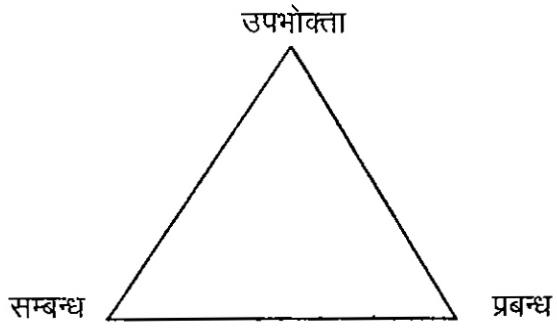
अतः डा. डेमिंग ने कुल गुणवत्ता प्रबन्धन के कार्य को बुनियादी रूप से प्रारम्भ करने का सुझाव दिया है। जिससे इसे एक दर्शन के तौर पर स्थापित करते हुए एक संस्कृति के रूप में स्वीकार किया जाये।

5.3 सी.आर.एम.

प्रबन्धकीय दृष्टिकोण में परिवर्तन हेतु प्रतिस्पर्धा ने सी.आर.एम. अर्थात उपभोक्ता सम्बन्ध प्रबन्धन की अवधारणा को जन्म दिया। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है यह अवधारणा पूर्ण रूपेण ग्राहकोन्मुखी दिखाई पड़ती है। हम जानते हैं कि प्रबन्धन की पुरानी अवधारणा उत्पादोन्मुखी थी जिसमें उत्पादन के साधनों पर अधिक बल दिया

जाता था जो जितनी कम लागत में उत्पादों का निर्माण करता था उसी का बाजार हिस्सा अधिक हो जाता था, किन्तु वर्तमान बाजार इस सच्चाई को नहीं मानता। यहाँ मान्यता समस्त प्रबन्धकीय प्रक्रियाओं और निर्णयों को ग्राहकों की पसन्द तथा आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने की होती है। अतः उपभोक्ता सम्बन्ध प्रबन्धन एक ऐसी व्यापारिक रणनीति के रूप में उदयीमान है जो बाजार हिस्से को बढ़ाने की मान्यता के इतर बहुत कुछ समाहित किये गये हैं।

इसका उद्देश्य राजस्व हानि को रोकते हुए लाभों को अधिकतम करना तथा अधिक से अधिक उपभोक्ताओं को संगठन के उत्पादों तथा सेवाओं से सन्तुष्ट रखना है। इस हेतु संगठन एक निश्चित क्रियाविधि, तकनीकी, उपकरण को अपनाती है जिससे उपभोक्ता से सम्बन्ध मधुर हो तथा परिणामतः विक्रय में वृद्धि हो। इस प्रकार उपभोक्ता सम्बन्ध प्रबन्ध एक रणनैतिक व्यापारिक मुद्दों की तकनीकी विद्वानों के अनुसार इसके तीन प्रमुख तत्व होते हैं, यथा – उपभोक्ता, सम्बन्ध तथा प्रबन्धन, ये तीनों ही संगठन को उपभोक्तान्मुखी बनने की तरफ अग्रसर करते हैं।



आइये अध्ययन में सुविधा हेतु इन तत्वों, का क्रमवार विवेचन करने का प्रयास करें।

(1) **उपभोक्ता** – उपभोक्ता वह व्यक्ति होता है जो समस्त व्यापारिक प्रक्रिया का केन्द्र बिन्दु होता है। यह संगठन को लाभ की स्थिति में लाकर विकास की तरफ अग्रसर करता है। इस प्रकार संगठन के लिये वह उपभोक्ता बहुमूल्य है जो कम संसाधनों में अधिक लाभार्जन की सुविधा प्रदान करें जिससे उपभोक्ता के बृद्धिमानी पूर्ण निर्णयों से विक्रय में निरन्तर वृद्धि हो और संगठन अन्य की तुलना में अधिक प्रतिस्पर्धात्मक अवस्था में डटा रहे। इस प्रकार यह एक प्रबन्धक की कुशलता होगा कि वो अपने वास्तविक उपभोक्ता को पहचान कर सूचना प्रौद्योगिकी तकनीकी का उपयोग करते हुए उन्हें अधिकतम संतुष्टि की ओर ले जाये।

(2) **सम्बन्ध** – यह वो अवस्था है जब उपभोक्ता और प्रबन्धन के मध्य निरन्तर

द्वि–मार्गीय संचार होता है जिससे समय समय पर महत्वपूर्ण निर्णयों पर वास्तविक उपभोक्ताओं से परामर्श किया जा सके, जिनसे उनमें संगठन के प्रति वफादारी और वचनबद्धता का भाव पैदा हो। इस प्रकार के सम्बन्ध निश्चित रूप से उपभोक्ता तथा प्रबन्धन दोनों के ही व्यवहारों को प्रभावित करते हैं जिससे एक ओर तो उपभोक्ता को सन्तुलित तथा इच्छित उत्पाद की प्राप्ति हो पाती है वही दूसरी ओर संगठन के लाभों में वृद्धि होती है। अतः सम्बन्ध दोनों की पक्षों के लिए लाभकारी सिद्ध हो पाते हैं।

(3) प्रबन्धन – प्रायः उपभोक्ता सम्बन्ध प्रबन्ध को विपणन सम्बन्धी गतिविधि के रूप में देखा जाता है, किन्तु यह सत्य नहीं। यह विपणन सम्बन्धी अवधारणा अवश्य है क्योंकि क्रियान्वयन का कार्य इसी विभाग का है किन्तु वास्तव में यह एक संस्कृति है जिसका विस्तार सभी विभागों तथा प्रबन्धन के सभी स्तरों से होता हुआ प्रत्येक कर्मचारी तक जाता है जिससे यह एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया बन सके तथा एक विशेष कार्य संस्कृति का निर्माण हो सके, जो कि ग्राहकोन्मुखी हो। इस हेतु प्रबन्धन अग्रलिखित उपकरणों का उपयोग कर सकता है:–

(1) कुशल तथा प्रभावी मैदान सेवा

(2) ई–वाणिज्य के रूप में आदेश

(3) स्वयं सेवा द्वारा क्रियान्वयन

(4) सूचियों (कैटलॉग) का प्रबन्धन

(5) देयक प्रस्तुतीकरण

(6) विपणन कार्यक्रम तथा

(7) विश्लेषण क्रियान्वयन

वस्तुतः प्रभावी उपभोक्ता सम्बन्ध प्रबन्ध निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित होता है –

क) प्रत्येक उपभोक्ता को इकाई मानते हुए उसकी आवश्यकताओं तथा पसन्द की देखभाल की जाये। वास्तव में उपभोक्ता सम्बन्ध प्रबन्ध का दर्शन ही व्यक्तिकरण पर आधारित है। जिसका सीधा सा तात्पर्य यह है कि आपकी सेवा तथा उत्पाद की रचना उपभोक्ता व्यवहार, जरूरत तथा पसन्द के अनुरूप बनाया गया है। ऐसा करने से उपभोक्ता को अधिक सुविधाओं की प्राप्ति होती है और वो संगठन के प्रति वफादार होता जाता है।

ख) इस प्रकार उपभोक्ता द्वारा प्रदर्शित वफादारी को अधिकतम करने तथा बनाये रखने हेतु निरन्तर व्यक्तिगत सम्बन्धों को बढ़ाना चाहिए जिससे समय पर उपभोक्ता की प्राथमिकताओं को जाना जा सके।

ग) आजीवन कीमत के आधार पर अच्छे और बुरे उपभोक्ताओं का चयन करना। जिससे संगठन निश्चित संसाधनों के बावजूद अधिक विक्रय कर निरन्तर सन्तुलित लाभों की प्राप्ति करता रहे।

संक्षेप में हम कह सकते हैं व्यक्तिकरण, स्वामिभक्ति, तथा आजीवन कीमत ही उपभोक्ता सम्बन्ध प्रबन्ध के मूल स्तम्भ हैं किन्तु यहॉ महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्यों उपभोक्ता सम्बन्ध प्रबन्ध अवधारणा को ही स्वीकार किया जाये। इस सम्बन्ध में प्रबन्ध गुरूओं का मत है कि नये उपभोक्ताओं की खोज करने से अच्छा पुराने उपभोक्ताओं को अच्छे सम्बन्धों के माध्यम से लम्बे समय तक जोड़े रखा जाये। इसी कथन को सिद्ध करने के लिए आइये कुछ उपयोगी बिन्दुओं पर प्रकाश डालें–

- परेटो के अनुसार किसी भी संगठन से जुड़े 20 प्रतिशत उपभोक्ता ही उसके 80 प्रतिशत लाभों के स्रोत होते हैं ।
- विक्रय में नये उपभोक्ता को उत्पादन बेचने हेतु 8 से 10 बार प्रयास करने पड़ते हैं जबकि पुराने उपभोक्ता 02 से 03 ही प्रयासों में अपना निर्णय कर लेते हैं।
- नये उपभोक्ता को प्राप्त करने मे 5 से 10 गुना अधिक लागत आती है जबकि पुराने उपभोकता से व्यापार प्राप्त करना कहीं अधिक लागतोपयोगी होता है।
- एक असन्तुष्ट ग्राहक कम से कम 08 से 10 भावी ग्राहकों की हानि करता है।
- केवल 5 प्रतिशत उपभोक्ता हर बार जुड़ते हैं और बने रहते हैं तो लाभों का 25 प्रतिशत तक की वृद्धि होती है।

इस प्रकार उपरोक्त कथन सी.आर.एम. की सार्थकता को पूर्णतःसिद्ध करते हैं अपने को पूर्ण करने हेतु हमें यह भी जानना आवश्यक है कि आखिर कौन सी ऐसी नीति है जिसको अपनाकर उपभोक्ता सम्बन्ध प्रबन्ध को क्रियान्वित किया जा सकता है। प्रसिद्ध प्रबन्धशास्त्री फिलिप्स कोटलर के अनुसार, अग्रलिखित उपाय निश्चित तौर पर एक संगठन को उपभोक्ता सम्बन्ध प्रबन्धन के क्षेत्र में अग्रणी बना सकती है:–

- सदैव धनात्मक नजरिये से उपभोक्ता से सम्पर्क करिये।
- सदैव सिफारिशों का उपयोग करें।

- सन्तुलित प्रभावी भाषा का प्रयोग करें।
- अधिकतम फोन का उपयोग करें।
- प्रशंसात्मक तथा अभिप्रेरणात्मक नजरिये को व्यक्त करें ।
- सेवा सम्बन्धी सुझावों को दें।
- सदैव 'हम' शब्द का प्रयोग करें।
- समस्याओं पर सामूहिक चर्चा करें।
- समस्याओं को कम समय में सुलझाइये।
- व्यक्तित्व सम्बन्धी समस्याओं को हल करने को प्राथमिकता दें।
- उपभोक्ता के साथ भविष्य में साथ चलने की बात करें।
- समयबद्ध प्रतिक्रिया जानते रहें।
- सदैव उत्तरदायित्व स्वीकार करें।
- भविष्य की योजना बनायें।

5.5 काइजेन

काइजेन मूलतः एक जापानी शब्द है जिसका तात्पर्य 'निरन्तर सुधार' करने से है। निरन्तर सुधार अर्थात काईजेन को संगठन में क्रियान्वित करने से इसके सभी सदस्यों का योगदान चाहिए, यथा – उच्च प्रबन्धन, मध्य प्रबन्धन, निम्न प्रबन्धन, सुपरवाइजर, एवं अन्य कर्मचारीगण। यहाँ महत्वपूर्ण प्रश्न यह है जब एक बार सुधार हो जाय तब क्या किया जाये? विद्वानों के अनुसार काइजेन का दर्शन ही सुधार के ऊपर सुधार की बात करता है अर्थात निरन्तर सुधार की प्रक्रिया ।

काइजेन ही वो तकनीकि है जिसने जापान के उद्योग जगत को विश्व पटल पर लाने का कार्य किया है। वहाँ काइजेन की चर्चा चारों तरफ देखी जा सकती है। चाहे वो प्रिन्ट मीडिया हो या फिर इलेक्ट्रानिक मीडिया, चाहे सरकारी कार्यालय हो निजी उद्यम हो या फिर व्यक्तिगत कार्य सभी काइजेन के प्रति पूर्णतः समर्पित है। यूँ तो पूरा जापान काइजेन को अपनी जीवित पद्धति में पिछले 30 वर्षों से सम्मिलित करता चला आ रहा है किन्तु जापान के बाहर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इसकी महत्ता को पिछले कुछ वर्षों से ही महसूस किया जा रहा है।

RIL-080

शोधों से पता चलता है कि जापान के अतिरिक्त लगभग सभी राष्ट्र इसे अधिक निवेश की प्रक्रिया मानते हैं जबकि वास्तव में यह एक जीवन शैली है, प्रतिदिन की क्रिया है जिसमें पुराने किये गये सुधार को पुनः विश्लेषित करते हुए नये सुधार की तरफ बढ़ाना होता है, जो निश्चित ही किसी भी व्यापारिक संस्था के लिये हितकारी हो सकता है। आइये काइजेन के मूल तत्वों को जाने, जिनके द्वारा काइजेन की प्रक्रिया पूर्ण होती है :–

(1) उपभोक्तान्मुखी क्रियायें

(2) कुल गुणवत्ता नियंत्रण,

(3) रोबोटिक्स,

(4) गुणवत्ता केन्द्रों की स्थापना,

(5) सुझाव प्रणाली,

(6) स्वचालन,

(7) कर्मचारियों में अनुशासन

(8) कुल उत्पादन नियंत्रण,

(9) उचित समय प्रबन्धन प्रणाली,

(10) शून्य गलतियॉ

(11) छोटे छोटे समूहों में कार्य विभाजन

(12) समन्वयकारी कर्मचारी प्रबन्धन सम्बन्ध

(13) नये उत्पादों का विकास,

(14) उत्पादकता सुधार कार्यक्रम।

प्रायः उद्योग जगत की अवधारणा रही है कि काइजेन अवधारणा के क्रियान्वय में अधिक मुद्रा विनियोजित करनी पड़ती है। जबकि वास्तविकता यह है कि इसके अपने उपकरण विशेष नहीं है, यह तो केवल उपलब्ध तकनीकों के माध्यम से प्रतिदिन की एक संस्कृति है जिसमें सम्पन्न किये गये कार्यों का विश्लेषण करने की आवश्यकता होती है और यह विश्लेषण निरन्तर होता रहे इसका प्रयास किया जाता है। आइये काइजेन की उन विशेषताओं को जाने जिनके कारण वर्तमान प्रबन्धकीय जगत इसे अपने संगठन में क्रियान्वित करने हेतु मुखरित हो रहे हैं :–

क) यह एक निरन्तर चलने वाली लम्बे समय की प्रक्रिया है।

ख) इसके क्रियान्वयन में छोटे छोटे चरण होते हैं।

ग) यह अपनी प्रक्रिया में सभी स्तरों के प्रबन्धन एवं कर्मचारियों को सम्मिलित करती है।

घ) यह एक सामूहिक एवं समन्वित प्रयास है।

च) इस प्रक्रिया में सुधार तथा मरम्मत सम्मिलित होती है।

छ) पुरानी तकनीकों का भी उपयोग नये ढंग से किया जाता है।

ज) इसके क्रियान्वयन हेतु बहुत कम खर्च की आवश्यकता होती है किन्तु इसे जारी रखने के लिए अधिक प्रयास करने पड़ते हैं।

झ) सम्पूर्ण प्रक्रिया के मूल में उपभोक्ता हित होता है।

ञ) परिणाम पाने हेतु प्रक्रियाओं में निरन्तर सुधार करना होता है।

जैसा कि हम जान चुके हैं कि काइजेन की प्रक्रिया के क्रियान्वयन समस्त कर्मचारियों तथा सभी स्तरों के प्रबन्धन को सम्मिलित किया जाता है क्योंकि इस प्रक्रिया में दो शब्दों का बहुत अधिक महत्व होता है, प्रथम रख रखाव तथा द्वितीय सुधार। अगर हम इन शब्दों का विश्लेषण करें तो पायेंगे रख–रखाव तथा सुधार दोनों ही इतने व्यापक शब्द हैं जो अपने आप में बिना सभी के संयोजन तथा समन्वयन के पूर्ण नहीं हो सकते। अतः काइजेन के दर्शन के पूर्ण विश्लेषण हेतु हमें यह जानना होगा कि प्रबन्धन के विभिन्न स्तर काइजेन की विभिन्न प्रक्रियाओं से किस प्रकार सम्बन्धित है। आइये इसे अग्रलिखित सारणी के माध्यम से जानने का प्रयास करें–

उच्च प्रबन्धन	मध्य प्रबन्धन तथा स्टाफ	सुपरवाइजर	कर्मचारीगण
1. काइजेन के दर्शन को स्वीकार कर उसे रणनीति का हिस्सा बनाते हैं।	1. विभिन्न कार्यों के उद्देश्यों द्वारा उच्च प्रबन्ध द्वारा तय की रणनीति का क्रियान्वयन सुनिश्चित करना।	1. काइजेन को कर्मचारियों द्वारा क्रियान्वित कराना	1. काइजेन को विभिन्न गतिविधियों द्वारा वास्तविक रूप प्रदान कर अपने सुझाव देना।
2. काइजेन के क्रियान्वयन हेतु आवश्यक निर्देशन तथा संसाधन उपलब्ध करवाना	2. संसाधनों का विभिन्न क्रियाओं से सम्बन्ध करना।	2. कर्मचारियों का छोटी–छोटी योजनाओं द्वारा मार्ग दर्शन करना।	2. अनुशासन बद्ध होते हुए आवंटित कार्यों को सम्पन्न करना।
3. काइजेन से प्राप्त	3.कर्मचारियों को काइजेन	3. कर्मचारियों के	3. काइजेन के

परिणामों पर पुर्नविचार कर समीक्षा करना तथा नवीन उद्देश्यों की स्थापना करना।	दर्शन के क्रियान्वयर हेतु पर्याप्त प्रशिक्षण प्रदान कर गुण दोषों का वर्णन करना।	साथ संवाद बढ़ाना तथा काइजेन के क्रियान्वयन हेतु अभिप्रेरित करना तथा कर्मचारियों को छोटे छोटे समूहों में विभाजित कर गुण–वत्ता मानको को प्राप्त करने का प्रयास करना।	माध्यम से समस्या–ओं का निदान करते हुए स्व विकास करना।
4.काइजेन अवधारणा के क्रियान्वयन के पश्चात इस पर आये खर्चों का लेखांकन करना जिससे अधिक निवेश सम्बंधी अव–धारणा को सही या गलत समझा जा सके तत्पश्चात व्यवस्थित तंत्र विकसित करना।	4. काइजेन क्रियान्वयन के मार्ग में आने वाली बाधाओं के निदान हेतु आवश्यक गुणों का विकास करना।	4. अपने उच्च प्रबन्धकों को काइजेन क्रियान्वयन सम्बंधी सुझाव देना।	4. अपने सुपर–वाइजर को सुझाव देना।

5.6 व्यापारिक समझौता

वर्तमान व्यवसायिक क्षितिज की सबसे महत्वपूर्ण अवधारणा नैतिकता के रूप में ऊभर कर सामने आई है जिसने समस्त व्यापारिक भारतीय संगठनों को उपभोक्तान्मुखी होने के मार्ग पर चलने हेतु आवश्यक उपकरण के रूप में अपने को प्रस्तुत किया है।

प्रायः व्यापारिक नैतिकता को उदारीकरण के पश्चात की अवधारणा माना जाता है किन्तु अगर हम पुराने भारतीय ग्रन्थों पर दृष्टि डालें तो इसकी चर्चा 1700 ई. पू. के आसपास से मिलती है जहां वाणिज्य तथा वित्तीय नियमों के उल्लंघन स्वरूप विभिन्न प्रकार के कठोर दण्ड के प्रावधान का उल्लेख है। कुछ विद्वानों का तो यहॉ तक कहना है कि महान विद्वान अरस्तू ने अपनी प्रसिद्ध कृति राजनीति में भी व्यवासियक नैतिकता को विभिन्न दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है।

पश्चिमी देशों में पिछले तीन दशकों व्यापारिक नैतिकता को विभिन्न प्रबन्धन स्कूलों द्वारा अपने शैक्षणिक पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया जाता रहा है किन्तु व्यवहार में इसका उपयोग 1980 से ही दिखाई पड़ता है जिसका सारा श्रेय लन्दन प्रतिभूति और

विनिमय आयोग के पूर्व प्रमुख जॉन शेड को जाता है। जिन्होंने हावर्ड बिजनेस स्कूल के माध्यम से इसे परियोजना के रूप में तत्कालिक व्यापारिक निगमों में शिक्षण और प्रशिक्षण के माध्यम से क्रियान्वित कराया था। परिणामतः अगले वर्ष तत्कालिक सरकार को 80 करोड़ डालर से अधिक का राजस्व प्राप्त हुआ था जिसका श्रेय उन निगमों को जाता है जिनमें इस परियोजना को क्रियान्वित किया गया था और उनकी कुल विक्रय में वृद्धि हुई है।

भारतीय व्यापारिक निगमों में इसकी झलक 1992 में आये उदारीकरण के दौर के पश्चात दिखाई पड़ी जब ज्यादातर भारत सरकार के नवरत्न दर्जा प्राप्त संस्थानों ने उस ओर पर्याप्त ध्यान देकर अपने कर्मचारियों तथा संगठन से जुड़े लोगों का इसकी महत्ता तथा इससे आने वाले परिणामों के सम्बन्ध में जानकारी दी।

भारत में नैतिकता का पाठ यूँ तो प्रत्येक शिक्षण संस्थान में दर्शन शास्त्र विषय के अन्तर्गत पढ़ाया जाता है किन्तु आज इसी नैतिकता को व्यापार के अहम हिस्से के रूप में प्रतिपादित करने का श्रेय देश के अग्रणी संस्थान आई.आई.एम. अहमदाबाद को जाता है जिसने अपने विशेष प्रयासों द्वारा भारतीय व्यापारिक संगठनों के प्रबन्धकों को व्यापारिक नैतिकता का पाठ पढ़ा, इसे क्रियान्वित करने की तरफ अग्रसर किया। आज भारत का हर वो व्यापारिक संस्थान जो प्रतिस्पर्धा में आगे जाना चाहता है, व्यापारिक नैतिकता की बात करता है।अब प्रश्न यह उठता है कि व्यापारिक नैतिकता को किस प्रकार परिभाषित किया जाये और इसके मूल में कौन हो?

वास्तव में व्यापारिक नैतिकता एक प्रकार का व्यवहार है जिसके अन्तर्गत संगठन से अपने प्रतिदिन के क्रिया कलापों से सम्बन्धित उन न्यूनतम मापदण्डों, नियमों तथा सीमाओं का अनुपालन करने की अपेक्षा की जाती है जिससे उसकी पारदर्शिता तथा उपभोक्तान्मुखी होने का पता चलता है। ये मापदण्ड, नियम तथा सीमायें प्रत्येक व्यापार तथा संगठन के लिये अलग–अलग हो सकती हैं।

प्रायः व्यापारिक संस्थानों की छवि नकारात्मक ही होती है कहा जाता है कि वे ऐनकेन प्रकाणेन मुनाफा बनाने में लगे रहते है।, उन्हें नैतिकता की चिन्ता नहीं होती, उनके उद्देश्यों में तो नैतिकता परिलक्षित होती है किन्तु क्रियात्मक भूमिका शून्य होती है और यही उनकी अन्तिम सीमा होती है जिसे पूंजीवादी मतलबी, उपभोक्ता शोषण आदि नामों की संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार लाभ कमाना बुरा नहीं होता किन्तु इसे अगर नैतिकता के रास्ते पर चलतें हुए पाया जाये तो अच्छा माना जाता है। प्रबन्ध

RIL-080
94

विद्वानों के अनुसार सुव्यवस्थित व्यापारिक नैतिकता सदैव एक अच्छे व्यापारिक संगठन की विशेषता होनी चाहिए, फिर वो चाहे निजी व्यापारिक संगठन हो या सरकारी व्यापारिक संगठन।

इन्हें सदैव ही उपभोक्ता हितों के रक्षार्थ सरकार द्वारा स्थापित विनियमों का पालन करते रहना चाहिए। दूसरी ओर इन प्रत्यक्ष नियमों के अतिरिक्त कार्यात्मक रूप में बहुत से अप्रत्यक्ष नियमों को भी स्थापना होती रहती है जिनके पालन के अपेक्षा व्यापार में की जाती है जो उपभोक्ता केन्द्रित होने के लिए आवश्यक कदम माना जाता हैं तथा व्यापारिक नैतिकता की अवधारणा की पुष्टि होती है।

अब तक आप समझ चुके होंगे कि नैतिकता के केन्द्र बिन्दु में उपभोक्तावादी ही होते हैं। ये उपभोक्ता दो प्रकार के होते हैं पहले वे जो व्यापारिक संगठन की स्थापना में अपने धन का निवेश करते हैं और संगठन की स्थापना कर इसे आगे बढ़ाते है अर्थात अंशधारक तथा द्वितीय वे जो उत्पादन प्रक्रिया के फलस्वरूप तैयार उत्पाद को क्रयकर कम्पनी से सन्तुष्ट होते या नहीं। अतः उपभोक्ता हो या अंशधारक दोनो की कम्पनी के प्रबन्धन से नैतिक होने की अपेक्षा करते हैं। अंशधारक किये निवेश का सही और अनुपातिक प्रतिफल चाहता है और बाजार में खड़ा उपभोक्ता कम्पनी से सुव्यवस्थित सेवायें तथा उत्पाद।

इस प्रकार एक व्यापारिक कम्पनी जिसकी विक्रय करोड़ों में क्यों न हो अगर वो उपभोक्ताओं की देखभाल सुव्यवस्थित ढंग से न कर पा रही हो तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उसमें नैतिकता का अभाव है इस प्रकार नैतिकता का पालन करने वाली कम्पनियॉ सदैव ही उपभोक्ता शोषण से दूर रहती है और उपभोक्ता इनकी पारदर्शिता तथा नैतिकता को इनकी कार्य पद्धति के रूप में देखते तथा समझते है। जहॉ एक ओर नैतिकता का अनुपालन स्वयं प्रबन्धन पर निर्भर करता है वहीं दूसरी तरफ उपभोक्ताओं का भी यह दायित्व होता है कि वे व्यापारिक संगठनों को निर्धारित नैतिकता के अनुपालन के लिये बाध्य करें तथा यह सुनिश्चित करें कि वे नैतिकता का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों ही रूप से क्रियान्वयन करें। प्रायः यह देखा गया है कि उपभोक्ताओं की प्रकृति तथा उनके निर्णय ही व्यापारिक नैतिकता में बाधक होते हैं। अतः आज के व्यापारिक समाज ने स्वयं ही "जागो ग्राहक जागो" का नारा बुलन्द किया हुआ है जिससे ग्राहक स्वयं अपने अधिकारों, कर्तव्यों एवं दायित्वों को समझें और उन्हें व्यापारिक संगठनों के समक्ष रखें जिससे समस्त व्यापारिक प्रक्रियाओं की सुव्यवस्था को नीतिगत प्रयासों के अन्तर्गत लाया जा सके।

RU-080

5.7 सारांश

आप सम्पूर्ण विश्व उदारीकरण निजीकरण और भूमण्डलीकरण के दौर से गुजर रहा है जिसमें व्यापारिक संगठनों के मध्य गलाकाट प्रतियोगिता चल रही है। एक दूसरे से आगे जाने के लिए नित नई नीतियों, प्रक्रियाओं तथा अवधारणाओं की स्थापना व प्रयोग हो रहा है जिनका केन्द्र बिन्दु उपभोक्ता है। इन अवधारणाओं में कुल गुणवत्ता प्रबन्धन को एक संस्कृति के रूप में स्वीकार किया जा रहा है। उपभोक्ता सम्बन्ध प्रबन्ध जिसे विक्रय पश्चात उपभोक्ता संतुष्टि के उपकरण के रूप में प्रयोग किया जा रहा है। काइजेन जिससे संगठनात्मक सुधार की प्रक्रिया में निरन्तरता लाते हुए समस्त कर्मचारियों के व्यक्तिगत उद्देश्यों को संगठनात्मक उद्देश्यों के साथ समन्वित किया जा रहा है और अन्त में व्यापारिक नैतिकता जिसे आज व्यापारिक संगठनों के आइने के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है के सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा की गई है।

5.8 उपयोगी शब्दकोश

कुल गुणवत्ता प्रबन्धन – कुल गुणवत्ता नियंत्रण से तात्पर्य निर्धारित प्रमापों से एवं दोषों के पहचान योग्य कारणों को जानने तथा उन्हें दूर करने से है। ये व्यवसाय की किसी भी गतिविधि से सम्बन्धित हो सकते हैं।

सी.आर.एम. – उपभोक्ता सम्बन्ध प्रबन्धन एक ऐसी व्यापारिक रणनीति के रूप में उदयीमान है जो बाजार हिस्से को बढ़ाने की मान्यता के इतर बहुत कुछ समाहित किये हुए हैं।

काइजेन – काइजेन मूलतः एक जापानी शब्द है जिसका तात्पर्य "निरन्तर सुधार" करने से है।

व्यापारिक नैतिकता – एक प्रकार का व्यवहार है जिसके अन्तर्गत संगठन से अपने प्रतिदिन के क्रिया कलापों से सम्बन्धित उन न्यूनतम मापदण्डों, नियमों,तथा सीमाओं का अनुपालन करने की अपेक्षा की जाती है जिससे उसकी पारदर्शिता तथा उपभोक्तान्मुखी होने का पता चलता है।

5.9 महत्वपूर्ण प्रश्नावली

प्र.1 कुल गुणवत्ता प्रबन्धन की अवधारणा को विस्तार से समझाइये। यह किस प्रकार एक व्यापारिक संगठन में क्रियान्वित किया जा सकता है?

प्र.2 डेमिंग द्वारा प्रतिपादित गुणवत्ता सम्बन्धी चौदह सूत्रों को समझाइये।

प्र.3 सी.आर.एम. की अवधारणा को स्पष्ट करिये। क्या भारतीय व्यापारिक वातावरण में यह सम्भव है?

प्र.4 सी.आर.एम. को पूर्ण करने हेतु इसके आवश्यक तत्वों को समझाइये।

प्र.5 फिलिप कोटलर द्वारा सी.आर.एम. को प्रभावी बनाने हेतु प्रस्तुत उपायों पर चर्चा करें।

प्र.6 काइजेन क्या है? क्या ये अधिक खर्चीली अवधारणा है, अपना मत स्पष्ट करिये।

प्र.7 काइजेन से जुड़ी अन्य तकनीकि को तथा इसकी विशेषताओं को समझाइये।

प्र.8 काइजेन अवधारणा के क्रियान्वयन में प्रबन्ध के विभिन्न स्तरों के दायित्वों को स्पष्ट करें।

प्र.9 व्यापारिक नैतिकता को समझाइये। इसके केन्द्र बिन्दु में कौन होता है, समझाइये।

RIL-080